भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं का अन्वेषण: एक अध्ययन

(श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य के संदर्भ में)

Exploring Various Facets of Indian Society: A Study

(In the Context of the Fictional Works of Sri Bhairavprasad Gupt)

लेखक - डॉ.राजू सी.पी.

नव साहित्यकार प्रकाशन, नांदेड़

भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं का अन्वेषण: एक अध्ययन

लेखक - डॉ. राजू सी.पी.

डॉ. राजू सी.पी. केरल राज्य के एलत्तुरुत्त-त्रिशूर सेंट अलोष्यस कॉलेज में हिंदी विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष एवं अनुसंधान पर्यवेक्षक हैं। वह हिंदी साहित्य के अपने गहन ज्ञान और जटिल विचारों को स्पष्ट और आकर्षक तरीके से संप्रेषित करने की क्षमता के लिए जाने जाते हैं। वह हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन के भी प्रबल समर्थक हैं। उनका मानना है कि हिंदी एक समृद्ध और जीवंत भाषा है जिसमें दुनिया को देने के लिए बहुत कुछ है। उनकी शोध रुचियों में हिंदी कथा साहित्य औरहिंदी-मलयालम तुलनात्मक साहित्य शामिल हैं। वह विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं और पेशेवर संगठनों के सदस्य और सलाहकार सदस्य हैं। उनके पास हिंदी और मलयालम साहित्य, संस्कृति और भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय शोध पत्र, लेख और किताबें सहित कई प्रकाशन और प्रस्तुतियाँ हैं।

जन्म: केरल राज्य के तृश्शूर जिला के कुरुवन्नूर गाँव में 12 मई 1973

शैक्षिक योग्यताएँ: M.A, M.Phil, B.Ed, L.L.B, R.B.P, D.C.P.A, Ph.D

प्रकाशित पुस्तक :उपन्यासकार श्री भैरवप्रसाद गुप्त

संपादित पुस्तकें :गद्य तारा, गद्य गगन, गद्य तरंग, गद्य सुधा, काव्य सरगम, काव्य गुलशन, आधुनिक काव्य गद्य, पद्य विहार, सदाबहार कहानियाँ, कहानी कलश,हिन्दी कहानी कल और आज, कालजयी एकांकी, समकालीन कविता-अस्सी के बाद, विमर्श के आईने में।

पुरस्कार व सम्मान-राष्ट्रीय शिक्षा गौरव पुरस्कार, विशिष्ट कैरियर अकादमिक पुरस्कार, कृष्णा बसंती लिट्टरेचरएक्सिलन्स पुरस्कार, उत्कृष्ट स्नातक छात्र शिक्षण पुरस्कार, सर्वश्रेष्ठ वरिष्ठ संकाय पुरस्कार, युवा सशक्तिकरण पुरस्कार, भाषा विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ शोधकर्ता का पुरस्कार आदि।

पता
डॉ. राजू सी. पी.
46/146, चिट्टिलप्पिल्ली,
तरकत्तलइन, चेट्टुपुष़ा, तृश्शूर, केरल-680012,
मोबइल-8330080066, ईमेल-drrajucp@gmail.com

ISBN 978-81-956110-8-9

नव साहित्यकार प्रकाशन, नांदेड़
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी,
हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड़ -431605 (महाराष्ट्र)
Mo.9405384672

भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं का अन्वेषण: एक अध्ययन

(श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य के संदर्भ में)

Exploring Various Facets of Indian Society: A Study

(In the Context of the Fictional Works of Sri Bhairavprasad Gupt)

डॉ. राजू. सी.पी

डॉ.राजू.सी.पी, अध्यक्ष एवं मार्गदर्शक,
हिन्दी विभाग, सेंट अलोष्यस कॉलेज,
एलत्तुरुत्त, तृश्शूर, केरल-680611

नव साहित्यकार पब्लिकेशन, नांदेड़

लेखक - डॉ.राजू.सी.पी
अध्यक्ष एवं मार्ग दर्शक, हिन्दी विभाग,
सेंट अलोष्यस कॉलेज, एलत्तुरुत्त, तृश्शूर, केरल-680611

ISBN NO: 978-81-956110-8-9

प्रकाशन /प्रकाशक

डॉ. सुनील जाधव,
नव साहित्यकार पब्लिकेशन,
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी,
हनुमान गढ़ कमान के समाने,
नांदेड़-महाराष्ट्र -४३१६०५
मो. ९४०५३८४६७२

मुद्रण – तन्मय प्रिंटर्स, नांदेड़, महाराष्ट्र

मूल्य - २०० रुपये

संस्करण -प्रथम
प्रकाशन वर्ष -२०२४

लेखक की ओर से...

भारत एक विशाल और विविध देश है, जिसमें विभिन्न धर्म, भाषा, जाति, और संस्कृतियां मौजूद हैं। इस विविधता के कारण, भारतीय समाज अत्यंत जटिल और बहुआयामी है। भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि इससे हमें भारतीय समाज को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है।भारतीय समाज के अध्ययन के लिए कई दृष्टिकोण अपनाए जा सकते हैं। एक दृष्टिकोण यह है कि भारतीय समाज को एक सामूहिक रूप से एकीकृत इकाई के रूप में देखना। इस दृष्टिकोण से, भारतीय समाज के सभी सदस्यों को एक सामान्य संस्कृति और पहचान साझा करने वाला माना जाता है।एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि भारतीय समाज को कई अलग-अलग समुदायों का एक समूह के रूप में देखना। इस दृष्टिकोण से, भारतीय समाज के विभिन्न धर्म, भाषा, जाति, और संस्कृतियाँ एक दूसरे से अलग-अलग मानते हैं।भारतीय समाज के अध्ययन के लिए कोई एक सही दृष्टिकोण नहीं है। विभिन्न दृष्टिकोणों के अपने-अपने फायदे और नुकसान हैं। हालाँकि, यह महत्वपूर्ण है कि भारतीय समाज के अध्ययन के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया जाए। इससे हमें भारतीय समाज की जटिलता और बहुलता को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है।

प्रत्येक युग में वह कुछ लोग होते हैं जो अपने क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं और उनकी खुद की रचनाओं के माध्यम से समाज को प्रेरित करते हैं। यह लोग न केवल अपने समय के विचारधारा को प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि आगे के समय के लिए उनकी रचनाएँ एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक धरोहर बन जाती हैं। भारतीय साहित्य में भी कुछ ऐसे उपलब्धि प्राप्त साहित्यिक व्यक्तियों ने अपने योगदान के माध्यम से लोगों को प्रभावित किया है। श्री भैरवप्रसाद गुप्त भी एक ऐसे प्रमुख साहित्यिक विद्वान थे, जिन्होंने भारतीय साहित्य को अपनी रचनाओं के माध्यम से समृद्धि दी और लोगों के दिलों में विशेष स्थान प्राप्त किया। मुझे आशा है कि यह पुस्तक भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं

और श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी होगी।

व्यक्तित्व और कृतित्व दो अलग-अलग अवधारणाएँ हैं, लेकिन इनमें आपस में गहरा संबंध है। व्यक्तित्व एक व्यक्ति की स्थायी और स्थिर विशेषताओं और गुणों का समूह है, जबकि कृतित्व किसी व्यक्ति के द्वारा किए गए रचनात्मक कार्यों का समूह है।व्यक्तित्व किसी व्यक्ति के व्यवहार, विचारों, भावनाओं और मूल्यों को प्रभावित करता है। एक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके कृतित्व को प्रभावित कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक रचनात्मक व्यक्ति अक्सर नए और अनोखे विचारों का उत्पादन करने में सक्षम होता है। यह उसकी कल्पनाशीलता, जिज्ञासा और नवाचार की प्रवृत्ति के कारण होता है।कृतित्व भी व्यक्तित्व को प्रभावित कर सकता है। एक व्यक्ति का कृतित्व उसके आत्म-सम्मान, आत्म-अभिव्यक्ति और जीवन के अर्थ को खोजने में मदद कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक कलाकार अपने काम के माध्यम से अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त कर सकता है। यह उसे अपने व्यक्तित्व को बेहतर ढंग से समझने और एक अधिक पूर्ण जीवन जीने में मदद कर सकता है। श्री भैरवप्रसाद गुप्त का व्यक्तित्व और कृतित्व का संपूर्ण चित्रण करने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है।

प्राचीनतम समय से भारतीय समाज एक विविध समृद्ध समाज रहा है, जिसमें कई प्रकार की संस्कृति, परंपरा, धर्म और सामाजिक समानताएं मौजूद हैं। इस समृद्धि को समझना और विश्लेषण करना भारतीय समाज के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक में, हम भारतीय समाज के कुछ महत्वपूर्ण विचारों पर विचार करेंगे और श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य के संदर्भ में विशेष रूप से देखेंगे। भारतीय समाज अपनी प्राचीनता और समृद्ध संस्कृति से प्रसिद्ध है। इसकी संस्कृति भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान, तत्त्वशास्त्र, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्वविद्या है। श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य में यह प्राचीनता और संस्कृति का समर्थन

करता है। उनके उपन्यासों में भारतीय समाज की अविरलता, धार्मिकता, और समाज की विचारधारा जैसी विविध संस्कृति का चित्रण दिखाया गया है।

सामाजिक जीवन के अंतर्गत परिवार, विवाह, दहेज, नारी जीवन, शिक्षा, अस्पृश्यता आदि विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। आज पारिवारिक जीवन में घुटन और तनाव अधिक है। स्वार्थ, ईर्ष्या, अहंकार, शिक्षा आदि ने पति-पत्नी और परिवार के अन्य सदस्यों के बीच के नाजुक और पवित्र रिश्ते को तोड़ना शुरू कर दिया है। परिणामस्वरूप समाज में परिवारों का विघटन देखने को मिल रहा है। गुप्तजी के जीवन का अधिक समय संयुक्त परिवार में व्यतीत होने के कारण उनके कथा-साहित्य में संयुक्त परिवार का चित्रण बड़ी मात्रा में मिलता है। परन्तु आज समाज में व्यक्तिगत परिवारों की संख्या अधिक दिखाई देती है। भारतीय समाज में प्रेम और विवाह की पारंपरिक अवधारणा को बदलना चाहते हैं।

भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है। वर्ण व्यवस्था और जाति इस सामाजिक विभाजन के प्रमुख रूपांतरणों के लिए जानी जाती हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य में भारतीय समाज का यह सामाजिक विभाजन प्रदर्शित किया गया है। उनके कथा-साहित्य में वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा, सामाजिक समानता और भेदभाव के मुद्दे बताए गए हैं। इससे हमें भारतीय समाज की सामाजिक और राजनीतिक संरचना के संकेत में मदद मिलती है। भारतीय समाज में नारी सम्मान का सम्मान भी अहम है। नारी को समाज में सम्मान और उच्चता देना भारतीय संस्कृति का एक सिद्धांत है। भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य में नारी को प्रतिष्ठित करने की भावना प्रधान है। उनके कथा-साहित्य में नारी की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति, नारी के प्रति समाज की भावना, और नारी के सम्मान को लेकर विचार-विमर्श किया गया है।

भारतीय समाज अर्थव्यवस्था प्रधान समाज बन गया है। वर्तमान समाज में अमीर और अमीर होते जा रहे हैं तथा गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। इस असंतुलन के कारण समाज का आर्थिक संतुलन नष्ट हो गया है।

गुप्ताजी ने अपने कथा-साहित्य में रोजी-रोटी की तलाश में भूख से पीड़ित गरीब किसानों, मजदूरों और उनके परिवारों की चीख-पुकार और सिसकियों को व्यक्त किया है।

भारतीय समाज की धार्मिकता एक अन्य विशेषता है जो इसे विश्वव्यापी बनाती है। भारतीय समाज में हिंदू धर्म, इस्लाम, सिख धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म जैसे कई धर्मों के अनुयायी हैं। श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य में धर्म और धार्मिकता की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। उनके कथा-साहित्य में धार्मिक तत्व, धर्म के प्रति अनुष्ठान, और धार्मिक पत्रिकाओं के प्रति अनुयायियों के अनुराग का परिचय दिया गया है। भारतीय समाज के विभिन्न नामों में सामाजिक सुधार और नवजवान की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य में युवा पीढ़ी के महत्व को उजागर किया गया है। उनके कथा-साहित्य में नवजवानों के भाव, विचारधारा और समस्याओं का समाधान उपलब्ध है। इससे हमें समाज के आह्वान के लिए युवा पीढ़ी को सही मार्गदर्शन का अनुभव होता है।

श्री भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य के संदर्भ में भारतीय समाज के विभिन्न सिद्धांतों का अध्ययन व्यापकता और महत्वपूर्णता से भरा है। इन उपन्यासों एवं कहानियों में भारतीय समाज की अखण्डता, विविधता, और समृद्धि का बोध होता है। हमें इन में भारतीय समाज के विभिन्न सिद्धांतों को सुधार के लिए प्रेरित करने वाले कदम शामिल हैं। इस प्रकार, भारतीय समाज के अध्ययन से हमें उसका सामाजिक जीवन, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य का महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है।

01-03-2024, डॉ. राजू. सी.पी
तृश्शूर।

अनुक्रमणिका

अध्याय 1

भैरवप्रसाद गुप्त का व्यक्तित्व एवं रचना संसार

भैरवप्रसाद गुप्त एक प्रमुख हिन्दी कवि थे जो अपने कथा-साहित्य के माध्यम से भारतीय साहित्य में अपनी विशेष पहचान बना चुके हैं। उनका जीवन और रचनाएँ उनके व्यक्तित्व को दर्शाने में महत्वपूर्ण हैं। व्यक्तित्व एक व्यक्ति के विशेष और अनूठे गुण, भावनाएं, और व्यवहार का समूह होता है। यह उसकी आत्मा, विचारशीलता, और आचरण के साथ जुड़ा हुआ है। व्यक्तित्व अद्वितीय होता है और एक व्यक्ति को अन्य सभी से अलग बनाता है। यह मानव संबंध, सामाजिक आवेग, और स्वास्थ्य के संदर्भ में महत्वपूर्ण होता है। व्यक्तित्व का विकास और समर्पण से होता है, और यह व्यक्ति के जीवन को समृद्धि और संतुलन की दिशा में प्रवृत्ति करता है।

रचना का अर्थ है किसी नए और आदृश्य चीज का सृष्टि करना। यह कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान, और अन्य क्षेत्रों में व्यक्ति के रचनात्मक प्रक्रियाओं को सूचित करता है। रचना का क्षेत्र अत्यंत विविध है और यह व्यक्ति की अद्भुतता, विचारशीलता, और कलात्मक प्रतिभा को प्रकट करता है। रचना मानव समृद्धि और प्रगति के लिए आवश्यक है, और यह समझ, सोचने की क्षमता, और सृजनात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है।व्यक्तित्व और रचना दोनों ही एक-दूसरे के साथ गहरा संबंध रखते हैं। व्यक्तित्व, अपने विचारों, भावनाओं, और अद्वितीयता के माध्यम से, रचनात्मक प्रक्रियाओं के माध्यम से अपनी अद्वितीय पहचान बनाता है। यह रचनात्मक प्रक्रिया भी व्यक्तित्व को विकसित करने में मदद करती है और सृजनात्मक सोचने की क्षमता को प्रोत्साहित करती है।

देश में समय-समय पर बड़े-बड़े साहित्यकारों का जन्म होता है। वे अपने कठिन परिश्रम से देश के साहित्य में अपने अमूल्य योगदान भी दिए हैं। इन साहित्यकारों में अनेक इस संसार से चल बसे। उन साहित्यकारों में श्री भैरवप्रसाद गुप्त का नाम अमर हैं। भैरवप्रसाद गुप्त आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य के बहुमुखी प्रतिभावान साहित्यकार है। वे उपन्यासकार के रूप में ही नहीं, कहानीकार के रूप में भी बड़े सशक्त हैं। उपन्यास और कहानी के अलावा एकांकी, नाटक तथा रेडियो नाटकों को भी सफलतापूर्वक लिखा है। हिन्दी साहित्य के पद्य विधा को छोड़कर प्राय: सभी गद्य विधाओं पर वे अपनी लेखनी चलाई है।

"गुप्तजी हिन्दी कथा-साहित्य के प्रगतिवादी आन्दोलन की अन्तिम कड़ी थे, जिसकी जड़ें राहुल सांकृत्यायन और यशपाल ने रोपी थीं। नागार्जुन, रंगेय राघव और अमृत राय इसी आन्दोलन से फूटी शाखाएँ थी"1। एक लेखक के रूप में उन्होंने प्रेमचंद की भाँति ही शहर और गाँव दोनों को ही अपनी रचना के केन्द्र में रखा और मानवीय शोषण के अनेक रूपों को उद्घाटित करके एक वर्गहीन समाज के निर्माण का रास्ता तैयार किया। गुप्तजी के निधन से हिन्दी कथा-साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन की वह अंतिम कड़ी टूट गई है, जिसके विकास के लिए वे मुहब्बत की राहें कहानी संग्रह(1945) से लेकर उनके मरणोपरान्त प्रकाशित छोटी सी शुरुआत उपन्यास(1997) तक निरंतर सक्रिय रहे।

जन्म और परिवार

भैरवप्रसाद गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक छोटे से गाँव सिवानकलाँ में 7 जुलाई 1918 को मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। "उनका परिवार गाँव का एक सम्मानित वैश्य परिवार था, जो बहुत अधिक संपन्न न होने पर भी सामान्य तौर पर एक खाता-पीता परिवार कहा जा सकता है। उस समय गाँव में आम लोगों की जैसी हालत होती थी, जिन कठिन और दुर्वह स्थितियों में उन्हें जीवन-यापन करना होता था, उसे देखते हुए यह परिवार कदाचित् टोले का सबसे संपन्न परिवार भी माना जा सकता है"2।

गुप्तजी के पिता का नाम चरित्रराम और माता का नाम गंगादेवी था। चरित्रराम चीनी कारखाने में काम करते थे। उसके साथ ही तंबाकू का भी व्यापार करते थे। माता श्रीमती गंगादेवी पति परायण एवं धर्मनिष्ठ महिला थी। गंगादेवी के चार संतानें थीं, जिसमें तीन पुत्र और एक पुत्री थी। तीन पुत्रों में छोटा पुत्र भैरव प्रसाद गुप्त माँ का लाड़ला बेटा था।

गुप्तजी के बड़े भाई का नाम कृष्णप्रसाद और दूसरे भाई का नाम राधाकृष्ण था। उनकी प्रिय बहन का नाम कन्यामोती था। बड़े भाई कृष्णप्रसाद व्यवसाय करते थे। उन्होंने अपनी पत्नी की मृत्यु हो जाने के कारण दूसरा विवाह कर लिया। उस समय देश में स्वतंत्रता आन्दोलन बड़े ज़ोरों से चल रहा था। उस आन्दोलन में अंग्रेज़ों के दमन से कृष्णप्रसाद की मृत्यु हो गयी। दूसरे भाई राधाकृष्ण भी कट्टर देश भक्त थे। वे भी स्वतंत्रता आन्दोलन में लड़ते-लड़ते देश के लिए शहीद हो गये। वैसे गुप्तजी के दोनों भाई अपना जीवन देश केलिए कुर्बान किया। गुप्तजी की बहन कन्यामोती का विवाह छोटी उम्र में ही हो गया था, परन्तु विवाह के कुछ महीने बाद किसी बीमारी के कारण उनकी मृत्यु हो गयी।

गुप्तजी ने अपने परिवार के संबन्ध में इस प्रकार का विचार व्यक्त किया है "लेकिन अब मैं कह सकता हूँ, कोई बात थी, जिससे कि लगता कि मेरा घर, मेरा परिवार, गाँव में और मेरे खास मुहल्ले में एक सम्मानित परिवार था। मेरा पारिवारिक जीवन बहुत अधिक सुखी तो मैं नहीं कहूँगा लेकिन मेरी ज़्यादा से ज़्यादा यह कोशिश रही है कि किसी को ज़्यादा तकलीफ़ न हो। लेकिन जिस तरह का मेरा जीवन रहा है उसमें तकलीफ़ तो होनी ही थी। जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण और प्रयाण यह था कि मुझसे किसी को ज़्यादा तकलीफ़ न हो। जो कठिनाई आयी मैं ने ही झेली। कभी किसी को पता तक नहीं चलने दिया कि स्थिति क्या है?"3।

बाल्य-जीवन

जीवन में हर व्यक्ति को अपना बाल्य-जीवन बड़े मीठे और यादगार होते हैं। गुप्तजी का बाल्यकाल अपने गाँव, बलिया के सिवानकलाँ में बीता।

माताजी की पालन-पोषण में ही वह विकसित हुआ। इसलिए गुप्तजी पर अपनी माताजी के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव है। उनके बचपन की अनेक स्मृतियाँ उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुई है। ऐसा लगता है कि धरती उपन्यास में गुप्तजी का बचपन ही परिलक्षित होता है। सती मैया का चौरा उपन्यास में मुन्नी तथा उनके मरणोपरान्त प्रकाशित उनके अन्तिम उपन्यास छोटी सी शुरुआत में सरल आदि के चरित्र में भी उनका ही बचपन झाँकता हुआ प्रतीत होता है।

"बचपन में सभी तरह के बच्चों के साथ गुप्तजी का उठना-बैठना, खेलना-कूदना सामान्य रूप से होता था। किसी प्रकार का वर्गीय या जातीय बन्धन नहीं था। गाँव के वातावरण में स्वच्छन्दता से विकसित बाल्यकाल गुप्तजी के व्यक्तित्व की निर्मित प्रक्रिया अक्सर बाल्य-काल से ही शुरु होती है। गुप्तजी ने बचपन की एक घटना को अपने जीवन पर प्रभाव डालनेवाली तथा उसे बदल देनेवाली घटना बताया है-लेकिन कुछ घटनाएँ इस तरह की होती हैं जिनका आगे के जीवन पर प्रभाव होता है, जिससे जीवन बदलता है"4।

शिक्षा

गुप्तजी की प्राथमिक शिक्षा अपने गाँव सिवानकलाँ में ही शुरु हुई थी। इसकी शुरुआत गाँव की महाजनी स्कूल से होती है। "उस दौर में इस प्रकार के महाजनी स्कूल गाँवों में चलते थे, जिनमें बनियों-महाजनों के बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाती थी, जो उन्हें दूकानदारी के हिसाब-किताब में मदद पहुँचा सके। बही, रोकड़ और छोटा-मोटा हिसाब-किताब ही इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता था। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए इन स्कूलों में अधिकतर गणित की शिक्षा पर ही ज़ोर रहता था"5। गुप्तजी की यह महाजनी शिक्षा एक-दो साल तक हुई। इन पाठशालाओं में दिलचस्पी नाम की कोई बात ही नहीं थी। मगर संस्कार पर अधिक बल दिया जाता था। रविवार के दिन के पाठ की पूजा के कारण विद्यार्थिनियों के मन पर श्रद्धा-भक्ति के वातावरण का प्रभाव पड़ता था।

गाँव के महाजनी स्कूल की पढ़ाई के बाद इस्लामिया स्कूल में दर्जा चार तक की पढ़ाई की। उसके बाद उन्होंने गाँव से दो मील दूर पर स्थित सिकन्दरपुर गाँव के मि़डिल स्कूल से मि़डिल पास किया। अपनी इसी पढ़ाई के दौरान कक्षा छह में ही महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी पर लेख लिखकर सारे प्रांत में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था। इसी स्कूल जीवन में उन्हें उर्दु और संस्कृत पढ़ने का मौका मिला। हाई-स्कूल में संस्कृत पढ़ानेवालेपंडितजी कहानियाँ और लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित करते थे। गुप्तजी अपने निर्माण में अध्यापक बाबू रघुनाथ राय की भूमिका और परिश्रम का उल्लेख बहुत कृतज्ञता-भाव से करते हैं।

आगे की पढ़ाई के लिए भैरवप्रसाद गुप्त को इर्विंगक्रिश्चिनकाँलेज इलाहाबाद में जाना पड़ा। वहाँ शिवदान सिंह चौहान, जगदीश चन्द्र माथुर, गंगा प्रसाद पाण्डेय और राजा बल्लभ ओझा आदि के संपर्क में आए। ये लोग हिन्दी साहित्य-परिषद् के सक्रिय कार्यकर्ता थे। इलाहाबाद और उन साथियों के बीच गुप्तजी की साहित्यिक और राजनीतिक अभिरुचियों का विकास हुआ। इलाहाबाद में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर तक पढ़ाई हुई। अपने महाविद्यालयीन जीवन में गुप्तजी हिन्दी साहित्य-परिषद् का काम बड़ी गंभीरता से करते थे। निराला, बच्चन जैसे श्रेष्ठ कवियों से गुप्तजी का इसी समय संपर्क हुआ। प्रेमचंदजी को मिलने का सौभाग्य भी यहीं पर हुआ। "इलाहाबाद के इसी साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश में भैरव प्रसाद गुप्त के रचनात्मक-संस्कारों को दिशा मिलती है"6।

वैवाहिक जीवन

भैरवप्रसाद गुप्त का विवाह सन् 1940 में बलिया के एक व्यवसायी छोटेलाल की पुत्री प्रेमकला से हुआ था। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि उनकी पत्नी अधिक दिनों तक वैवाहिक जीवन निभा न सकी। "सन् 1946 में उनके साथ घटी त्रासदी ने जैसे उन्हें तोड़ दिया। क्षय रोग से उनकी पत्नी का देहांत हो गया। वस्तुत: उनके किसी आत्मीय की यह पहली मौत थी, जिसे उन्होंने इतने निकट से देखा था" 7। इसी वैवाहिक जीवन में गुप्तजी को एक बेटा

जन्मा। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद माता-पिता के आग्रह पर दूसरी शादी छप्परा जिले के दरौली गाँव के रामजी की पुत्री बैद्यनाथी देवी से हुई। दुसरी पत्नी से गुप्तजी को दो संतानें हुई। बेटे का नाम जयप्रकाश और बेटी का नाम कविता था।

वैवाहिक जीवन के कुछ साल और बीतने पर गुप्तजी की दूसरी पत्नी बैद्यनाथी देवी को भी क्षयरोग का शिकार होना पड़ा। अपनी पत्नी बैद्यनाथी देवी के साथ गुप्तजी का पारिवारिक जीवन आर्थिक दृष्टि से बड़ा संघर्षमय रहा। अभावग्रस्त होते हुए भी मानसिक रूप से संतुलित तथा स्वस्थ वैवाहिक जीवन गुप्तजी की रचनात्मक साहित्यिक क्रियाशीलता की प्रेरणा कही जा सकती है।

आकार और वेश-भूषा

एक साहित्यकार के रूप में गुप्तजी अपनी बाह्याकृति से ही पहचाने जा सकते हैं। वे सादा और उच्च विचार वाले व्यक्ति थे। कन्धों तक लटके घुँघुराले बाल, दाढ़ी-मूँछ का नामोनिशान नहीं तथा खद्दर की सादी वेश-भूषा से अपने ही रंग में मस्त एक रचनाकार के रूप में उनका परिचय दे सकते हैं। गुप्तजी प्राय: खद्दर का कुरता-पायजामा ही पहनते हैं। घर पर प्राय: लुंगी का प्रयोग करते हैं। रहन-सहन में पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण आँचल की स्पष्ट छाप है।

नौकरी

भैरवप्रसाद गुप्त के जीवन में उनकी आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्हें बहुत से काम करना पड़ा। गुप्तजी की नौकरी की शुरुआत मद्रास से हुई। सन् 1938 से सन् 1940 तक मद्रास में हिन्दी प्रचारक महाविद्यालय में अध्यापक के रूप में काम किया। बाद में नेशनल कॉलेज तथा होली क्रोस कॉलेज त्रिच्चिराप्पल्ली में सन् 1942 तक अध्यापन कार्य किया। वहाँ कुछ समय आकाशवाणी में भी काम किया। देश में स्वतंत्रता आन्दोलन की लड़ाई के कारण गुप्तजी को त्रिच्चिराप्पल्ली छोड़कर कानपुर आना पड़ा। वहाँ सेन्ड्रलआर्डनेंस डिपो में सन् 1942 से 1943 तक काम किया। कानपुर में मज़दूर नेता अर्जुन अरोड़ा से परिचय होने के कारण उनकी प्रेरणा से गुप्तजी को सन् 1943-1944 तक बेगसतरलैंड कानपुर में काम करने का अवसर मिला।

वहीं से सन् 1944 से लेकर माया, मनोहर कहानियाँ तथा मनोरमा के संपादन कार्य सन् 1954 तक किया। कहानी का संपादन कार्य सन् 1954 से 1960 तक और नई कहानियाँ का संपादन सन् 1960 से 1963 तक दिल्ली में किया। सन् 1963 में गुप्तजी दिल्ली से वापस इलाहाबाद आये, तभी उनकी पत्नी बैद्यनाथी देवी जी भी बीमार हो गयी। कई डाक्टरों से इलाज करवाये लेकिन वे स्वस्थ नहीं हुई। ऐसे समय में वे पत्नी की सेवा-शुश्रूषा खुद ही करते थे। यही कारण सन् 1963 से लेकर 1974 तक बिना नौकरी के पत्नी की सेवा और स्वतंत्र रूप से लिखने का काम करना पड़ा। सन् 1974 से 1980 तक इलाहाबाद के मित्र प्रकाशन के संपादकीय विभाग में परामर्शदाता के रूप में काम किया। संप्रति सन् 1980 से 1995 अपनी मृत्यु तक स्वतंत्र लेखन का काम करके गुप्तजी ने जीवन व्यतीत किया।

सामाजिक संपर्क

गुप्तजी का सामाजिक संपर्क विद्यार्थी जीवन से ही रहा। विद्यार्थी परिषद् की पत्रिका के संपादन का काम उन्होंने किया। मध्य देशीय विद्यार्थी परिषद् उसका नाम था। हाई-स्कूल में ही इस तरह से उनका सामाजिक संपर्क शुरु होता है। अपना जिला बलिया की साहित्यिक संस्थाओं से उनका बराबर संपर्क रहा। दिल्ली के गुरु भक्त सिंह तथा मधुर श्रीवास्तवजी से उनकी मित्रता थी।इलाहाबाद के कालेज में पढ़ते समय कवि सम्मेलन तथा चर्चा गोष्ठी के लिए आयोजन करना तथा उसमें भाग लेना गुप्तजी के लिए आम बात थी। यहाँ पढ़ते समय हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों से घनिष्ठ मित्रता था। हिन्दी साहित्य परिषद् का कार्य भी बड़ी गंभीरता से चल रहा था। कवि सम्मेलनों में बच्चनजी और निरालाजी से भी गुप्तजी का मिलना-जुलना होता रहा।श्री सादिक अली तथा राजगोपालाचारी के संपर्क के कारण दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार सभा का काम करने गप्तजी गये और जहाँ पर गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम- राष्ट्रभाषा प्रचार में वे लग गये थे। कानपुर में मज़दूर नेता अर्जुन अरोड़ा से गुप्तजी का परिचय हुआ। मज़दूरों के संघर्ष को गुप्तजी को बहुत करीब से देखने को मिला।

प्रगतिशील लेखक संघ में सदस्य होकर गुप्तजी काफ़ी क्रियाशील रहे, जिससे उन्हें इलाहाबाद इकाई का मन्त्री भी चुन लिया गया। कम्यूनिस्ट पार्टी का काम भी उन्होंने किया। सन् 1948 में वे पी. सी. जोशी तथा ओम प्रकाश संगल के आग्रह से कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये थे। उनके साथ नरेश मेहता भी थे।सन् 1945 में गुप्तजी प्रगतिशील लेखक संघ, इलाहाबाद के शाखा मन्त्री तथा सन् 1949 में प्रगतिशील लेखक संघ, उत्तर प्रदेश हिन्दी पत्रकार संघ की कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये थे।सन् 1981 में जनवादी लेखकों ने नये संगठन का आह्वान करते हुए उनका सफ़लतापूर्वक संयोजन भी किया। सन् 1982 से 1987 तक वे जनवादी लेखक संघ के प्रथम अध्यक्ष रहे।

साहित्य सृजन का उद्देश्य

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ानेवाले यथार्थवादी कथाकार के रूप में गुप्तजी विख्यात हैं। प्रेमचन्द से प्रभावित होकर ही उन्होंने लिखना शुरु किया था। हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द किस उद्देश्य से अपनी रचनाएँ रची थीं उसी उद्देश्य से गुप्तजी भी अपनी तूलिका चलायी है। गुप्तजी का कहना है "मुझे प्रेमचन्द से प्रेरणा मिली थी। मैं उन्हीं के जैसे सुधारवादी गाँधीवादी था। लिखता था प्रेमचन्द से प्रभावित होकर जिस तरह प्रेमचन्द ने लिखा था-देश की स्वतंत्रता में सहाय करने वाला साहित्य लिखो-इसी के लिए वह खुद भी लिखते थे" 8। वे आगे कहते हैं-"जब तक कोई महान उद्देश्य साहित्यकार के सामने नहीं होता था तब तक साहित्य भी महान नहीं बनता" 9।

गुप्तजी अपने साहित्य द्वारा मानव जीवन सार्थक बनाना चाहते थे। उनके साहित्य सृष्टि का उद्देश्य भी यही रहा। उनके अनुसार सार्थक का मतलब है "मनुष्य का समय सिर्फ रोजी रोटी कमाने में ही खर्च नहीं होना चाहिए बल्कि सांस्कृतिक क्रिया-कलापों में लगाने का अवकाश भी मिलना चाहिए। आज हमारे देश में यह स्थिति है कि करोड़ों लोग सिर्फ इसी सोच में हैं कि मैं कैसे कमाऊँगा और कैसे खाऊँगा। वास्तव में यह स्थिति कोई ठीक नहीं है।

पूँजीवादी व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो मनुष्य को पैसे का गुलाम बना देती है। पैसे कमाना छोड़कर कुछ नहीं कर सकता। मैं इस जीवन को जीवन नहीं समझता। जिसके लिखने से देश तथा समाज का उद्धार हो सके ऐसे जीवन की ओर ले जानेवाला साहित्य लिखना ही मेरे साहित्य का उद्देश्य है” 10।

मार्क्सवाद की प्रेरणा गुप्तजी स्वयं स्वीकार करते हैं। इस संबन्ध में डॉ.सुनन्दा पालकर का कथन है-“शुरु में लेखक देश की आज़ादी के बारे में अथवा अछूत समस्या, जाति-पाँति की समस्याओं के बारे में लिखता था, क्यों कि वह गाँधीजी के रचनात्मक कार्य का युग था। लेकिन जब से गुप्तजीमार्क्सवाद के संपर्क में आये तब से उसे एक मिशन के रूप में उन्होंने स्वीकार किया। समाजवादी विचारधारा की ओर पाठकों को चलने की प्रेरणा देने के लिए लिखते रहे। पाठकों को सामाजिक और राजनीतिक चेतना से प्रेरित करना गुप्तजी का साहित्य सृजन का प्रमुख उद्देश्य है” 11।

गुप्तजी के साहित्य सृजन का मूल उद्देश्य पाठकों को समाजवादी क्रान्ति की ओर अग्रसर करना है। वे जो कुछ भी लिखते थे वह समाजवाद के लिए ही होता था। इस पर विचार करते हुए गुप्तजी कहते हैं-“जो भी लिखा जाय, पाठकों की रुचि के परिष्कार के लिए किया जाय, उनकी चेतना का विकास किया जाय, पाठकों की रुचि के लिए किया जाय, उनकी चेतना का विकास किया जाय, परेशानियों को समझा जाय, परेशानियाँ क्यों है, इसके बारे में विचार किया जाय। मैं तो कहता हूँ कि जो भी कुछ किया जाय समाजवाद के लिए ही किया जाय। सबसे महान उद्देश्य तो यह है कि, क्रान्ति के लिए ही लिखा जाय” 12।

साहित्यक प्रेरणा स्त्रोत

गुप्तजी को अपने बचपन से ही साहित्य में लगाव थी। अपने स्कूल जीवने से वे पत्र-पत्रिकाएँ, उपन्यास एवं कहानियाँ पढ़ने से उसकी रुचि और भी बढ़ते गये। छठी कक्षा में पढ़ते समय ही आर्य समाज की प्रतिनिधि-सभा आगरा द्वारा उन्हें महर्षि दयानंद की जीवनी लिखने पर प्रथम पुरस्कार मिला था। यह पुरस्कार उनके बाल-मन की उर्वर और कल्पनाशील धरती पर

साहित्यिक-संस्कारों के बीज बोने का था। गुप्तजी को साहित्यिक प्रेरणा देनेवाले व्यक्तियों में पहला स्थान अपने हिन्दी अध्यापक बाबू रघुनाथ राय का है। "इन्हीं के संपर्क और प्रेरणा से गुप्तजी कहानी लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। इन्हीं को अपना आदर्श बनाकर उन्होंने पहली नौकरी शिक्षक की ही की" 13।

पत्र-पत्रिकाओं और नई किताबों की दृष्टि से इलाहाबाद एक आदर्श नगर था। साहित्यकारों का तो वह गढ़ था। इलाहाबाद इर्विन कॉलेज में पढ़ते समय उनके साहित्यिक अभिरुचि का विकास बढ़ गया। साहित्य परिषद् में काम करते समय गुप्तजी को पहली बार प्रेमचन्द का दर्शन हुए। उस प्रथम दर्शन की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं-"उनकी दहकानी मूँछें, मटमैला खद्दर का कुर्ता और धोती और सीधा-सादा व्यक्तित्व देखकर हम सभी चकित रह गये थे। वे हँसकर बात करते थे" 14। उस समय कॉलेजों में अक्सर कवि सम्मेलनों का आयोजन होता था। गुप्तजी उसमें भाग लेते थे। "इस दौर में गुप्तजी के मन में स्वयं कवि बनने की इच्छा जगी थी। कुछ कविताएँ उन्होंने लिखी भी। आगे चलकर आग़ा महल शीर्षक उनकी एक कविता विशाल भारती में छपी भी। इसी कविता को विस्तार देकर वे खण्ड काव्य भी लिखना चाहते थे, लेकिन उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई। इसी तरह सावित्री-सत्यवान शीर्षक एक महाकाव्य लिखने की योजना भी बनायी थी, जिसके नौ सर्ग हिन्दी प्रचारक में प्रकाशित भी हुए। लेकिन वह कभी पूरा नहीं हुआ" 15।

गुप्तजी पहले तो गाँधीवादी थे फिर माक्र्सवादी बन गये। यही माक्र्सवाद ही उनके साहित्य का प्रेरणा-स्त्रोत है। "गुप्तजी मानते हैं कि माक्र्सवाद ने उन्हें बहुत कुछ सिखाया है। माक्र्सवाद ने ही ऐसा मार्ग दिखाया कि जिस पर चलकर जो भी कुछ उन्होंने किया" 16।

मृत्यु

भैरवप्रसाद गुप्त हिन्दी साहित्य के सन् 1945 से लेकर 1995 तक की अपनी लंबी यात्रा पूरी करके 7 अप्रैल 1995 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में अपनी बेटी के घर से, हिन्दी कथा-साहित्य के सामाजिक यथार्थ की दुनिया को

सुदृढ़ बनाकर, सदा के लिए इस संसार से चले गये। गुप्तजी का शरीर चला गया लेकिन आत्मा हिन्दी साहित्य जगत में आज भी जीवित है।

रचना संसार (1943-1997)

भैरवप्रसाद गुप्त एक प्रसिद्ध समाजवादी कथाकार हैं। वे हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभावान कलाकार हैं। उन्होंने प्रेमचन्द की यथार्थवादी परंपरा को यशपाल के बाद समकालीन सन्दर्भों में आगे बढ़ाने का अतुल्य प्रयास किया है। सन् 1943 में प्रकाशित कसौटी एकांकी संग्रह के प्रकाशन से लेकर उनके मरणोपरान्त सन् 1997 में प्रकाशित उपन्यास छोटी सी शुरुआत तक, पचास सालों से भी अधिक की अवधि में उन्होंने प्रेमचन्द की तरह शहरी और ग्राम जीवन पर समान अधिकार के साथ लिखते हुए स्वाधीन भारत के बहुविध और जटिल हुए यथार्थ के विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किए हैं। वे हिन्दी साहित्य के सफल उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार तथा संपादक हैं। जब-जब उनके यहाँ एक ही उपन्यास या कहानी एकाधिक परिवर्तित नामों में प्रकाशित होने के कारण उनके नामों और संख्या को लेकर कुछ भ्रम की स्थिति भी रही हैं। फिर भी साहित्य के स्त्रोत से मिले हुए जानकारी के अनुसार गुप्तजी के रचना-संसार का विवरण इस अध्याय में किया गया है।

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास

1.	शोले	1946
2.	मशाल	1948
3.	लपटें	1951
4.	गंगा मैया	1952
5.	जंजीरें और नया आदमी	1954

(यही उपन्यास 1970 में बाँधी और 1982 में आग और आँसु नाम से प्रकाशित)

6.	सतीमैया का चौरा	1959
7.	धरती	1962
8.	आशा	1963

9. कालिन्दी 1963

10. रंभा 1964

(यही उपन्यास 1983 में सेवाश्रम नाम से प्रकाशित)

11. अन्तिम अध्याय 1970

12. नौजवान 1972

(यही उपन्यास 1989 में नयी पीढ़ी नाम से प्रकाशित)

13. उसका मुज़रिम 1972

(यही उपन्यास 1980 में एक जीनियस की प्रेमकथा नाम से प्रकाशित)

14. काशी बाबू 1987

15. भाग्य देवता 1992

16. अक्षरों के आगे मास्टरजी 1993

17. छोटी सी शुरुआत 1997(मरणोपरांत प्रकाशित)

कहानी संग्रह

1. मुहब्बत की राहें 1945
2. फरिश्ता 1946
3. बिगड़े हुए दिमांग 1948
4. इंसान 1950
5. सितार का तार 1951
6. बलिदान की कहानियाँ 1951
7. मंज़िल 1951
8. आँखों का सवाल 1952
9. महफिल 1958
10. सपने का अन्त 1961
11. मंगली की टिकुली 1982
12. आप क्या कर रहे हैं 1983
13. दस प्रतिनिधि कहानियाँ 2008 (मरणोपरांत प्रकाशित)

एकांकी और नाटक

1.	कसौटी (एकांकी संग्रह)	1943
2.	चंदबरदाई नाटक	1967

अनूदित

माँ, काँदीद, कर्कशा, चेरी की बगिया, ड़ोरी और ग्रे, बुलबुल, हमारे लेनिन, मालवा, माओ-त्से-तुंङग्रन्थावली।

संपादित पत्रिकाएँ

1.	माया और मनोहर कहानियाँ	1944-1953
2.	कहानी	1955-1960
3.	उपन्यास	1956-1959
4.	नई कहानियाँ	1960-1962
5.	समारंभ	जनवरी-मार्च 1972
6.	प्रारंभ	1973

भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों का सर्वेक्षण

भैरवप्रसाद गुप्त एक प्रसिद्ध समाजवादी उपन्यासकार है। उपन्यास क्षेत्र में गुप्तजी का पदार्पण सन् 1946 में शोले उपन्यास से हुआ। वैसे इसके पूर्व एकांकी तथा कहानियों का एक-एक संग्रह छप चुका था, लेकिन वस्तुत: शोले उपन्यास से ही उन्होंने हिन्दी साहित्य में अपनी पहचान बनाई। शोले के बाद उन्होंने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में सक्रिय रहे और लगातार सन् 1995 में अपनी मृत्यु तक 17 उपन्यास लिखते रहे। सर्वहारा वर्ग को विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति में क्रान्ति का मार्ग दिखाने का ऐतिहासिक कार्य गुप्तजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से करने का प्रयास किया है। गुप्तजी का आखिरी उपन्यास छोटी सी शुरुआत सन् 1997 में उनके मृत्यु के बाद ही प्रकाशित हुआ। उनके उपन्यासों का सर्वेक्षण नीचे दिया जा रहा है।

शोले (1946)

शोले गुप्तजी का प्रथम उपन्यास है। उपन्यास की शुरुआत बनारस में बरनदास के शाल्मली आश्रम से होती है। फिर कहानी पीछे की ओर लौटती है, जिसमें बरन के बी.ए की परीक्षा देकर लौटने पर शोभी से उसके प्रेम की

कहानी शुरु होती है। सामन्त तथा किसान वर्ग के दो प्रेमियों की असफल प्रेम गाथा इसमें वर्णित है। इस प्रेम कथा का नायक बरन तथा नायिका शोभी है। गुप्तजी ने इस प्रेम कथा में उस समय के समाज में प्रचलित अनमेल एवं बाल विवाह, विवाह-पूर्व प्रेम आदि की सामाजिक स्थिति, भारतीय गाँवों में प्रचलित ज़मींदारी का माहौल, गरीब परिवारों के आर्थिक विषमता तथा उससे उत्पन्न जीवन की व्यथा और गाँवों की धार्मिक आचार-अनुष्ठानों का सुन्दर चित्रण किया है।

मशाल (1948)

मशाल उपन्यास के माध्यम से गुप्तजी अपने क्रान्तिकारी विचारों को मज़दूरों तक पहुँचाने तथा उनको सक्रिय संघर्ष में शामिल होने का संदेश देना चाहते हैं। कानपुर के मिल-मज़दूरों के संघर्ष की विस्तृत कहानी इसमें प्रस्तुत की है। इस उपन्यास का नायक नरेन तथा नायिका सकीना है। अधिक मेहनत करनेवाले मज़दूरों को कम वेतन दिये जाने के कारण आर्थिक शोषण पूर्ण के खिलाफ मज़दूरों ने मिल-मालिकों के विरुद्ध इसमें आन्दोलन किया है। इस उपन्यास में गुप्तजी मज़दूरों को विश्वास दिलाते हैं कि पूँजीवादी समाज के ढाँचे को बदलने के लिए तथा सामाजिक, राजनैतिक चेतना को जागृत करने हेतु हड़ताल, विद्रोह, आन्दोलन और क्रान्ति का मार्ग अपनाना ज़रूरी है।

समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा राष्ट्रीय घटनाओं को गुप्तजी ने इसमें चित्रण करने का प्रयास किया है। “आधुनिक युग के कारखानों के मालिकों का शोषण, भारतीय मज़दूर आन्दोलन और उसके संदर्भ में रूसी क्रान्ति, साम्यवादी द्वंद्व का महत्व, वेश्या के रूप में समाज में बढ़ रही नारी शोषण, अग्रेज़ सिपाहियों के अत्याचार, समाजिक तथा राजनीतिक चेतना को जागृत करने हेतु हड़ताल, विद्रोह एवं आर्थिक विषमता से पनप रहे गरीबी आदि समस्याओं की प्रस्तुति उपन्यास में किया है। सांप्रदायिक सद्भाव और मज़दूर जीवन के आत्मीय अंकन की दृष्टि से मशाल आज भी एक उल्लेखनीय उपन्यास माना जा सकता है” 17।

लपटें (1951)

लपटें गुप्तजी के 59 पन्ने वाला एक लघु-उपन्यास है। इसका प्रकाशन दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा में हुआ, जहाँ गुप्तजी सन् 1938 से सन् 1940 तक अध्यापन कार्य किया था। इस उपन्यास का उद्देश्य, उपन्यास के आरंभ में ही प्रकाशक इस प्रकार व्यक्त किया है। “दुनिया में स्वार्थ बहुत बड़ी चीज़ है। अगर वह स्वार्थ व्यक्ति तक ही सीमित हो तो वह मानवता के लिए हानिकारक बन जाता है। दूसरों की उन्नति को देखकर संतोष पाना उतना आसान नहीं। स्वार्थवश आदमी खुद भी गहरे गति में गिरता है और दूसरों को भी गिराता है। ईर्ष्या-द्वेष जैसी वस्तु अगर दुनिया में न होती तो मनुष्य की अनुकंपा के लिए जगह कहाँ? कोई पैसा चाहता है तो कोई हैसियत। कोई सहारा ढूँढ़ता है तो कोई आसरा छीनने की ताक में है। आश्रयदाता के दिल की समवेदना हैसियत के परदे में ढँक दी जाय तो निराश्रित को आश्रय कौन दे? हैसियत के परदे के पीछे यदि स्पर्धा की भावना अपना राग आलापती हो और ईर्ष्या आलाप के अनुकूल ताल देती हो तो व्यक्ति समवेदना खो बैठता है। इसका परिणाम कितना भयंकर होता है, इसे काता के जीवन में, शर्रा की स्पर्धायुक्तईर्ष्या में, सुधा के ह्मदय-हीन व्यवहार में और अमर की चंचल प्रवृत्ति में देख सकते हैं। इन चित्रों को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित कर पाठक के ह्मदय को अनुभूति से और बुद्धि को विचारों से, उकसाने में भैरव प्रसादजी सफल हुए हैं” 18।

गंगा मैया (1952)

यह उपन्यास गुप्तजी के अपने गृह क्षेत्र बलिया के निकटवर्ती भू-भाग, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की सीमा को, केन्द्र में रखकर विकसित होता है। यह दो पड़ोसी गाँवों में सामंती उत्पीड़न से मुक्ति के आह्वान की कहानी है। गंगा मैया उपन्यास कथा-संगठन की दृष्टि से कदाचित् गुप्तजी का सबसे सफल उपन्यास माना जा सकता है। कुछ विद्वान लोग इस उपन्यास को आँचलिक उपन्यास का नाम भी दिया है। इसमें गुप्तजी ने एक ओर यदि गोपी और मटरू के रूप में सामंती उत्पीड़न के विरुद्ध समाजिक परिवर्तन की शक्तियों के अंकन की कलात्मक कोशिश की है, वहीं गोपी की विधवा भाभी के रूप में रूढियों और अंधविश्वास से घिरे भारतीय ग्राम-समाज के लिए भी एक बड़ी चुनौती

प्रसतुत की है। "उत्तर भारत के देहाती जीवन को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अंकित करना तथा नवयुवक किसानों में, ज़मींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध संपूर्ण शक्ति से संक्षिप्त करना इस उपन्यास का उद्देश्य है। मटरू के रूप में किसान नेता का आदर्श उपस्थित कर लेखक ने एक संघर्षशील निड़र और आत्मबल से युक्त समाजवादी चेतना की ओर संकेत किया है" 19।

जंजीरें और नया आदमी (1954)

प्रस्तुत उपन्यास में गुप्तजी ने द्वितीय महायुद्ध के समय अग्रेज़ी साम्राज्यवाद के हासोन्मुखी व्यवस्था, जमींदारों के शोषण एवं बेकारी की समस्या का चित्रण किया गया है। सामन्तीय जीवन के आवरण में अनाचार, बर्रबरता, आदि बातें छिपी हुई हैं। सामन्त वर्ग का जीवन कितना जघन्य, खोखला, व्यभिचारयुक्त था, इस उपन्यास से स्पष्ट होता है। बड़े सरकार उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। वे सामन्तवादी विलासिता का प्रतीक है, जो अपने स्वार्थ तथा घृणित अत्याचारों को अपना हक समझते हैं। गरीब किसानों एवं हवेली की लौंडियों पर जुल्म जबरदस्ती करते हैं। अपनी पत्नी रानीजी को पाने में असमर्थ होने के कारण अपनी दासियों को कैद करके उनका भोग करते हैं। डॉ.कुँअर पाल सिंह के मतानुसार "भैरवजी ने बड़ी सफलतापूर्वक टूटते हुए सामन्ती जीवन के सामाजिक और नैतिक पक्ष का अत्यन्त जीवन्त और प्रामाणिक चित्रण किया है। नारी जीवन के उन पक्षों का उद्घाटन किया है जो सामंती शोषण के सबसे अधिक शिकार रहे हैं" 20।

सती मैया का चौरा (1959)

गुप्तजी का यह उपन्यास बहुत ही लोकप्रिय हुआ है। यह उपन्यास भी गंगा मैया उपन्यास की भाँति आँचलिकता से भरपूर है। उत्तर प्रदेश के एक अंचल की मिट्टी से जन्मा यह उपन्यास गुप्तजी को यथेष्ट सम्मान देने में समर्थ है। "इस उपन्यास में गुप्तजी एक ओर यदि गाँवों की मुक्ति का सवाल उठाते हैं तो दूसरी ओर वे सांप्रदायिक सद्भाव के लिए किए जानेवाले संघर्ष को भी विस्तारपूर्वक अंकित करते हैं" 21। मन्ने और मुन्नी इस उपन्यास के दो प्रमुख पात्र हैं। मुन्नी हिन्दु तथा मन्ने मुसलमान हैं। ये दोनों किशोरों को केन्द्र में

रखकर ही इस उपन्यास की कहानी विकसित होती है। “सती मैया का चौरा में भैरवप्रसाद गुप्त ने ज़मींदारी के अत्याचार तथा अत्याचार के विरुद्ध किसानों का संघर्ष, पूँजीवादी व्यवस्था का विकास और उसकी असंगतियों, सरकारी नेता और अधिकारियों द्वारा ली जानेवाली घूस, पाण्डे, पुरोहितों के थोथे आडंबर, शिक्षा संस्थानों में होनेवाले भ्रष्टाचार, स्वार्थ सिद्धि के लिए साम्प्रदायिक दंगे करानेवाले गाँधी की खादी में घुसे हुए आधा तीतर(सामन्त) आधा बटेर (पूँजीवादी) लोग, पदों के भूखे उत्तरदायित्वहीनकाँग्रेसी नेताओं, पूँजीवादी व्यवस्था की गरल स्वरूप बेरोज़गारी और कमरतोड़ महँगाई आदि का समाजवादी दृष्टि से चित्रण किया गया है। तीन पीढियों से होनेवाले किसान और ज़मींदारों के संघर्ष, उनकी हारजीत का मर्मस्पर्शी एवं संवेदनात्मक संप्रेषण उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है” 22।

धरती (1962)

यह उपन्यास स्वाधीनतापूर्व 1942 के क्रान्तिकारी वातावरण को पृष्ठभूमि को रखकर लिखा गया है। इसमें न केवल जन-जीवन की समस्याओं का चित्रण ही किया है बल्कि आधुनिकतावादी साहित्य की आलोचना भी की है। इसका कथानायक मोहन प्रगतिशील विचारों का बुद्धिजीवी व्यक्ति है। यद्यपि वह मध्यवर्गीय समझा जाता है लेकिन उसके सारे दु:खनिम्नवर्गीय मज़दूरों से कुछ कम नहीं है। संपूर्ण उपन्यास पति-पत्नी के बीच चलनेवाला वार्तालाप के रूप में तैयार किया है। दोनों की बहस से घण्टों बिता देते हैं। मोहन अपने बचपन तथा विद्यार्थी जीवन के अनुभव अपनी पत्नी शशी के सामने खुलकर बताता है। “हमारे देश के गरीब किसान मज़दूर अपने जीवन निर्वाह के लिए हाड़-तोड़ मेहनत करते हैं; फिर भी वे सुखी नहीं है” 23। “भारतीय गरीबी के सन्दर्भ में देश की राजनीति और सरकारी नीति पर भी मोहन बहस करता है। उसके विचारों में लेखक का निजी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय पिकेटिंग, हड़ताल आदि का चित्रण भी इसमें हुआ है” 24। इस उपन्यास का मूल स्वर सर्वहारा वर्ग को उसकी दयनीय स्थिति से उबरने का प्रयत्न है।

आशा (1963)

आशा, कालिन्दी तथा रंभा एक ही उपन्यास के तीन भाग है, जिसे प्रकाशन ने अलग-अलग पुस्तकाकार में छपा है। आशा प्रथम उपन्यास है जो सितंबर 1963 में प्रकाशित हुआ। यह एक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास में कथा-नायिका आशा स्वयं अपनी कहानी सुनाती है। सेठ कालिन्दी प्रसाद आशा अर्थात् जानकीबाई को अपनी रखैल बनाना चाहता है। निर्धन दूकानदार बाप की बेटी होने के कारण ही नवाब के हरम में पहूँचा दी जाती है और बाद में वहाँ से मुक्त होने पर जानकीबाई के रूप में नाचने-गाने का धंधा करने लगती है। नवाब और सेठ कालिन्दी प्रसाद दोनों के लिए ही स्त्री भोग की सामग्री है। सामन्तवादी युग में नारी का नैतिक पतन किस प्रकार होता था, इसका सही चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। गुप्तजी का उद्देश्य नारी की शोषणावस्था का चित्रण करना है।

कालिन्दी (1963)

प्रस्तुत उपन्यास आशा उपन्यास का दूसरा भाग है। इसमें सेठ कालिन्दी प्रसाद अपनी कहानी बताते हैं। वे अपनी दास्तान खुद लिखते हैं। उच्चवर्ग में पायी जानेवाली झूठी और खोखली प्रतिष्ठा का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। धन की ताकत किसी को भी खरीदने में समर्थ है, इसका संकेत भी यहाँ दिया गया है। श्री विनोदकुमार शुक्ल ने इस उपन्यास का मूल्यांकन करते हुए लिखा है "कालिन्दी में उपन्यासकार अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल नहीं होता। इसका उद्देश्य जनमानस में उच्चवर्ग के प्रति घृणा उत्पन्न करना, स्वतंत्रता के ढ़ोंग से परिचित करवाना, प्रचलित समाज व्यवस्था की बुराइयों को नंगाकर जनमानस को एक नये प्रकार की स्वस्थ समाज-व्यवस्था लाने के लिए तैयार करना, लेकिन वैचारिक बोझिलता के कारण लेखक का आशय स्पष्ट नहीं हो पाता। फिर आधुनिक व्यवस्था में उभरे जटिल मानवीय संबन्धों की कल्पना उपन्यास में कम ही मिलती है" 25।

रंभा (1964)

यह उपन्यास आशा, कालिन्दी उपन्यासों की आखिरी कड़ी के रूप में सन् 1964 में प्रकाशित हुआ। बाद में यही उपन्यास सन् 1983 में सेवाश्रम नाम से भी प्रकाशित हुआ। गुप्तजी ने इस उपन्यास में भारतीय प्रजातन्त्र तथा सामाजिक प्रजा-तन्त्रियों की नई नस्लों को शब्दबद्ध किया है तथा प्रगतिशील जनवादी युगबोध की आवश्यकता पर बल दिया है। "इस उपन्यास में पूँजीवादी समाज का विघटन और आत्म-परायापन है। पूँजीवादी राजसत्ता की भ्रष्ट कार्यनीति भी है तथा ह्रासशील व्यक्तित्व की मानव विरोधी और आत्मघाती आचार संहिता भी है। रंभा उपन्यास से स्पष्ट होता है कि पूँजीवादी जनतंत्र की नैतिक जड़ता ने हमारे भीतर के फरेब को अनेक उदारवादीपन्थों में रूपान्तरित कर दिया है, शोषण की क्रूरता का उदात्तीकरण कर दिया है। इस उपन्यास में सत्य सेवा के मिथक की उन तमाम स्थितियों को विश्लेषित किया गया है जिसमें मनुष्यता पिसते-पिसते कंकालवत हो जाती है" 26।

अंतिम अध्याय (1970)

"एक नितांत भिन्न और बेहद निजी अर्थ में भी भैरव प्रसाद गुप्त उपन्यास को लड़ाई के अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करने वाले लेखक हैं। हिन्दी में ऐसी रचनाओं का अभाव नहीं है, जो अपने सहयोग और समकालीन लेखकों से खुंदक निकालने के लिए लिखी गई हैंखुंदक निकालने के लिए लिखी गई हैं। भैरव प्रसाद गुप्त का अंतिम अध्याय हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक उपेन्द्रनाथ अश्क को केन्द्र में रखकर लिखा गया एक ऐसा ही उपन्यास है। अश्क से न सिर्फ भैरव प्रसाद गुप्त के सुदीर्घ मैत्रीपूर्ण पारिवारिक संबन्ध रहे, वे उनके सती मैया का चौरा उपन्यास के अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाओं के पहले प्रकाशक भी थे। लेकिन फिर किन्हीं भी कारणों से हो, इस संबन्धमें बिगाड़ पैदा होता है और इस बदले तथा बिगड़े हुए संबंध की झलक कौशल्या अश्क की कहानी दावत-अदावत में देखी जा सकती है। भैरव प्रसाद गुप्त का अंतिम अध्याय इसी प्रकाशक दम्पति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है" 27।

आज़ादी के बाद पूँजीपति मालिक प्रकाशन व्यवसाय में पैसा कमाने के लिए, निर्धन मज़दूरों का शोषण किस प्रकार करते हैं, इसको दर्शाना इस

उपन्यास का उद्देश्य है। उपन्यास शुरु होने के पहले अब्राहमलिंकन का वचन इस प्रकार दिया गया है-"आप कुछ लोगों को हमेशा बेवकूफ़ बना सकते हैं, सभी लोगों को हमेशा बेवकूफ़ नहीं बना सकते। शब्दाडंबर के सबसे चमकीले आवरण को भी भेदकर सत्य के चमकने का एक तरीका होता है" 28। उपन्यास के नायक नरेन्द्र द्वारा गुप्तजी शायद यही वचन साबित करना चाहते हैं।

नौजवान (1972)

प्रस्तुत उपन्यास सन् 1989 में नयी पीढ़ी नाम से भी प्रकाशित हो चुका है। यह उपन्यास शिक्षा व्यवस्था पर पूँजीवादी होने का आरोप करते हुए उसके विरोध में लड़नेवाले नौजवान के रूप में भरत नामक एक विश्वविद्यालयीन छात्र की लड़ाई का चित्रण किया है। साम्यवादी विचारधारा को संप्रेषित करना इस उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है। निम्न मध्यवर्ग में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आर्थिक स्थिति से किस प्रकार संघर्ष करना पड़ता है तथा शिक्षा संस्थाएँ, समाज तथा छात्र संगठन किस प्रकार अपनी भूमिकाएँ निभाते हैं उसका चित्रण भी इस उपन्यास में दर्शनीय हैं।

उपन्यास में गुप्तजी ने छात्रों की लड़ाई के बारे में अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है-"लड़ाई अन्तर्विरोधों को हल करने के लिए कियेजानेवाले संघर्षों का सर्वोच्च रूप है और यह तभी होती है जब वर्गों, राष्ट्रों, राज्यों अथवा राजनीतिक दलों के बीच के अन्तर्विरोध विकसित होकर एक निश्चित मंजिल पर पहुँच जाते हैं। मैं आपकी ही लड़ाई का जिक्र कर रहा हूँ। आज पूरे देश के पैमाने पर विद्यार्थी उठ खड़े हुए हैं और उन्होंने लड़ाई छेड़ दी है। यह बात स्पष्ट संकेत करती है कि सरकार और विद्यार्थियों के बीच का अन्तर्विरोध इस समय इस मंजिल पर पहुँच गया है कि उनके बीच लड़ाई अनिवार्य हो गयी है और वह शुरु हो गयी है" 29।

उसका मुज़रिम (1972)

यह उपन्यास सन् 1980 में एक जीनियस की प्रेमकथा नाम से भी प्रकाशित हुआ है। "यह उपन्यास कला और साहित्य के नाम पर छली

जानेवाली स्त्री कुसुम की कहानी है। राजेश के निकट सम्पर्क में आकर ही अपने अनुभव से वह यह जान पाती है कि हमारी समूची व्यवस्था, कानून और आचार संहिता-सब की सब पुरुष वर्चस्व से बंधी है। इस वर्चस्व को तोड़ना ही अब उसके जीवन का लक्ष्य है"30। इस उपन्यास में नपुंसक व्यक्ति द्वारा अपनी कमजोरी को छिपाने का प्रयत्न और उससे अतिशय प्रेम करने वाली लड़की का मोहभंग होने के बाद घृणा में बदल जाने के कारण उसी को जान से मारने की घटना, मानसिक तथा यौन संबन्धों को उजागर करने में समर्थ है। प्रस्तुत उपन्यास में गुप्तजी ने पढ़े लिखे लोगों के नागरी जीवन का चित्रण किया है। बुद्धिमान लोगों के आपसी व्यवहारों का चित्रण भी किया गया है।

काशी बाबू (1987)

यह एक लघु उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में गुप्तजी ने पत्रिका व्यवसाय में हो रहे भ्रष्टाचार की समस्या का चित्रण किया है। उपन्यास में काशी बाबू, राव साहब, ब्राह्म प्रकाश शुक्ला, शिव शंभू मिश्रा, एलिस प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक लेखक और काशी बाबू के बीच के वार्तालाप शैली में यह उपन्यास लिखा गया है। काशी बाबू अपने जीवन की घटनाएँ लेखक से लिखवाता है। राव साहब विद्या पत्रिका का मालिक है, उस पत्रिका का मैनेजर काशी बाबू है। राव साहब पत्रिका के संचालन में भ्रष्टाचार करता है। वह भ्रष्टाचार करने के लिए काशी बाबू, शुक्ला और मिश्रा को साथ लेता है। राव साहब के धन कमाने की लोभ देखकर लेखक कहता है "विद्या, ज्ञान, साहित्य, शिक्षा तथा पुस्तक के क्षेत्रों को तो मैं पवित्र समझता हूँ। आश्चर्य है, लोगों ने इन क्षेत्रों को भी अब व्यवसाय से जोड़कर भ्रष्ट कर दिया है" 31।

इस उपन्यास में गुप्तजी ने केवल पत्रिका व्यवसाय को ही केन्द्र बनाया है। उपन्यास की भूमिका में श्री राहुल ने इस प्रकार लिखा है-"जिस देश में शिक्षा तथा संस्कृति का व्यवसाय तथा पुस्तकों का काला धन्धा होने लगता है, उस देश की रक्षा भगवान भी नहीं कर सकता" 32। इस कारण से जीवन के अन्य क्षेत्रों को स्पर्श करने में गुप्तजी सफल नहीं हुए हैं।

भाग्य देवता (1992)

'भाग्य देवता' दो जीवन-दृष्टियों की टकराहट का उपन्यास है। उपन्यास के दो प्रमुख पात्र, बाबुजी और छगनजी के माध्यम से गुप्तजी ने भिन्न और विरोधी दृष्टियों के इस टकराव को अंकित किया है। भारतीय प्रसों के वर्करों के माध्यम से कम्यूनिस्ट विचारों के प्रचार-प्रसार तथा समाजवादी क्रान्ति को प्रेरणा देने के लिए गुप्तजी ने प्रस्तुत उपन्यास लिखा है। नशेबाज निठल्ला मालिक किस तरह वर्करों का खून चूसकर पूँजीवादी बनता है, इसका सुन्दर चित्रण इस उपन्यास में दृष्टिगत है, लेखक का उद्देश्य भी वही है।

उपन्यास का मूल्यांकन करते हुए श्री मधुरेशजी का कहना है-"अपने भाग्य देवता में भैरव प्रसाद गुप्त ने अपने नगर का साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश अंकित करते हुए कुछ वास्तविक व्यक्तियों पर विवादास्पद टिप्पणियाँ की हैं। अपने अधिकांश कथानायकों की तरह यहाँ भी भैरव प्रसाद गुप्त अपने राजनीतिक और संपादकीय अनुभवों को छगनजी के माध्यम से रूपायित करते हैं। इस तरह भाग्य देवता को वे दो परस्पर विरोधी जीवन दृष्टियों-पूँजीवाद बनाम समाजवाद और भाग्यवाद बनाम श्रम के टकराव के माध्यम से विकसित करते हैं। इसमें लेखक ने संगठन का व्यक्ति होकर भी संगठन के संबन्ध में कुछ महत्वपूर्ण और विवादास्पद प्रश्न उठाये हैं। इतिवृत्तात्मकता, बहसों और विवरणों के माध्यम से लेखक एक समूचे काल-खण्ड की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है" 33।

अक्षरों के आगे मास्टरजी (1993)

मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, यही दर्शाना प्रस्तुत उपन्यास का लक्ष्य है। उपन्यास के प्रारंभ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी की जो पंक्तियाँ उद्धृत की गयी है, धर्ममूढ़ लोगों के धर्म-विचार से समाज को मुक्त करके ज्ञान के आलोक के प्रसार की प्रार्थना के रूप में, वे उपन्यास के रचनात्मक उद्देश्य को प्रकाशित करती हैं। "भैरवप्रसाद गुप्त समाज की जड़ता और अंधविश्वास को तोड़कर सामाजिक और राष्ट्रीय विकास के लिए वैज्ञानिक दृष्टि के विकास पर बल देते हैं। मास्टरजी नास्तिक हैं और पत्नी के बीच उनके

सुधीर्घ संवाद का दायरा बहुत व्यापक है। समाज और संस्कृति की समस्या उसके परे और बाहर नहीं हैं। बुद्द, गाँधी, कबीर, तुलसी से लेकर सोवियत संघ के विघटन से पूर्व वहाँ घटित सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तन-ग्लास्तनोस्त और पेरेस्ट्रोइका सब कुछ इस दायरे में आता है। शिक्षा का उद्देश्य बहुत व्यापक है। नौकरी की लक्ष्य-सीमा में बँधी शिक्षा न अब तक देश का भला कर सकी है और न ही आगे कभी कर सकेगी" 34।

लोकतंत्र के विकास में अशिक्षा सबसे बड़ी बाधा है। आज बिना शिक्षावाले मनुष्य बिना सींग वाले पशु के समान है। विज्ञान जन-जीवन का रूप लेकर सामान्य जनता के लिए लाभकारी हो सकता है। सोवियत संघ में क्रान्ति के बाद जैसे धार्मिक स्थलों को स्कूलों और अस्पतालों में बदल दिया गया था, वैसे ही पहले गाँव में बंद पड़े मंदिर को विद्यालय का रूप देकर गुप्तजी ने शिक्षा की महत्व को चित्रित करने के लिए जो साहस किया है, वह प्रशंसनीय है। यह उपन्यास पति-पत्नी, मास्टरजी और मास्टराइन, के लंबे संवाद की शैली में लिखा गया है और जहाँ-तहाँ गुप्तजी के अपने संघर्ष और वैचारिक विकास को व्यक्त किया गया है।

छोटी सी शुरुआत (1997)

गुप्तजी के मरणोपरान्त प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास उनका महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय उपन्यास है। इस उपन्यास में सरल और आफ़ताब के माध्यम से चौथे दशक के पूर्वार्द्र्ध में इलाहाबाद का साहित्यिक, शैक्षिक और राजनीतिक वातावरण विस्तार से अंकित है। महाजन और जमींदारों के पारिवारिक जीवन, हिन्दु - मुस्लिम दंगा, एकता, संयुक्त परिवार, ग्रामीण जीवन, प्रेम विवाह, बेरोज़गारी, सरकारी कामों में भ्रष्टाचार, साक्षरता अभियान, ईसाई मिशनरियों के द्वारा समाज में किये जाने वाले सेवा-कार्य आदि का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है।

श्री मधुरेशजी के विचार में "अपने इस उपन्यास में भैरवप्रसाद गुप्त एक भिन्न और परिवर्तित राह का संकेत देते हैं। यहाँ उनका नायक राजनीतिक से अधिक सामाजिक और पारिवारिक परिवर्तन के लिए प्रतिश्रुत है। एक छोटी

सी शुरुआत भी यह इसी अर्थ में कि जो कुछ वह ज़रूरी समझता है, उसे स्वयं अपने पर लागू करके देखता है।...छोटी सी शुरुआत का वास्तविक महत्व वस्तुत: विचारधारा और रणनीति संबंधी आत्मालोचना में निहित है। भैरव प्रसाद गुप्त अपने उपन्यासों के लिए निर्धारित और प्रयुक्त ढर्रा यहाँ तोड़ते हैं। विचारधारा के प्रति ज़ेहादी उत्साह यहाँ संतुलित हुआ है और व्यक्तिगत स्तर पर छोटे-छोटे प्रयासों का महत्व बढ़ा है" 35।

भैरवप्रसाद गुप्त की कहानियों का सर्वेक्षण

आम तौर पर यह माना जाता है कि गुप्तजी मुख्यत: उपन्यासकार हैं। यह शायद सही भी है क्योंकि आज़ादी के बाद के भारतीय समाज की केन्द्रीय समस्याओं को विस्तार से चित्रित करने के लिए उन्होंने उपन्यास विधा को ही प्राय: अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। लेकिन उनकी कहानियों की संख्या भी कम नहीं है। पिछले साठ वर्षों में प्रतिष्ठित कहानीकारों ने जितनी कहानियाँ लिखी होगी, गुप्तजी की कहानियाँ संख्या में प्राय: उनमें से प्रत्येक की कहानियों से अधिक होगी। यही नहीं, उनकी कहानियों को प्रभावपूर्ण लोक कथा-शैली, तीखे सामाजिक व्यंग्य, परिवर्तनकारी पात्रों के प्रेरणादायक चित्रण, निम्न मध्यवर्गीय जीवन में पायी जानेवाली यंत्रणा के लिए गहरी सहानुभूति तथा मूल राजनैतिक दृष्टि की स्पष्टता के लिए सार्थक मिसाल के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

एक कहानीकार की हैसियत से गुप्तजी की रचनात्मक सक्रियता के संकेत पाँचवें दशक के आरंभ से ही मिलने लगे थे। उनकी कहानियों का संग्रह मुहब्बत की राहें सन् 1945 में प्रकाशित हुआ और उसी के अगले वर्ष सन् 1946 में उनकी कहानियों का दुसरा संग्रह फ़रिश्ता निकला। गुप्तजी की कहानियों का परिवेश आज़ादी के पूर्व और बाद के समस्याग्रस्त समाज है, जिसमें ईमानदार और परिश्रमी लोगों के लिए हर कदम पर निराशा और पीड़ा ही उपस्थित रहती है। उनकी कहानियों की काफ़ी संख्या के पात्र शहरों और कस्बों में रहते हुए अपने भविष्य के बारे में सपने देखते हैं तथा अपनी हैसियत के मुताबिक अनेक योजनाएँ बनाते हैं। उनका मूल प्रेरणा-स्त्रोत आज़ादी की

वह पृष्ठभूमि है, जिसके लिए उनके सामने ही देश की जनता-द्वारा लंबा संघर्ष चलाया गया।

गुप्तजी के एक ही कहानी एकाधिक परिवर्तित नामों से प्रकाशित होने के कारण उनके नामों और संख्या को लेकर कुछ भ्रम की स्थिति भी रही है, फिर भी गुप्तजी के कुल कहानी संग्रह 13 है। गुप्तजी की कहानियों का सर्वेक्षण नीचे दिया जा रहा है।

गुप्तजी के आरंभिक मुहब्बत की राहें, फ़रिश्ता आदि कहानी संग्रहों में सोलह कहानियाँ संकलित हैं, उनमें स्वाधीनता के पूर्व भारतीय समाज के अनेक चित्र अंकित हैं। "गुप्तजी की इन कहानियों में उत्पीड़न और शोषण के जो चित्र मिलते हैं, उनमें समाज की संरचना की दृष्टि से सामंतवाद की एक विशिष्ट भूमिका है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के इस दौर में एक ओर यदि ज़मींदार और सामंत वर्ग के शोषण के विरुद्ध विकसित होती जन-चेतना और प्रतिशोध-क्षमता को जागृत करने के प्रयत्न दिखाई देते हैं तो दुसरी ओर बहुत कुछ प्रेमचन्द की कहानियों से ही प्रेरित होकर, देश के प्रति एक भावात्मक लगाव, समाज में व्याप्त विसंगतियों की तीखी पहचान और उस पहचान के बीच सामाजिक परिवर्तन के सुधारवादी आग्रह इन कहानियों में बहुत स्पष्ट है। इनमें अनेक कहानियों में ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वासों और रूढियों पर चोट की गयी है" 36।

कुसुमी और विद्रोह की घड़ी कहानियों में गुप्तजी ने भारतीय सामाजिक जीवन में गहराई से जड़ जमाए अंतर्विरोधों और कुरीतियों का चित्रण किया गया है। इन कहानियों में भारतीय समाज में स्त्री की लांछना तथा उत्पीड़न के जो चित्र अंकित हैं, वे स्त्री को सबसे बड़े दलित और उत्पीड़न के रूप में प्रस्तुत करते हैं। भारतीय स्त्रियों के तन और मन पर किए जानेवाले क्रूर अत्याचारों के अनेक चित्र भी इनमें दृष्टिपात हैं।

मुहब्बत की राहें कहानी अंतर्वस्तु के विस्तार की दृष्टि से उल्लेखनीय है, जिसमें प्रेमानुभूति को आधार बनाकर मैक और मर्फी जैसे जेनी के प्रेमियों के रूप में, ईसाई समाज को अंकित किया गया है। प्रेम के आवेग को सहज

और स्वाभाविक रुप में विकसित होने पर गुप्तजी का ध्यान अधिक नहीं है। कहानी में बुनी गयी स्थितियाँ बहुत विश्वसनीय नहीं बन पड़ी हैं, अपने क्षेत्र-विस्तार की रचनात्मक आकुलता की दृष्टि से ही यह एक उल्लेखनीय कहानी है।

भैरवप्रसाद गुप्त की कहानियों में समाज की स्त्रियों की नियती का वर्णन अनेक स्थानों में किया गया है। दो चरित्र, अफ़सर, बीवियाँ और मेरे दोस्त की कहानी, काम..काम..काम आदि कहानियाँ इस कथ्य का प्रमाण है। चुपचाप कहानी में गुप्तजी ने स्वाधीनता के बाद के भारतीय समाज में राजनीतिक संपर्क और संरक्षण का महत्व कैसे और किस सीमा तक बढ़ गया, इसका सुन्दर चित्रण किया गया है। पुलिस के भ्रष्टाचार और बेईमानी के बीच बशीर जैसे एक ईमानदार आदमी की विड़ंबना की कहानी है फ़रिश्ता। इस तरह राजनीतिक वर्चस्व के दौर में लिखी गयी कहानी है खुदा, इंसान और जानवर।

मध्यवर्गीय जीवन-स्थितियों को उभारने वाली रचनाओं का सिलसिला गुप्तजी की कहानियों में काफी लंबा है और इनमें मुख्य रूप से लोहे की दीवार, एक खामोश मौत, श्रम, अपरिचय का घेरा आदि कहानियों की पूरी लेखकीय तल्लीनता और व्यापक मानवीय सहानुभूति के लिए स्मरण किया जा सकता है। आज़ादी के बाद के प्राय: अन्य सभी कथा-लेखकों ने जहाँ मध्यवर्गीय पात्रों के टुच्चेपन, स्वार्थपरता, बेईमानी, नैतिक खोखलेपन आदि को अपनी आलोचना और व्यंग्यात्मक प्रहार का निशाना बनाया है, अथवा उनके रूमानीपन को कवितात्मकता से मंडित करके सतही भावुकता की कहानियाँ लिखी हैं, वहाँ गुप्तजी ने इन पात्रों को अपनी व्यापक लेखकीय सहानुभूति प्रदान करके उनके दु:ख-दर्द और विवशता को चित्रित किया है। और अपनी सामाजिक दृष्टि के बल पर उनकी स्थितियों के बीच से मूल समाज-प्राणी के द्वंद्वों की ओर लगातार सशक्त संकेत किए हैं।

अपने समकालीन लेखकों में गुप्तजी ने ही कदाचित् मज़दूरों के जीवन पर इतनी अधिक कहानियाँ लिखी हैं। गुप्तजी अपने जीवन में लंबे समय तक मज़दूरों के बीच रहकर काम किया था और अपने सेवा-काल में अधिकतर

नौकरियाँ उन्होंने प्रेस और पत्रकारिता के क्षेत्र में ही की थी। यही कारण मज़दूर जीवन से संबन्धित उनकी कहानियों में उनके इस जीवनानुभव को ही विश्वसनीय रूप में अंकित करने की कोशिश दिखाई देती है। इस दृष्टि से कुत्ते की टाँग, हड़ताल, चाय का प्याला, लड़का और हनुमान आदि कहानियों का नाम उल्लेखनीय है। इन कहानियों में पूँजीवादी संस्थानों में मज़दूरों की प्रतिरोध-क्षमता को रेखांकित करती है। ये कहानियाँ संगठित और एकजुट मज़दूर की शक्ति और असुरक्षित मज़दूर की निरीहता के अंतर को भी बड़े सांकेतिक ढंग से स्पष्ट कर देती है।

बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह देश के 1942 के आन्दोलन को लेकर लिखी गयी हैं। 1942 का बाँध तोड़कर बह निकलने वाली नदी का-सा जोश-खरोश इन कहानियों से पाठकों को मिलेगा। जब युग-युग के अंधकार की बेड़ियों में जकड़ी जनता प्रकाश की एक किरण पाकर, उस अन्धकार के बंधनों को तोड़ उसी प्रलयकारिणी नदी की भाँति बह चली थी। गुप्तजी ने देश की मान-प्रतिष्ठा की बली-वेदी पर नि:संकोच बलिदान हो जाने वालों की युवक-भावनाओं का आततायी के दमन-चक्र और उसके फलस्वरूप छा जाने वाले पतझड़ का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। बिगड़े हुए दिमाग, कोड़ों की बौछार में, स्मारक आदि कहानियाँ इसका प्रमाण है।

कफ़नगुप्तजी की यथार्थवादी कहानी है। इसके शीर्षक को देखकर प्रेमचन्दजी की याद आती है, परन्तु कहानी के आधारभूत विचार, उसकी वर्णनशैली की यथार्थता और उसके अन्त को देखकर उनका यह नाम रखना छोटा मूँह बड़ी बात नहीं लगती। कफ़न बहुत ही अच्छी और बहुत सफल कहानी है।

ग्राम-परिवेश वाली अपनी कहानियों में गुप्तजी मुख्यत: चरित्रों को आधार बनाकर अपनी कहानियाँ बुनते हैं। इस वर्ग की उनकी कुछ उल्लेखनीय कहानियों में घुरहुआ, डाकुओं का सरदार, धनिया की साड़ी, गत्ती भगत, फूल, मंगली की टिकुली, सोने का पिंजड़ा, आदि की चर्चा की जा सकती है। घुरहुआ कहानी का गोबरधन गाँव के सामंती उत्पीड़न की जीती-जागती मिसाल

है। गाँव में होनेवाले अत्याचारों और अनाचारों के विरोध करके नीति और नैतिकता के पक्ष पर जीनेवाले व्यक्तियों की कहानियाँ है डाकुओं का सरदार और गत्ती भगत। एक समय के भोजन के लिए, अपनी पत्नी और बच्चों को खिलाने के लिए, काम की तलाश में गाँव के किसान का काम छोड़कर मज़दूर बनकर शहर में पीड़ा सहकर जीनेवालारमुआ की कहानी है धनिया की साड़ी। "फूल कहानी फूलवतिया नामक एक ग्रामीण युवति को केन्द्र में रखकर बुनी गयी कहानी है जो विवाह के प्रसंग में शारीरिक समानता का आधार बनाकर विकसित होती है। ग्रामीण जीवन की सरलता और सादगी का अंकन कहानी की विशिष्टता है" 37।

गुप्तजी की कहानियों का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि उन्होंने सर्वहारा और बुनियादी वर्गों के पात्रों को लेकर बहुत बड़ी संख्या में कहानियाँ लिखीं और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को अभिव्यक्ति दी। कहानी की सामाजिक चिंता को कहानी के केन्द्र में रखकर उन्होंने कहानी की व्यक्तिवादी धारा के विरुद्ध संघर्ष किया और प्रेमचन्द परंपरा के समर्थन और विकास पर बल दिया है। "मज़दूर और सर्वहारा पात्रों पर लिखी गयी उनकी कहानियाँ इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि वे परवर्ती लेखकों की एक पूरी पीढ़ी के लिए आलोक स्तंभ का काम करती है। नई कहानी में समाजिक और प्रगतिशील धारा इस संदर्भ में उनकी कथा-चेतना की ही विस्तार है। अमरकान्त, मार्कण्डेय और शेखर जोशी जैसे कहानिकारों पर इस प्रभाव को देखा जा सकता है" 38। गुप्तजी की कहानियाँ कहानी के व्यक्तिवादी, पतनशील और रोमानी रूझानों के विरुद्ध गहरा संघर्ष करती है। कहानी कीसंरचना और ब्यौरों की विश्वसनीयता की अधिक चिंता वे नहीं करते हैं। वे उन लेखकों में से नहीं है, जिनके बारे में यह फ़ैसला करना कठिन होता है कि उपन्यासकार बड़े हैं या कहानीकार। कहानियाँ उन्होंने बड़ी संख्या में लिखी हैं, लेकिन अपने रचना-कर्म में उपन्यास ही उनकी मुख्य और केंद्रीय विधा है। कहानी की उनकी चिंता लेखक से अधिक एक संपादक के रूप में उल्लेखनीय है।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न श्री भैरवप्रसाद गुप्त का व्यक्तित्व एवं रचना संसार असाधारण तथा महान है। वे हिन्दी कथा साहित्य जगत के सफल कलाकार के रूप में विशिष्ट स्थान निर्धारित कर चुके हैं। उनका जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के पिछड़े हुए तनावग्रस्तसिवानकलाँ गाँव के मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। अत: गाँव के परिवेश और साधारण जन की समस्याएँ अनुभव करने का अवसर मिला था। इसलिए उनके मन का कलाकार उसको अभिव्यक्त करने के लिए तड़पता रहा और अंत में इसी तड़पन को उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य द्वारा अभिव्यक्त किया है। गाँव की शिक्षा पूरी करके आगे की पढाई के लिए इलाहाबाद आने के बाद उनका संपर्क महानगरीय जीवन से भी आया। उस अवधी में समकालीन साहित्यकारों और विद्वानों से उनका परिचय हुआ। उसका असर उनके व्यक्तित्व और रचनाओं में देखने को मिलता है।

गुप्तजी हिन्दी कथा साहित्य की ओर आकर्षित होकर अच्छी कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। फिर जीवन से प्राप्त अनुभवों के कारण संपादक की हैसियत से भी हिन्दी साहित्य में अपना योगदान दिया है। उन्होंने अनेक देशी और विदेशी पुस्तकों का अनुवाद भी कर चुके हैं। इसके अलावा कुछ एकांकी और नाटक की रचना भी किया है। अत: गुप्तजी हिन्दी साहित्य के अमर कलाकार हैं।

संदर्भ

1. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.101
2. वही, पृष्ठ सं.07
3. हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना, डॉ.शिवाजीसांगोळे, पृष्ठ सं.75
4. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर, पृष्ठ सं.23
5. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.07
6. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.10
7. वही, पृष्ठ सं.12
8. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर, पृष्ठ सं.35
9. वही, पृष्ठ सं.36

10. वही, पृष्ठ सं.36
11. वही, पृष्ठ सं.38
12. वही, पृष्ठ सं.36
13. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.10
14. वही, पृष्ठ सं.10
15. वही, पृष्ठ सं.10-11
16. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर,पृष्ठ सं.37
17. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.25
18. लपटें, भैरवप्रसाद गुप्त, भूमिका पृष्ठ सं.1
19. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर, पृष्ठ सं.164
20. वही, पृष्ठ सं.169
21. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.29
22. भैरवप्रसाद गुप्त व्यक्ति और रचनाकार, सं.विद्याधर शुक्ल, पृष्ठ सं.166
23. धरती, भैरवप्रसाद गुप्त, पृष्ठ सं.39
24. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर, पृष्ठ सं.189
25. भैरवप्रसाद गुप्त व्यक्ति और रचनाकार, सं.विद्याधर शुक्ल, पृष्ठ सं.222
26. वही, पृष्ठ सं.90
27. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.37
28. अंतिम अध्याय भूमिका पृष्ठ सं.1
29. नौजवान, भैरवप्रसाद गुप्त, पृष्ठ सं.137
30. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.36
31. काशी बाबू, भैरवप्रसाद गुप्त, पृष्ठ सं.46
32. वही, भूमिका पृष्ठ.सं.1
33. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.38
34. वही, पृष्ठ सं.40
35. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.41,43
36. भारतीय साहित्य के निर्माता, मधुरेश, पृष्ठ सं.46
37. वही, पृष्ठ सं.53
38. वही, पृष्ठ सं.60

अध्याय 2

आधुनिक संदर्भ में भैरवप्रसाद गुप्त: समकालीन परिस्थितियों का अनुशासन

कोई भी लेखक अपने युग की परिस्थितियों के प्रभाव से नहीं बच सकता। उसके जीवन और व्यक्तित्व का विकास समाज के भीतर रहता ही है। वह समाज और परिवेश के यथार्थ को अपनी कृतियों का आधार बनाता है, या उस यथार्थ से ऊपर उठकर एक अधिक समुन्नत समाज और परिवेश की कल्पना करता है। भैरवप्रसाद गुप्त एक प्रतिबद्ध लेखक थे। उनकी रचना-कर्म स्वाधीनता से पूर्व ही शुरु हो चुकी थी। उनका रचना-समय स्वाधीनता आन्दोलन के उत्कर्ष का दौर है। उनके लेखन का लक्ष्य सामाजिक रूपांतरण था। वे जीवन-भर एक वर्गहीन समाज के निर्माण को समर्पित लेखक का उदाहरण बने रहे। सामाजिक विज्ञान और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन के अध्ययन से उन्होंने जो विश्व-दृष्टि अर्जित की थी उससे उन्हें इस सच्चाई तक पहुँचने में सहायता की थी कि यह सामाजिक विषमता ही मनुष्य के दु:ख का मूल कारण है। इस वैषम्य का कारण उत्पादन के साधनों और वितरण प्रणाली पर पूँजीपति वर्ग का एकाधिकार है। इस एकाधिकार को नष्ट किए बिना जनमुक्ति की राह अवरुद्ध ही बनी रहेगी। एक लेखक के रूप में वे इसी सामाजिक रूपान्तरण की दिशा में सक्रिय दिखाई देते हैं।

गुप्तजी अपने समय के मध्यवर्गीय अंतर्विरोधों से पूरी तरह मुक्त नहीं है। वैचारिक संघर्ष में और दूसरों को गलत मानकर हमेशा अपने को ही सही मानने की प्रवृत्ति का अभाव उनके यहाँ भी नहीं है। लेकिन किसी का भी सैद्धांतिक विचलन उन्हें उनकी गहराई से विचलित करता था तो उस विचलन के विरुद्ध उनकी प्रतिक्रिया त्वरित आवेग की थरथराहट से भरी होती थी। "भैरवप्रसाद गुप्त काफ़ी-हाऊस में बैठकर सिर्फ बहसों और विवादों द्वारा सामाजिक परिवर्तन की भूमिका रचने वाले बुद्धिजीवी नहीं थे। नई कहानी के

आन्दोलन को वे हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द की परंपरा से जोड़ने पर बल देते थे और भरसक इस केलिए उन्होंने संघर्ष भी किया"1।

जब हम हिन्दी कथा-साहित्य के विकास क्रम पर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि एक समर्थ साहित्य विधा के रूप में हिन्दी कथा-साहित्य की प्रतिष्ठा का पूरा श्रेय मुंशी प्रेमचन्द को है। हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का उदय एक युग प्रवर्तक के रूप में होता है। उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को एक नई दिशा दी, उसके लिए एक नवीन भूमि का निर्माण किया। उन्होंने अपने पूर्व के कथाकारों से जो कुछ भी विरासत के रूप में ग्रहण किया था, उसे संपन्न, समृद्ध और प्रौढ़ रूप देकर हिन्दी जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द के समकालीन कतिपय अन्य कथाकार भी हैं जिन्होंने प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों को आत्मसात करते हुए अपने कृतित्व का निर्माण किया। गहरे यथार्थ बोध और व्यापक सामाजिक चित्रण से जिस ध्येय को लेकर, प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य की सर्जना की थी, हिन्दी कथा-साहित्य मूलत: इसी परंपरा को लेकर गतिशील हुआ। इस यथार्थ को आगे के कतिपय लेखकों की समाजवादी आस्थाओं ने और भी पुष्ट की।

भैरवप्रसाद गुप्त प्रेमचन्द की इसी परंपरा के उपज माने जा सकते हैं। वे प्रेमचन्द की परंपरा के आधुनिक युग में एक समर्थ दावेदार है। गुप्तजी के कथा-साहित्य निम्न मध्यवर्ग के जीवन को चित्रित करते हुए सामने आए। अपनी चित्रणगत तथा दृष्टिजन्य सीमाओं के बावजूद, जीवन के प्रति यह आसक्ति ही गुप्तजी का संबन्ध प्रेमचन्द और उनकी परंपरा से जोड़ती है। इस प्रकार प्रेमचन्द की परंपरा के विकास क्रम में गुप्तजी की भी विकासपूर्वक गणना की जा सकती है। आधुनिक जीवन के विविध समस्याओं के उद्घाटन में प्रेमचन्द के समान ही गुप्तजी सफल हुए हैं। आधुनिक जीवन के वैरुध्य का, उसकी विकृतियों का, उसकी समस्याओं तथा उसके भीतर चलने वाले विविध वर्गों का उन्होंने बहुत ही सजीव और सशक्त चित्रण किया है। स्पष्ट ही इस समूचे चित्रण में प्रेमचन्द की ही भाँति गुप्तजी ने भी सामान्य भूमिका के पात्रों को ही अपनी मानवीय संवेदना का अधिकारी बनाया है। यदि प्रेमचन्द के कथा

साहित्य में ग्रामीण जीवन की विषमताओं के घिसते-पिटते हुए नर-जीवन की गहरी संवेदनाम्क अभिव्यक्ति मिली है, तो गुप्तजी के कथा-साहित्य में भी नागरिक जीवन की समूची घुटन के बीच किसी प्रकार के आगे की ओर बिगड़ते हुए मध्यवर्ग को उसकी सारी पीड़ा और आशा-आकांक्षाओं के साथ अभिव्यक्ति दी गयी है। गुप्तजी की कृतियाँ सजग सामाजिक चेतना के साथ-साथ उसके विशाल अनुभवों की भी परिचायक है। समाज और युग जीवन का अत्यन्त यथार्थ चित्र गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में प्रस्तुत किया है।

सामाजिक परिस्थितियाँ

साहित्यकार समाज में रहकर ही अनुभूतियाँ ग्रहण करता है। साहित्यकार होने के पहले से ही वह समाज का एक व्यक्ति है, जो सामाजिक परंपराओं का निर्वाह करता है, दुसरों के सुख-दु:ख में भाग लेता है। किन्तु ज्ञान, अनुभव और संस्कारों के द्वारा वह अपनी तर्कशक्ति और संवेदनशीलता के कारण अपने मंतव्यों, विचारों और निर्णयों को समाज के सामने रखता है। बुद्धिजीवि लेखक व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व को युग-परिवेशानुसार मान्यता देता है और साथ ही अपने विचारों का प्रतिपादन भी करता है। गुप्तजी ने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की सत्ता स्वीकार की है और सामाजिक यथार्थ के सूक्ष्म तन्तुओं से साहित्य का सृजन किया है।

जाति व्यवस्था एवं अस्पृश्यता - भारत में अस्पृश्यता का आरंभ वर्ण व्यवस्था के आगमन से शुरु हुआ। इस प्रथा के कारण ऊँची जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को समारोह में सम्मिलित नहीं होने देते, उन्हें मंदिरों में प्रवेश न किया जाता था। स्वतंत्रता के बाद जाति-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता की समस्या में सुधार लाने के लिए सरकार ने कानून बनाए हैं, फिर भी भारतीय गाँवों में जाति-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता आज भी प्रचलित है, जो आपत्तिजनक है।

परिवार संगठित मानव समाज का प्राथमिक, अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण इकाई है। यह संगठित समाज की सबसे छोटी इकाई है। डॉ.श्रीराम शर्मा के अनुसार “समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई परिवार होता है। पारिवारिक

जीवन के विश्लेषण से समाज स्वरूप की स्पष्ट झाँकी मिल सकती है" 2। भारतीय समाज में दो प्रकार के परिवार देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार और एकाकी परिवार।

संयुक्त परिवार - भारतीय समाज में अधिकतर संयुक्त परिवार प्रणाली पाई जाती है। वस्तुतः यह भारतीय समाज का एक प्रमुख स्तंभ है। संयुक्त परिवार एक गृहस्थ समूह है जिसमें कई पीढियों के सदस्यों का एक सामान्य निवास स्थान होता है, वे एक रसोई का पका भोजन करते हैं तथा सामान्य संपत्ति रखते हैं। संयुक्त परिवार की पूरी सत्ता मुखिया में केन्द्रित होती है जिसे संयुक्त परिवार का कर्ता कहा जा सकता है। कर्ता ही पूरे परिवार के बारे में सभी प्रकार के निर्णय लेता है। श्रीमती इरावतीकर्वे के अनुसार "संयुक्त परिवार वह जन समूह है, जो सामान्यतया एक घर में रहता है, एक रसोई में पका खाना खाता है, जिसकी संपत्ति मिली-जुली होती है, मिलजुलकर पूजा करते हैं, और परस्पर कुछ खास बन्धुओं के रूप में संबन्धित होते हैं" 3।

एकाकी परिवार से अभिप्राय ऐसे गृहस्थ समूह से है जिसमें पति-पत्नी बच्चों रहित अथवा अविवाहित बच्चों सहित रहते हैं। अगर पति या पत्नी में से किसी एक की मृत्यु हो गयी है और दूसरा अपने विवाहित बच्चों के साथ रह रहा है, तो इसे भी हम एकांकी परिवार ही कहेंगे। इस प्रकार के परिवार में पति या पत्नी से संबन्धित अन्य रिश्तेदार निवास नहीं करते। लॉवी के मतानुसार "पति, पत्नी तथा अपरिपक्व आयु के बच्चों से मिलकर बनी एक इकाई है जो शेष समुदाय से पृथक होती है" 4।

भारतीय परिवार प्राचीन काल से संपन्न और समृद्ध थे। किन्तु वर्तमान स्थिति में परिवार के मूल ढाँचे में जबरदस्त परिवर्तन हुआ है। औद्योगीकरण, भौतिकवादी प्रवृत्ति, नई शिक्षा पद्धति, संस्कार हीनता, आर्थिक विषमता, राजनैतिक चेतना, आपसी ईर्ष्या आदि के कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। डॉ. एस.बी महाजन ने टूटते हुए संयुक्त परिवार के बारे में लिखा है"बदलती स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में बाप-बेटे, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि सब मिलकर परिवार, परिवेश संबन्धों के नाम पर भले ही एक रहे हों, लेकिन उनके भीतर

वह नहीं रह गया, जो रूढ़ अर्थों में हुआ करता था” 5। इससे स्पष्ट है कि वर्तमान स्थिति में संयुक्त परिवार का क्षेत्र सीमित हो रहा है। लेकिन भारतीय संस्कृति में परिवार विहीन समाज पनप नहीं सकेगा, इसलिए ऐसी कल्पना करना अनुचित होगा। भारतीय संस्कृति में आदर्श संस्कार और ऊँचे मूल्य होने से परिवार संस्था नष्ट नहीं होगी। फिर भी उनको बनाए रखने की कोशिश अवश्य करनी होगी।

वर्तमान स्थिति में संयुक्त परिवारों के टूटने से पति-पत्नी, माता-पिता-, पिता-पुत्र, माता-संतान, भाई-भाई, भाई-बहन, सास-ससुर आदि के संबन्धों में विघटन हो रहा है। संयुक्त परिवारों के लिए यह समस्या बहुत बड़ी बाधा बनती जा रही है।

विवाह, भारत में परिवार एवं समाज का मूल आधार है। संसार के सभी सभ्य समाजों में विवाह एक महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य सामाजिक संबन्ध है। “विवाह स्त्री-पुरुष के बीच कानूनी यौन संबन्धों का नाम नहीं है बल्कि विवाह स्त्री-पुरुष का सामाजिक रूप से मान्य और स्वीकृत मिलन है जो दो परिवारों को लंबे समय तक जोड़ने का अनुबंध है” 6। भारतीय समाज के सन्दर्भ में विवाह स्त्री-पुरुष के सामाजिक, कानूनी, मान्य और स्वीकृत बन्धन है जिसके द्वारा परिवार रूपी संस्था का जन्म होता है और संतान की सामाजिक परिस्थिति, संपत्ति का उत्तराधिकार का अधिकार समाजिक व कानूनी रूप से प्राप्त होता है।

आज के परिववर्तित भारतीय परिवेश के समाज में सभ्यता एवं संस्कृति, शैक्षणिक चेतना एवं वैज्ञानिक उन्मेष ने विवाह की प्राचीन, परंपरागत धारणाओं में यत्र-तत्र टूटन उपस्थित की है। विवाह की सामाजिकता एवं धार्मिकता पर नयी पीढि प्रश्न चिह्न लगा रही है। अंतरजातीय विवाह संबन्ध समाज में पनप रहे हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में परंपरागत विवाह, अंतरजातीय विवाह, प्रेम विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह आदि देखने को मिलता है। आज भारतीय समाज में विवाहों से संबन्धित एक समस्या है-दहेज। आज

के भारतीय परिवेश में समाज के सभी प्रकार के लोगों में दहेज प्रथा का स्वरूप बहुत कुछ वहाँ के वैवाहिक संबन्धों में विद्यमान है।

आज के भारतीय परिवेश में दहेज प्रथा का स्वरूप बहुत कुछ वहाँ के वैवाहिक संबन्धों में विद्यमान है। यह प्रथा आज भी समाज में बुरी तरह व्याप्त है यद्यपि सब इसे बुरे कहते हैं। "वस्तुत: दहेज प्रथा को आज की बढ़ती हुई भौतिकतावादी दृष्टि ने आश्रय प्रदान किया है। कितनी ही युवतियों को इसके परिणामस्वरूप अपना फूला-सा जीवन नष्ट करना पड़ता है" 7।

देश में दहेज प्रथा के कारण विवाह एक व्यापार बन गया है। "दहेज प्रथा एक सामाजिक बुराई तो है ही साथ ही अन्य बुराईयों की जड़ भी है। पारिवारिक कलह, अनमेल विवाह, अंतरजातीय विवाह आदि सब इसी के विकसित रूप है" 8।

शिक्षा एक ऐसी प्रगतिशील धारा है, जो मानव को प्रगति पर ले जाती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक देश में जो प्रगति हुई है, उसमें शिक्षा का योगदान गणनीय है। शिक्षा को ज्ञान परक बनाने में अग्रेज़ों का बड़ा योगदान रहा है। उन्होंने अनेक शिक्षा संस्थाएँ, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की स्थापना की। सभी को शिक्षा प्रदान करने केलिए भारतीय सरकार ने भी सर्व शिक्षा अभियान, साक्षरता अभियान आदि अनेक योजनाएँ बनाई हैं। महात्मा गाँधी सर्वश्रेष्ठ शिक्षा पद्धति के संबन्ध में ऐसा महसूस करते थे कि सर्वश्रेष्ठ शिक्षा पद्दति वही है जो रोटी कपड़ा व मकान उपलब्द कराये, जो आदमी को राष्ट्र व समाज के प्रति अपना दायित्व निभाने की ओर अग्रसर करे। आजकल विद्या-विहीन मनुष्य बिना सींग-पूछ का पशु समान होता है।

आज़ादी के बाद राजनीति ने सब क्षेत्रों में अपनी धाक जमाई है। शिक्षा के पवित्र क्षेत्र में भी राजनीति ने प्रवेश किया। नेताओं ने स्कूल-कॉलेज खोलना शुरु कर दिया है, साथ-साथ शिक्षा को एक व्यवसाय के स्वीकार कर लिया है। आज देश के अधिकतर शिक्षा केन्द्र पैसा कमाकर शिक्षा के मूल्य पर क्षति पहुँचाई है।

नारी का स्थान - भारतीय समाज में स्त्रियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्रियाँ हमारी संस्कृति के संरक्षक हैं। वे बाल-बच्चों की शिक्षिकाएँ हैं तथा पुरुषों की जीवन संगनी एवं मित्र है। स्त्रियों के पूर्ण सहयोग के बिना जीवन अधूरा है। बच्चों का पालन-पोषण, घर की शान्ति, परिवार का उन्नतशील जीवन स्त्रियों पर ही निर्भर हैं। इन्हीं बातों पर समाज की उन्नति निर्भर है। स्त्रियों की नैतिक, मानसिक एवं शारीरिक उन्नति से समाज की उन्नति हो सकती है।

सैद्धान्तिक रूप से तो आज भी स्त्रियों की मर्यादा और उनका आदर बहुत है। समाज में मातृत्व का बड़ा आदर है। स्त्री शक्ति और लक्ष्मी की प्रतीक मानी जाती है। यह हमारी राष्ट्रीयता की भी प्रतीक है। अपने देश को हम भारत माता कहकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी वास्तविक रूप में भारतीय समाज में उनकी दशा बहुत खराब है।

वेश्यावृत्ति सभी सभ्य देशों में आदिकाल से विद्यमान रही है। यह सदैव सामाजिक यथार्थ के रूप में स्वीकार की गई है और विधि एवं परंपरा द्वारा इसका नियम होता रहा है। सामंतवादी समाज में यह अभिजातवर्ग की कलात्मक अभिरुचि एवं पार्थिव गौरवप्रदर्शन का माध्यम थी। आधुनिक यांत्रिक समाज में यह हमारी विवशता, मानसिक विक्षेप, भोगैषणा एवं निरंतर बढ़ती हुई आंतरिक कुंठा के क्षणिक उपचार का द्योतक है। वस्तुत: यह विघटनशील समाज के सहज अंग के रूप में विद्यमान रही है। सामाजिक स्थिति में आरोह-अवरोह आता रहा है, किंतु इसका अस्तित्व अक्षुण, अप्रभावित रहा है।

समाज ने अपनी मान्यताओं, रूढियों और त्रुटिपूर्ण नीतियों द्वारा इस समस्या को और जटिल बना दिया है। विवाह संस्कार के कठोर नियम, दहेज प्रथा, विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध, सामान्य चारित्रिक भूल के लिए सामाजिक बहिष्कार, अनमेल विवाह आदि के अनेक कारण इस घृणित वृत्ति को अपनाने में सहायक होते हैं। स्वतंत्रत भारत में सरकार वेश्यावृत्ति के उन्मूलन का अभियान चलाया जा रहा है, फिर भी देश में यह वृत्ति पनप रही है।

नारी को स्वतंत्र अस्तित्व, सम्मान न होने से उसका शोषण परिवार और समाज से निरंतर हो रहा है। परिवार में पति,सास-ससुर, देवर-देवरानी,

ननद, सौतन आदि के और विधवा, असहाय, तथा परित्यक्ता नारियों पर परिवार तथा गाँववालों द्वारा अत्याचार किए जाते हैं। खेती में काम करनेवाली मज़दूरिनों, निम्न जाति की असहाय नारियों पर ज़मींदार, सेठ, साहूकार, गुण्डे, पाखंड़ी लोग अपनी काम पूर्ति के लिए अत्याचार करते हैं, कभी-कभी मार-पीट और हत्या भी करते हैं। पुलिसवालों से उनकी मित्रता होने से उनके खिलाफ़ आवाज़ उठाने पर भी न्याय नहीं मिलता, वे उनसे भी सताई जाती है।

अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रभाव से भारतीय समाज में व्याप्त पुराने मूल्य-मान्यताएँ और रूढियाँ चटखने लगी हैं। नारी उत्थान की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण प्रयास प्रारंभ किए हैं। नारी स्वातंत्र्य, नारी शिक्षा, नारी अधिकार, विवाह, दहेज और वेश्यावृत्ति का उन्मूलन आदि प्रारंभिक प्रयास हैं। भारत सरकार ने स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिए कुछ कानून भी बनाएँ हैं।
वर्तमान देश के सामाजिक जीवन परिवर्तित एवं अपरिवर्तित, आधुनिक और परंपरागत बोध से ग्रस्त संक्रमण की स्थिति में है। भौतिकता के स्वर में यहाँ के जीवन में, पारस्परिक संबन्धों में मानो घुसपैठ कर रहे हैं और समाज का आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व का दर्द अनुभव कर रहा है।

आर्थिक परिस्थितियाँ

भैरवप्रसाद गुप्त का कथा-साहित्य बीसवीं सदी के भारतीय जन-जीवन का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। भारतीय इतिहास में इस काल ने भारी परिवर्तन कर दिया है। अंग्रेज़ी शासन से भारतीय जन-जीवन बहुत शीघ्रता से बदला है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय समाज के धरातल पर प्रवेश कर भारतीय ग्राम व्यवस्था को ही विच्छु-खेल कर दिया। उसने गाँव के आर्थिक आधार की तह में जाकर घरेलू उद्योग धन्धों पर प्रहार किया। परिणाम यह हुआ कि खेती और उद्योग धन्धों का जो परस्पर संबन्ध था, वह टूट गया और भारतीय जन-जीवन असंतुलित हो उठा।

जीवन में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। आर्थिक नीतियों एवं सिद्धातों पर ही समाज का विकास संभव है। समाज में होनेवाले संघर्षों के केन्द्र में प्राय: अर्थगतवैषम्य ही प्रमुख होता है। साहित्यकार चूँकि सामाजिक प्राणी

होता है। इसलिए समाज के इस वैषम्य को वह अपनी द्दष्टी से देखता है और अपनी कृतियों में उसका विवेचन करता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के अर्थ-व्यवस्था का मुख्य आधार कृषि पर निर्भर रहता है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या के 76 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते थे, इससे 63 प्रतिशत लोग अपनी जीविका के लिए कृषि पर आश्रित है और काम करने वाले लोगों में से 60 प्रतिशत कृषि में कार्यरत है। राष्ट्रीय आय का 40 प्रतिशत भाग कृषि से ही आता है। कृषि देश के निर्यात में महत्वपूर्ण स्थान निभा रही है।

खेती की व्यवस्था तथा घरेलुअद्योग-धन्धों का अन्योन्याश्रित संबन्ध है। प्राचीन भारत के प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक वस्तु का उत्पादन एवं निर्माण स्वयं कर लेने में समर्थ था। कार्य व्यापार की संपूर्णता में गाँव स्वयं एक इकाई था, क्रय-विक्रय का माध्यम धन नहीं था अपितु एक-दूसरे द्वारा निर्मित वस्तु का आदान-प्रदान था। इतिहासकारों का यह मत है कि कार्य विभाजन की यह सुनिश्चित एवं सुद्दढ़ प्रणाली थी जिसपर संपूर्ण भारतीय जीवन की स्थिरता एवं संतुलन निर्भर था। लेकिन अंग्रेज़ों के आगमन और उनकी शासन नीति के कारण संतुलन बिगड़ गया। फलत: भारतीय समाज में मध्यवर्ग का जन्म हुआ जो महत्वाकांक्षाओं में बंधकर अंग्रेज़ों की नीति में मौन होकर रहने लगा। इसके साथ ही पूँजीवादी वर्ग का शोषण बढ़ गया। सरकारी षड़यन्त्र और भ्रष्टाचार का बोलबाला स्वतंत्रता संघर्ष के साथ-साथ भारत में बढ़ने लगा।

उद्योगों के नाश से भूमिहीन किसानों की संख्या में वृद्धि होने लगी। नयी भूमि व्यवस्था के परिणाम स्वरूप अंग्रेज़ी पूँजीपति, ज़मींदार महाजन, मज़दूर आदि नये वर्गों का निर्माण हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के द्वारा उपनिवेशक अर्थ तंत्र के रूप में जिस पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का बीजारोपण किया गया उसमें जो संपत्ति विकेन्द्रित थी, उसका केन्द्रीकरण होने लगा। बहुसंख्यक जनता दरिद्र बनी और सामाजिक व्यवस्था और जीवन मूल्य बदलते गये।

अर्थ नीति की दृष्टि से 1928 में विश्वव्यापी आर्थिक संकट आया। कृषि उत्पादनों की कीमतों में गिरावट आयी। पर पक्के माल की कीमतें उतनी ही रही। विदेशी शासकों की घातक आर्थिक नीति एक ओर भारतीय जनता का निर्मम शोषण और दूसरी ओर देश के आर्थिक विकास को गतिरोध के दलदल से न निकलने देकर हर प्रकार से अपनी सर्वनाशी प्रवृत्तियों का निर्लज्जतापूर्ण प्रदर्शन कर रही थी।सन् 1942 में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। यह अकाल प्राकृतिक कारणों से कम और मानव निर्मित कारणों से अधिक था। अकाल भारत के लोगों पर गहरा असर डाला है। अकाल के कारण खेती-बाड़ी नष्ट हो जाती है। नदी, नाले, कुएँ, तालाब सूख जाते हैं। इसलिए खेती और जीने के लिए पानी नहीं मिलता। गाँव उजड़ जाते हैं। इस भयंकर अकाल के कारण लाखों लोग मारे गये। इससे देश की आर्थिक दशा में परिवर्तन आया है।

गरीबी समाज द्वारा पैदा की गयी एक स्थिति है। वह देश के लिए अभिशाप है। इसका स्वरूप बहुआयामी है, जिसके आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहलू हैं। परन्तु आर्थिक गरीबी ही गरीबी का आधार है और राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन से यह और पुष्ट होती है।गरीबी की समस्या से निकट संबन्धित एक समस्या है बेरोज़गारी, क्योंकि जब लोग बेकार रहते हैं तो वे निर्धन हो जाते हैं। मनुष्य की आवश्यकताओं को यदि संतुष्ट किया जाना है तो उन्हें रोज़गार मिलना चाहिए। बेरोज़गारी केवल दरिद्रता एवं दु:खों को ही जन्म नहीं देती, अपितु सामाजिक संगठन पर प्रतिकूल प्रभाव भी डालती है।यद्यपि बेरोज़गारी सर्वत्र व्याप्त है, तथापि भारत में यह अत्यधिक है। इसके अतिरिक्त, बेरोज़गारी का दुखदायी स्वरूप यह है कि पंचवर्षीय योजनाओं के उपरान्त भी बेरोज़गारी की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। शिक्षित वर्ग में बेरोज़गारी गंभीर रूप धारण किए हुए हैं।

"भारत सरकार ने देश के अधिकतम आर्थिक विकास के लिए अपनी उद्योग नीति के अनुसार मार्च 1950 में प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक आयोजन आयोग की नियुक्ति की थी। जिसने केन्द्र तथा राज्य

सरकारों की परामर्श से जनमत का ध्यान रखते हुए विशाल पंचवर्षीय योजना का निर्माण किया। अभी तक दस पंचवर्षीय योजनाएँ आ चुकी हैं। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना चल रही हैं। इसके कारण भारतीय आर्थिक स्थिति उन्नति के शिखर पर पहुँची है" 9।

भारतीय समाज मुख्यतया दो वर्गों में बंटा हुआ है। एक धनी और दुसरा है निर्धन। धनी लोग आर्थिक दृष्टि से संपन्न, राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली और सामाजिक दृष्टि से उच्च है। परन्तु आम लोग आर्थिक दृष्टि से निम्न हैं। एक ओर सत्ताधारी वर्ग की संपन्नता देखने को मिलती है तो दूसरी ओर आम लोगों को गरीबी के दर्शन होते हैं। समाज के कमज़ोर वर्गों की इस प्रकार की निर्धनता समाजिक परिस्थितियों का परिणाम है। यह समाज के मौजूदा सामाजिक, आर्थिक ढांचे से बुनियादी तौर पर जुड़ी हुई है।गुप्तजी अपने कथा-साहित्य में अपने समय देश में होनेवाले आर्थिक विकास के सभी पहलुओं को देखा है और चित्रित किया है। आज भारत जिस आर्थिक संकट से गुज़र रहा है उसका आरंभ अंग्रेज़ी शासन नीतियों के निर्धारण और उनके परिणाम स्वरूप स्वतंत्र भारत की नूतन स्थापना में आनेवाली कठिनाइयों को उन्होंने गहराई से अनुभव किया है। आज़ादी के बाद वर्षों में अनेकानेक कारखानों, उद्योगों और कृषि के आधुनिक परिवर्तनों के बावजूद देश की गरीबी निरंतर बढ़ी है।

मुद्रास्फीति का प्रसार समूचे देश को अस्त-व्यस्त कर आया है। भारतीयों के स्वर्ण मोह और काले धन के प्रसार ने भ्रष्टाचार और महँगाई को बढ़ावा दिया है। यही कारण है कि सरकार द्वारा बार-बार महँगाई भत्ता और वेतन वृद्धि करते रहने पर भी जीवन अधिक कठोर होता जा रहा है। सरकारी कोष में स्वर्ण की नूनता और नोटों का अधिक मुद्रण देश के अर्थ की नींव हिला रहा है। यूँ तो समस्त विश्व में मुद्रास्फीति के कारण आर्थिक संकट की समस्या है। किन्तु पूँजीवादी देशों का मुद्रा संतुलन उन्हें प्रत्येक वस्तु को क्रय करने की सुविधा देता है। सर्वाधिक खठिनाई समाजवादी देशों की है-उनमें भी भारत जैसे विशाल धनी आबादीवाले देशों में बेरोज़गारी और उत्पादन न्यूनता बढ़ती

जा रही है। पूँजीवादी अपने निजी कारखानों के कारण अधिकाधिक संपन्न होते जा रहे हैं। सरकार द्वारा नियंत्रित कारखानों को भी विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं। वास्तव में लोकतान्त्रिक जन प्रणाली में उद्योगपतियों के वोट जीतने के लिए अधिक से अधिक सुविधाएँ दी जाती हैं। फलत: कालाधन बाहर नहीं आ पाता और सरकार आय कर प्राप्त नहीं कर पाती।

वर्तमान भारत में सारा अर्थ संकट मध्यम वर्ग और निम्न वर्गों को सहना पड़ता है। निम्न वर्ग अशिक्षा के कारण एक सीमा में बँधे हैं। सीमित भोजन-वस्त्र में वे जीते हैं; महँगी शिक्षा उनकी पहुँच से बाहर है। मध्यवर्गीय समाज महत्वाकांक्षा की चक्की में पिस रहा है।

राजनैतिक परिस्थितियाँ

सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालनेवाले पहलुओं में राजनीति का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्तजी मुख्य रूप से सामाजिक साहित्यकार है। किन्तु राजनीतिक स्थिति से उत्पन्न विसंगतियाँ जीवन स्तर के परिवर्तनों को प्रभावित करती है। गुप्तजी ने आधुनिक जीवन की बदलते परिस्थितियों, परिवर्तनों एवं मान्यताओं की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ शब्दबद्ध किया है। "राजनीति शतरंज का खेल है जिसमें खिलाड़ी अपने मोहरे इस प्रकार रखता है कि विरोधी विचलित होता है। भारतीय राजनीति भी बड़ी विचित्र है। यहाँ पुराने मुहरे पिटते रहते हैं और नये मोहरें आते रहते हैं। कभी-कभी पुरानी मोहरे नये मोहररों पर हावी हो जाते हैं। राजनीति का खेल चलता रहे इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं है परन्तु यदि शतरंज का बोर्ड ही उलट जाने का भय हो जाता है तो सब खिलाड़ियों का विचलित होना स्वाभाविक है" 10।

स्वतंत्रता के पूर्व की भारतीय राजनीति विदेशी सत्ता में संघर्ष करने और भारत माँ को परतन्त्र की बेड़ियों से मुक्त करने से संबन्धित थी। यद्यपि यह ठीक है कि अन्य आर्थिक, सामाजिक तत्वों को महत्व प्रदान किया जाता था, परन्तु देश के राजनीतिज्ञों का प्रमुख लक्ष्य देश को स्वतंत्र करना ही था। राजनीति में आपसी प्रतिद्वन्दिता तो थी परन्तु सभी का लक्ष्य एक ही था।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के राजनीतिक जीवन में बड़ी उथल-पुथल आयी। देश के बंटवारे ने राजनीति को विषाक्त बना दिया। यद्यपि सांप्रदायिक तत्वों ने अपना जाल फैलाना चाहा परन्तु भारत के राजनीतिक कर्णधारों ने अत्यन्त सूझ-बूझकर परिचय दिया और धर्म निरपेक्ष राज्य को प्रगति की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय राजनीति पर अकिल भारतीय काँग्रेस का प्रभुत्व था परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात्काँग्रेस से अनेक नेता अलग हुए और नये-नये राजनीतिक दल बने ।स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय राजनीति बलिदान और त्याग की राजनीति रही। स्वतंत्रता के बाद भी कुछ समय तक प्राचीन मान्यताएँ बनी रहीं। परन्तु, आधुनिक युग में भारतीय राजनीति का जो स्वरूप स्पष्ट हो रहा है, वह चिन्ता का विषय है। राजनीतिज्ञ जनता के बीच से न उठकर सीधे ऊपर से ठोक दिये जाते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिज्ञ जनता के बीच में आकर अपने त्याग और बलिदान के विषय बताकर अपना प्रभाव डालता था और जनता की सेवा में रह सकता था। अब राजनीति का रूप दल दृष्टि से विकृत हो चुका है। आज के युग में स्वार्थ की राजनीति जितनी प्रखर है उतनी भारत में कभी भी नहीं थी।

"देश की वर्तमान राजनीति महज, कुर्सी और व्यक्ति केन्द्रित राजनीति बन गयी है। चुनाव कोई आश्वासनों के प्रतीक बन चुके हैं। जनता की दृष्टि में चुनाव राजनीति दलों द्वारा किए जानेवाला एक भयानक षड़यन्त्र है" 11। नेताओं की स्वार्थ प्रवृत्तियों ने राजनीति को घेर लिया। उसमें भ्रष्ट और चारित्र्यहीन नेताओं ने प्रवेश किया। सत्ता हाथ आते ही वे बदल गये। वर्तमान राजनीति के भ्रष्ट स्वरूप के बारे में विचार स्पष्ट करते हुए डॉ.रमेश देश मुख ने लिखा है-"देश में बहुमुखी राजनीति का पतन हुआ है, उसने नैतिकता के सभी मूल्य ध्वस्त कर दिये। अब जनता के सभी मसलें, चाहें वे रोटी के हो, चाहे धर्म के, वोट की नीति से तय होने लगे। सत्ता द्वारा भ्रष्टाचार और दुश्चरित्रता के संरक्षण एवं अपराध तथा राजनीति के गठ-जोड़ ने जन जीवन में असहायता और सुरक्षा की भावना भर दी। वोट की राजनीति में संकीर्ण जातिवाद और

गुटबेदी को भरपूर प्रश्रय दिया। परिणाम स्वरूप जनता का विश्वास सभी प्रकार की संवैधानिक रक्षात्मक इकाइयों से उठ गया" 12।

राजनीतिक जीवन ग्रामीण परिस्थितियों की वह परिवर्तित-अपरिवर्तित क्रियाशील मानसिकता है जो राजनीति से प्रेरित एवं परिचालित है। गाँवों के विषय में यह बद्धमूल धारणा है कि वे सहज और सरल होते हैं। राजनीति से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता। भारत के गाँव एवं अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर विभिन्न देशों में ग्रामीण जाता इसका स्पष्ट उदाहरण है। भारत में गाँव और शहरवालों ने कंधे से कधा मिलाकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। स्वातंत्र्योत्तर गाँवों में राजनीतिक जीवन की लहर पंचायत राज जैसे राजनीतिक कार्यों से आयी है। आज ग्रामीण जनता भी अपने अधिकारों को जानते हैं। वे राजनीति के प्रति जागरूक है। किसान सभा, मछुआ सभा आदि विभिन्न प्रकार के संगठन देश के दूरस्थ प्रदेशों में भी बन रहे हैं और अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्षशील है।

देश की राजनीतिक मानसिकता एवं उसकी मुल्यवत्ता को विशेष रूप से आन्दोलित करनेवाला एक गतिशील संदर्भ है-चुनाव। प्रजातांत्रिक प्रणाली में प्रजा की शक्ति की मुख्य स्रोत चुनाव ही है। नेताओं ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को स्वीकार किया और उसके अनुसार चुनाव शुरु हो गया। राजनीतिक दलों ने सत्ता हासिल करने के लिए अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किए। उनकी जीत के लिए पार्टी के बड़े-बड़े नेता प्रचार, दौरा और सभाओं का आयोजन करने लगे। वर्तमान समाज में चुनाव का रूप ही बदल गया है। आज चुनाव सत्ता में अधिकार प्राप्त करने के लिए स्वार्थी लोगों का खेल हो गया है। चुनाव का नियंत्रण पैसा करता है। पैसे का दुरुपयोग करके नेता किसी न किसी बुरे मार्ग में चुनाव जीतने का प्रयास करते हैं। धर्म और जाति के नाम पर भी फ़ायदा उठाते हैं।

पंचायती-राज या ग्राम पंचायत देश के लिए कोई नई कल्पना नहीं है। इसमें लोक सभा से ग्राम सभा तक और उच्चतम न्यायालय से पंचायत तक प्रजा तंत्र की यात्रा समाहित है। इस प्रणाली में स्थानीय प्रशासन का समस्त

कार्य ग्राम पंचायत द्वारा नियंत्रित एवं संपादित होता है। सामुदायिक विकास योजनाओं में संलग्न विभिन्न कार्यकर्ता ग्राम्य जीवन में प्रजातंत्र की सार्थकता का बोध कराते हैं।

वर्तमान भारत में राजनीति एक विषय बन गया है कि खेत में काम करनेवाले मज़दूर से लेकर कॉलेज के विद्यार्थी तक तथा गाँवों की अशिक्षित गरीब जनता से लेकर बड़े-बड़े अधिकारियों तक का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबन्ध इससे हो गया है। किसी न किसी रूप में सभी लोग राजनीति की बातें करते हैं। विद्यार्थी का समाज बहुत बड़ा तथा व्यापक है, जो क्रमश: सभी क्षेत्रों में जाता रहता है। अत: विद्यार्थी का राजनीति से संबन्ध कैसा रहना चाहिए यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। सामान्य ज्ञान के लिए थोड़ी-बहुत राजनीति सब विद्यार्थियों को जाननी चाहिए, लेकिन यह अधिक न होना चाहिए। राजनीति एक ऐसा भूत है कि वह किसी विद्यार्थी को लग जाता है तो वह उसको किसी भी अन्य कार्य करने नहीं देता।

भारत की न्याय व्यवस्था न्याय की परंपरागत धारणा पर आधारित रही है। इस धारणा के अनुसार न्यायालयों का कार्य है, उनके सामने जो विवाद प्रस्तुत हो, उन विवादों का विद्यमान कानूनों के अनुसार निबटारा करना। न्याय-व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति चाहे जितना बड़ा हो, कानून उससे ऊपर है। लेकिन वर्तमान न्याय व्यवस्था पूर्ण रूप से बदल गया है। न्यायालय के उच्च अधिकारी से लेकर निम्न अधिकारी तक भ्रष्टाचार का बोलबाला बन गये हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि राजनीति और अर्थ ही न्याय को नियंत्रित रखता है।गुप्तजी अपने कथा-साहित्य में 19वीं-20वीं शताब्दी के स्वतंत्रता पूर्वक पश्चात् के भारतीय समाज और जीवन का गुण-दोष भरा चित्र अंकित किया है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता बाद का समग्र भारतीय परिस्थितियाँ राजनीति के ही ताने-बाने से बुना हुआ है। भारतीय नागरिक होने के कारण गुप्तजी देश की राजनीति से जुड़े हैं, किन्तु साहित्य के स्वर पर उन्होंने अपने कथा-साहित्य में देश की राजनीति के विविध पक्षों और स्तरों को उद्घाटित किया है। उनका मत

है कि देश की वर्तमान विपरीत और अराजक राजनीति को स्वस्थ एवं नैतिक स्वरूप प्रदान करने का काम प्रमुखत: साहित्यकार का है।

धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

पूर्ण मानव समाज, चाहे वह विश्व के किसी भी कोने में रहते हो, किसी न किसी धार्मिक विश्वास या मान्यता से वह अवश्य जुड़ा है। यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी रहे हैं जो धार्मिक विश्वास के सभी रूपों को नकारने में लगे रहे, परन्तु इतिहास के पन्ने पलटने पर हमें ज्ञात होता है कि ऐसे लोग कभी भी एक संगठित जन समुदाय के रूप में लंबे समय तक अपना अस्तित्व बनाकर नहीं रख सके।

अपने सहस्त्रों वर्ष के लंबे कालक्रम में भारतभूमि ने धार्मिक कर्मकांड़ों एवं परंपराओं की एक लंबी श्रृंखला देखी है। यहाँ के लोग वैज्ञानिक दर्शन के साथ-साथ समय-समय पर विभिन्न पंथी और संप्रदायों का भी मार्ग-दर्शन मिलता रहा है। मूल भावना में एकरूपता होने के बावजूद भारत के धर्म के बाह्र स्वरूप को लेकर कभी भी ठहराव की स्थिति नहीं रही। विभिन्न पंथों एवं संप्रदायों ने अपने धार्मिक विश्वास के प्रकट करने के विभिन्न रूप अपनाए। उन्होंने तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए धार्मिक कर्मकांड़ों एवं मान्यताओं की स्थापना की। मजूमदार और मदान के अनुसार-"धर्म किसी अलौकिक और अतीन्द्रिय शक्ति के भय का एक मानवीय प्रत्युत्तर है। यह व्यवहार की अभिव्यक्ति अथवा परिस्थितियों से किये गये अनुकूलन का वह रूप है जो अलौकिक शक्ति की धारणा से प्रभावित होता है।"13 देश में बदलाव के साथ ही धार्मिक कर्मकांड एवं मान्यताओं का रूप भी बदलता रहा। स्वस्थ समाज संचालन के लिए आवश्यक नियमों को धार्मिक मान्यताओं एवं कर्मकाड़ों का रूप देने और समय-समय पर उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने की उद्युत क्षमता के कारण ही भारत की संस्कृति जीवित और गतिशील बनी रही।

धर्म हमारे व्यक्तिगत अनुभवों से संबन्धित होने के साथ-साथ सामाजिक अनुभवों से भी संबन्धित है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है

कि धर्म एक सामाजिक वस्तु होते हुए भी व्यक्तिगत है। व्यक्ति की अनुभूति द्वारा उचित समझा जानेवाला विश्वास ही उसका धर्म है। यदि व्यक्ति यह विश्वास करे कि उसके अपने धर्म के स्थान पर किसी अन्य धर्म में अधिक श्रेष्ठता है तब उस धर्म को भी अपना सकता है तथापि धर्म एक समाजिक वस्तु है। “धर्म का सबसे अनिवार्य और आधारभूत तत्व है-विश्वास, जिसके बिना धर्म किसी भी प्रकार प्रभावपूर्ण नहीं रह सकता। चाहे कोई समाज आदिम हो अथवा सभ्य, सभी समाजों में धर्म के अन्दर एक ऐसी शक्ति में विश्वास किया जाता है कि यह शक्ति इतनी सर्वव्यापी और अधिमानवीय है कि इसी की इच्छा से हमें सफलता-असफलता, सुख-दुख अथवा लाभ-हानि की प्राप्ति होती है। कुछ समाजों में लोग किसी एक शक्ति अर्थात् एकेश्वरवाद में विश्वास करते हैं तो कुछ समाजों में अनेक शक्तियों अर्थात् बहुदेववाद में विश्वास करते हैं”14।

किसी मनोवोपरी शक्ति में विश्वास करना धर्म की प्रमुख विशेषता है। वह शक्ति मानव शक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठतर है, इस शक्ति में विश्वास न करनेवला व्यक्ति नास्तिक, अधार्मिक या धर्म विरोधी कहलाता है। धर्म को बाह्य आचरणों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। केवल विश्वास ही पर्याप्त नहीं होता। यह स्पष्ट करने का माध्यम भी अत्यावश्यक है कि किसी व्यक्ति में मानवोपरी शक्ति में विश्वास पाया जाता है। इस विश्वास का प्रदर्शन अनेक बाह्य क्रियाओं, जैसे त्योहार, धार्मिक उत्सव, धार्मिक मेले आदि से होता है।

“धर्म के दो पक्ष हैं-आंतरिक पक्ष तथा बाह्य पक्ष। प्रथम पक्ष में विचारों का समूह, संवेग व भावनाएँ, धार्मिक प्रथाएँ तथा मानव के ईश्वर से संबन्धित कार्यों के संबन्ध में विश्वास, आंतरिक बातें सम्मिलित होती है। जब कि द्वितीय पक्ष में प्रार्थना की प्रथा, धार्मिक उत्सव, स्मृतियाँ आदि आते हैं। इसके माध्यम से धार्मिक विश्वास की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी में धार्मिक संस्थाएँ, जैसे गिरिजा घर, मन्दिर, मस्जिद आदि आते हैं। धर्म की पुस्तकें, जैसे बैबिल, रामायण, गीता वेद, कुरान आदि पवित्र माने जाते हैं”15।

वर्तमान सामाजिक परिवेश से तालमेल न होने के कारण अधिकतर धार्मिक मान्यताएँ एवं कर्मकांड रूढियों का रूप लेते जा रहे हैं। हमारी संस्कृति

के लिए यह चिंता का विषय है। हमें अपनी धार्मिक मान्यताओं एवं परंपराओं के मूल में झांकना होगा। धर्म अपने आप में सनातन है। उसका मूल तत्व आज भी वही है, जो हज़ारों वर्ष पहले था। किन्तु धर्म का बाह्य स्वरूप- कर्मकांड, परंपराएँ एवं उनसे जुड़ी मान्यताएँ शाश्वत नहीं है।

एक समुदाय के सदस्य जो दूसरे समुदाय के सदस्यों और धर्म के विरुद्ध प्रतिशोध करते हैं तो उन्हें सांप्रदायिक कहा जा सकता है। यह विरोध किसी विशेष समुदाय पर झूठे आरोप लगाना, क्षति पहुँचाना और जानबुझकर अपमानित करने का रूप है। उससे भी अधिक यह विरोध असहाय और निर्बल व्यक्तियों के घरों को लूटना, दूकानदारों को आग लगाना, उनकी स्त्रियों को अपमानित करना और औरतों को जान से मार डालने का भयानक रूप भी धारण कर लेती है।

सांप्रदायिक व्यक्ति वे हैं जो राजनीति को धर्म के माध्यम से चलाते हैं। नेताओं में, वे धार्मिक नेता सांप्रदायिक हैं जो अपने धार्मिक समुदायों को व्यापारिक अद्यम और संस्थाएँ मानती हैं। अंग्रेज़ों ने फूट का बीज डालकर राज करने की निति अपनायी। जिसके फलस्वरूप सांप्रदायिक झगड़ों को प्रोत्साहन मिला और उनका आधिपत्य कायम रहा। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पारस्परिक विरोध एक पुराना मामला है। परन्तु भारत में हिन्दु-मुस्लिम सांप्रदायिकता स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेज़ी शासन की विरासत है। सांप्रदायिकता आज भारत में महत्वपूर्ण तरीके से परिवर्तित सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में चलती है।

सांप्रदायिक झगड़ों का असर भारत में व्याप्त है। कई शहर विगत कई वर्षों से सांप्रदायिकता की बारूद पर खड़े हैं। एक बड़ी संख्या में ऐसे राज्य हैं जहाँ सांप्रदायिकता ने अपनी जडें मज़बूत कर ली हैं तथा सांप्रदायिक राजनीति भी चरम सीमा पर है। यदि सांप्रदायिकता के इस ज़हर से बचा नहीं गया तो सारा देश इसकी लपेट में आ जाएगा, जिससे हमारी धर्म निरपेक्षता खतरे में पड़ जाएगी। इसलिए सांप्रदायिक तनावों को रोकने के लिए और सांप्रदायिक सामंजस्य लाने के लिए बहुरूपीय उपायों की आवश्यकता है। हमें न केवल

धार्मिक सांप्रदायवाद को परन्तु राजनीतिक को भी रोकना है। सामाजिक वैज्ञानिकों और बुद्धिजीवियों को गंभीरता से विचार करना होगा कि सांप्रदायिकता के राष्ट्रीय व्याधि को इससे जुड़े हुए विषयों जैसे धार्मिक हिंसा, अलगाववाद को किस प्रकार नियंत्रण में रखें।

"संस्कृति शब्द अपने में सभी सामाजिक संस्कारों, परंपराओं, सभ्यता के विभिन्न तत्वों तथा लौकिक, आध्यात्मिक और धार्मिक मान्यताओं को समेटे हुए हैं। भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद और स्मृतियाँ हैं, जिनके आधार पर हिन्दु समाज की विभिन्न जातियाँ चल रही हैं। मुसलमान यद्यपि धार्मिक दृष्टि से कुरान शरीफ़ की आयतों का पालन करते हैं पर व्यावहारिक दृष्टि से अनेक बातें भारतीय परंपरा की ही मानते हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक विषयों में हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी तथा अन्य जंगली जातियाँ विभिन्न प्रकार के संस्कारों को करती हैं पर उनमें अनेक परंपराएँ समान भी हैं" 16।

अनेक व्यक्ति जब बहुत सी बातों में समान रूप से व्यवहार करते हैं तो वह समाज कहा जाता है। भारतीय समाज का अर्थ हुआ भारत में बसनेवाले लोगों का समूह जिनमें कतिपय समानताएँ पाई जाती हैं। जब हम भारतीय समाज की बात करते हैं तब हमारा अभिप्राय भारतवासियों के उस समूह से होता है। जिसमें भारत की प्रकृति के अनुसार प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। अत: भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता है-अनेकता में एकता और भिन्नता में समानता।

भारतीय समाज का समस्त जीवन ग्रामीण संस्कृति से अनुप्रणीत है। ग्रामीण कलाएँ, त्योहार, संस्कार, रूढियाँ, प्रथाएँ, रीति-रिवाज़, खेल-कूद आदि विभिन्न अवयवों के योग से संस्कृति बनती है। संस्कृति के अन्तर्गत वे सभी काम करने, सोचने-विचारने, रहन-सहन के तरीके आदि आती हैं जिन्हें मनुष्य पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्व समाज से हस्तान्तरित करता आ रहा हैं तथा जिन्हें समाजिक स्वीकृति एवं संस्तुति प्राप्त हैं।

आधुनिक युग में सर्वत्र नैतिक मूल्यों के ह्रास की चर्चा करते हुए बड़े-बूढ़े यह कहते देखे जाते हैं कि नवयुवकों में नैतिकता नाम की कोई चीज़ है ही

नहीं। नवयुवक नैतिकता की बातें करते हिचकते हैं। सामाजिक जीवन में सर्वत्र आपाधापी, स्वार्थ का बोलबाला है। नैतिकता केवल मात्र पुस्तकों के पृष्ठों में ही अंकित रह गयी है। भारतीय जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उसकी समाप्ति होती जा रही है। नैतिकता का यह ह्रास अत्यन्त दु:खदायी है और हमारे देश की विभिन्न समस्याओं का मूल कारण यही है।

संस्कृति में वेश-भूषा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह हर देश की संस्कृति की निशान है। भारत के पुरुष परंपरागत रूप से धोती, लुंगी और कुरता पहनते हैं तो औरतें साड़ी, घाघरा, चुनरी, काँचली आदि पहनती हैं। लेकिन वर्तमान संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से उसमें परिवर्तन आने लगे हैं। देश की राष्ट्रभाषा में हिन्दी का नाम प्रमुख है। फिर भी पाश्चात्य प्रभाव से देश के अधिकांश लोग हिन्दी पढ़ने और लिखने का प्रयास करते हैं।

भारतीय समाज में त्योहारों एवं मेलाओं का व्यापक महत्व है। लोग त्योहारों के दिन अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनते हैं, भोजन में बढ़िया-बढिया पकवान आदि बनवाते हैं। घर में चारों ओर खुशी का वातावरण होता है। त्योहारों के मूल में धार्मिक भावना निहित होती है और उत्तम भविष्य की कामनाएँ अपने देवी-देवताओं से करते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्त ने समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में आए परिवर्तनों को अपने कथा साहित्य के माध्यम से अंकित करने का सफल प्रयास किया है।

समसामयिक हिन्दी कथा-साहित्य

साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है। जीवन को प्रतिबिंबित करने के लिए साहित्य के विभिन्न रूपों को अपनाया जाता है। उन सभी रूपों में कथा-साहित्य सबसे अधिक लोक प्रिय और प्रभावोत्पादक साहित्यांग है। सजीवता, स्वाभाविकता आदि गुणों के कारण कथा-साहित्य में जीवन को प्रतिबिंबित करने की अधिक क्षमता है। जीवन में रहते हुए हम जीवन के धरातल पर ही तैरते रहते हैं पर कथा-साहित्य में हम डुबकी लगाकर जीवन के अन्तरस्तल तक

पहूँचते हैं और जीवन का वास्तविक रूप देखते हैं।कथा, साहित्य की गद्यात्मक रूप है। इसमें कल्पना, भावोन्मेष तथा मनोरंजन के साथ अनुभवजन्य ज्ञान विशेष भी होता है। कथाकार अपनी कथा को केवल पाठकों के मनोरंजन का साधन ही नहीं बनाता, अपनी कृति द्वारा किसी मौलिक विचार-परंपरा को जगत में छोड़ना चाहता है। कथा-साहित्य में पाठकों में कुतूहल जगाकर उनको अपनी ओर आकर्षित करता है और उनकी जिज्ञासा की स्वाभाविक प्रवृत्ति को तृप्त करता है। कथा-साहित्य के दो रूप हैं-उपन्यास और कहानी।

उपन्यास

गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास मुख्य हैं। उपन्यास मानव जीवन तथा समाज पर आधारित पूर्ण कथानक होता है। इसमें कथावस्तु का व्यवस्थित संगठन होता है। चरित्र-चित्रण, देशकाल और उद्देश्य पर पूर्ण ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार उपन्यास का क्षेत्र जीवन से पूर्णतया संबन्ध है।हिन्दी साहित्य के बहुत से विद्वान, ईशा-अल्लाखाँ द्वारा रचित रानी केतकी की कहानी को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं, परन्तु अन्य उसे उपन्यास के रूप में स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं होते हैं। वह उसे केवल कहानी ही मानते हैं। अत: वास्तव में यह कह सकते हैं कि हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ भारतेन्दु युग से ही हुआ है।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास के प्रारंभिक अवस्था में पं.किशोरी लाल गोस्वामी तथा देवकीनन्दन खत्री का नाम महत्वपूर्ण हैं। इन लेखकों ने आरंभ में मनोरंजन पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था। इसलिए इन उपन्यासकारों ने ऐय्यारी, जासूसी तथा ऐतिहासिक उपन्यास प्रमुख रूप से लिखे हैं, साथ-साथ सामाजिक उपन्यासों की रचना भी की है। ये उपन्यासकार उपन्यास लिखने में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। पं.किशोरीलाल गोस्वामी ने लगभग 65 उपन्यासों की रचना की हैं, इसमें चपला शीर्षक उपन्यास सार्वाधिक महत्वपूर्ण श्रृंगारिक उपन्यास हैं।

हिन्दी उपन्यासकारों में गोस्वामीजी के बाद देवकीनन्दन खत्री का नाम आता है। चन्द्रकान्ता, भूतनाथ, गढ़-कुन्डार आदि उनके महत्वपूर्ण उपन्यास है।

उनके उपन्यासों में विचित्र रूप में घटनाओं का क्रम और उसमें अद्भुत घटनाएँ घटती जाती हैं। तिलिस्मी और ऐय्यारी की विचित्र करामतें दिखाई जाती हैं। वास्तव में यही उपन्यास अधिक से अधिक पाठकों को हिन्दी उपन्यास की ओर आकर्षित किया। खत्रीजी के उपन्यास भी गोस्वामीजी के तरह मनोरंजन को ही अधिक प्रमुखता दिया है। इसलिए खत्रीजी के उपन्यासों में मन रमाने के लिए उपयुक्त सामग्री दी गयी है। इनकी भाषा सरल है तथा पाठक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है।

उपन्यास के विकास क्रम में बाबू गोपाल राम गहमरी का स्थान भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने लगभग पचास उपन्यासों की रचना की है। प्रारंभिक उपन्यासकारों की तरह इनके उपन्यासों भी ऐय्यारी तथा जासूसी तत्वों की अधिकता है। भाषा सरल एवं व्यावहारिक है, शैली सुगम तथा उद्देश्य मनोरंजन है। इस प्रकार हिन्दी के जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों का पूरा विकास हुआ। इन उपन्यासों में अक्सर उपन्यासकारों ने सुरुचि तथा सामाजिक कल्याण पर ध्यान कम दिया, अत: उपन्यास क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुआ।

प्रेमचन्द युग में ही हिन्दी उपन्यास का असली परिवर्तन हुआ। सबसे पहले उपन्यास में परिवर्तन लेकर हरी औधजी का आगमन हुआ। उन्होंने अपने उपन्यासों में संस्कृत-गर्भित पुष्ट और सबल भाषा का प्रयोग किया। इनके प्रमुख उपन्यास हैं-ठेठ हिन्दी का ठाट और अधखिला फूल। इन दोनों उपन्यासों में भाषा का विशेष ध्यान दिया। इनका खथानक सामाजिक है तथा वर्णन में स्वाबाविकता है। कथावस्तु और कलात्मकता की दृष्टि से ये उपन्यास कहे जायेंगे।श्री लज्जाराय मेहता तथा ब्राजनन्दन सहाय प्रेमचन्द युग के प्रारंभिक उपन्यासकार हैं, फिर भी उपन्यास क्षेत्र में क्रान्तिकारी युग परिवर्तन प्रेमचन्दजी के उपन्यास से होता है। इनके उपन्यास में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है तथा समाज के विभिन्न वर्गों का यथार्थ चित्र खींचा गया है। उन्होंने अपने समय के समाज की परिवर्तनों को उपन्यासों में स्थान दिया। पहले प्रेमचन्दजीउर्दु में लिखा करते थे, बाद में वे हिन्दी में लिखना आरंभ कर दिया। सेवा सदन, निर्मला, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन,

कायाकलाप, गोदान आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।उपन्यास के विकास में जयशंकर प्रसादजी ने नया दृष्टिकोण रखा। उन्होंने अपने बहुमुखी प्रतिभा के बल पर उपन्यास लिखना आरंभ किया, उसमें उन्हें सफलता भी मिली। समाज के विभिन्न वर्गों के चित्रांकन में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई तथा भाषी उपन्यासकारों के लिए मार्गदर्शन का कार्य भी उन्होंने किया।

वर्तमान युग में अनेक उपन्यासकार उभरकर सामने आये हैं, उनमें श्री वृन्दावनलाल वर्मा का नाम प्रतिष्ठित है। झाँसी की रानी, मृगनयनी आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के अलावा उग्र, निराला, भगवती प्रसाद बाजपेयी, जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, अज्ञेय, अश्क, गोविन्द मिश्र, विष्णु प्रभाकर, मन्नू भण्डारी, राजेन्द्र यादव आदि का नाम भी हिन्दी उपन्यास साहित्य में विख्यात हैं।समाजवादी चिन्तन की अभिव्यक्ति ही भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों का प्रमुख स्वर है। शोले उपन्यास (1946) से अपनी रचना-यात्रा शुरु करनेवाले गुप्तजी ने प्रगतिवादी आन्दोलन की अन्तिम कड़ी के बतौर प्रेमचन्द की तरह शहर और गाँव दोनों को अपनी रचना का केन्द्र बनाया और मानवीय शोषण के छद्म रूपों को उधेड़कर वर्गहीन समाज के निर्माण की राह तैयार की। गुप्तजी ने समाज के बुनियादी वर्गों-किसान और मज़दूर-को केन्द्र में रखकर मशाल, गंगा मैया, सती मैया का चौरा और धरती जैसी महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृतियों की रचना की।

कहानी

मानव जीवन के विकास के साथ ही कहानी का भी विकास मानना पड़ता है। मानव-स्वभाव की विशेषता है कि वह अपने अनुभवों को दूसरों को सुनाना तथा दूसरों के अनुभवों को सुनना चाहता है इसमें उसकी अपूर्व उत्सुकता रहती है। अत: वह अनादि काल से इस प्रकार की घटनाओं की कथा कहता-सुनता जा रहा है। यहीं से कहानी का आरंभ माना जा सकता हैं। प्रारंभिक रूप में कहानी का रूप मौखिक रहा। फिर संस्कृत साहित्य के गद्य युग से लिखित होता चला आ रहा है। संस्कृत साहित्य में पंचशील, हितोपदेश, कथासरित सागर आदि कहानी संग्रहों का सृजन हुआ। जैन और बौद्ध युगों में

जातक कथा थथा अन्य धर्म कथाएँ प्रचलित हुई। कहानियों की शैली तथा उनके उद्देश्य भिन्न थे। अत: उनमें कहानी की कलात्मकता का प्रभाव है।

"हिन्दी की पहली कहानी कौन सी है इस विषय में थोड़ा मत भेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार पहली कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की इन्दुमती (1900) है और दूसरी उनकी स्वयं की कहानी ग्यारह वर्ष का समय (1903) है। शुक्लजी के अनुसार इन्दुमती यदि किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की पहली मौलिक कहानी वही है। इस प्रकार शुक्लजी के अनुसार इन्दुमती बंगला कहानी की छाया भी हो सकती है और शिवदान सिंह चौहान के अनुसार वह शेक्सपियर के टेम्पस्ट की छाया है। इसलिए यदि यह मान लिया जाय तो हिन्दी की पहली मौलिक कहानी ग्यारह वर्ष का समय ही है। किन्तु इधर कुछ लोगों की खोज के अनुसार माधव राव सप्रे की कहानी एक टोकरी भर मिट्टी हिन्दी की पहली कहानी है जो सन् 1901 में छत्तीसगढ़ मित्र नामक मासिका पत्रिका में छपी थी" 17।

वस्तुत: सन् 1900 ई. से 1915 ई. तक हिन्दी कहानी के विकास का पहला दौर था। गुलबहार (किशोरी लाल गोस्वामी 1902), पंडित और पंडितानी (गिरिजा दत्त वाजपेयी 1903), ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल 1903), मन की चंचलता (माधवप्रसाद मिश्र 1907), दुलाईवाली (बगमहिला1907), विद्या बहार (विद्यानाथ शर्मा 1909), राखीबंद भाई (वृन्दावनलाल वर्मा 1909), ग्राम (जयशंकर प्रसाद 1911), सुखमय जीवन (चंद्रधर शर्मा गुलेरी1911) रसिया बालम (जयशंकर प्रसाद 1912), परदेसी (विश्वम्भरनाथजिज्जा1912), कानों में कंगना (राजा राधिका रमणप्रसाद सिंह 1913), रक्षाबंधन (विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' 1913), उसने कहा था (चंद्रधर शर्मा गुलेरी1915) आदि के प्रकाशन से सिद्ध होता है कि इस प्रारंभिक काल में हिन्दी कहानियों के विकास के सभी चिन्ह मिल जाते हैं। 1950 तक हिन्दी कहानी का एक विस्तृत दौर समाप्त हो जाता है और हिन्दी कहानी परिवक्वता के दौर में प्रवेश करती है।

सन् 1916 में प्रेमचन्द की पहली कहानी सौत प्रकाशित हुई। प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी कथा-साहित्य समाज-सापेक्ष सत्य की ओर मुडा। प्रेमचन्द की आखिरी कहानी कफ़न सन् 1936 में प्रकाशित हुई और उसी वर्ष उनका देहावसान भी हुआ। बीस वर्षों की इस अवधि में कहानी की कई प्रवृत्तियाँ उभर कर आयीं। किन्तु इन प्रवृत्तियों को अलग अलग न देखकर यदि समग्रत: देखा जाय तो इस समूचे काल को आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के रूप में लिया जा सकता है। इस कालावधि में प्रसादजी और प्रेमचन्दजी कहानियों का प्रतिनिधित्व करते थे। प्रसादजी मुख्यत: रोमांटिक कहानीकार थे। किन्तु उनके अन्तिम कहानी संग्रह सन् 1936 में प्रकाशित इंद्रजाल में संग्रहित इन्द्रजाल, गुंडा, सलीम, विरामचिन्ह से उनकी यथार्थोमुखी प्रवृत्ति को पहचाना जा सकता है। पर रोमांटिक होने के कारण वे आदर्शवादी थे। प्रेमचन्द ने अपने को आदर्शोंमुखी यथार्थवादी कहा है। वस्तुत: वे भी आदर्शवादी थे। किन्तु अपने विकास के अंतिम काल में वे यथार्थ की कटुता को भोगकर यथार्थवादी हो गए। पूस की रात और कफ़न कहानियाँ इसके प्रमाण हैं। सन् 1933 में निरालाजी का एक संग्रह लिली को प्रकाशित हो चुका था। उसकी कहानियाँ बहुत कुछ यथार्थवादी ही हैं।

सन् 1922 में उग्रजी का हिन्दी कथा-साहित्य में प्रवेश होता है। उग्र न तो प्रसादजी की तरह रोमांटिक थे और न ही प्रेमचन्द की तरह आदर्शोंमुखी यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे। प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। समाज की गंदगी को अनावृत करने के कारण तथाकथित शुद्धतावादीआलोचकों ने उनकी तीखी आलोचना की। उनके साहित्य को घासलेटी साहित्य कहा गया। उन्होंने सामाजिक कुरूपताओं पर तीखा प्रहार किया। दोजख की आग, चिन्गारियाँ, बलात्कार, सनकी अमीर, चाकलेट, इन्द्रधनुष आदि उनकी सुप्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

सन् 1927-28 में जैनेद्रजी ने कहानी लिखना शुरु किया। उनकी पहली कहानी खेल सन् 1927 में विशाल भारती में प्रकाशित हुई थी। फाँसी, वातायान, नीलम देश की राजकन्या, एक रात, दो चिड़ियाँ, पाजेब, जयसंधि

आदि उनके कहानी संग्रह है। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी कहानी का नया उत्थान शुरु होता है। जैनेद्रजी की कहानियों में एक विशिष्ट प्रकार के जीवन-दर्शन की खोज है। जैनेन्द्र मन की परतें उघाड़ते हैं और उसके माध्यम से सत्यान्वेषण का प्रयास करते हैं। कहानियों के माध्यम से सत्यान्वेषण का यह प्रयास पहली बार जैनेन्द्रजी की कहानियों में दिखाई पड़ता है।

यशपालजी मूलत: प्रेमचन्द की परंपरा के कहानीकार हैं। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में प्रगतिशीलता के तत्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपालजी राष्ट्रीय संग्राम के एक संक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। इसलिए साहित्य के व् साधन समझते थे, साध्य नहीं। स्पष्ट है कि उनकी कहानियाँ किसी न किसी उद्द्श्य की पूर्ति के लिए लिकी गयी हैं। प्रेमचन्द धन के दुश्मन थे तो यशपाल धनी के। धनी वर्ग हमारे समाज के कोढ़ हैं। सारी सांस्कृतिक-नैतिक असंगतियों को मूल धन में धन की विषमता ही क्रियाशील है। माक्र्स के साथ ही इन पर फ्रायड का भी गहरा प्रभाव है। फलत: यौन-चेतना के खुले चित्र भी उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। वे सामाजिक विषमताओं और मध्यवर्गीय समाज के खोखलेपन पर गहरा व्यंग करने में बेजोड़ हैं। यशपालजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथा का रस उनमें सर्वत्र मिलता है। उनके दर्जनों कहानी सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं-पिंजडे की उडान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिशप्त, तर्क का तूफान, भस्मावृतचिन्गारी, फूलों का कुर्ता, उत्तमी की माँ आदि।

अज्ञेयजी प्रयोगधर्मा कलाकार हैं। उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुडी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं-काव्य में भी कथा-साहित्य में भी। उनकी आरंभिक कहानियों में रुमानी विद्रोह दिखाई पड़ता है। लेकिन क्रमवश वे रोमांस से हटते गये। विपगाथा, परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्था, जयदोल, ये तेरे प्रतिरूप आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। पहले दोनों संग्रहों की कहानियों में अहं का विस्फोट और रूमानी विद्रोह है।

अश्कजी भी प्रेमचन्द परंपरा के कहानीकार हैं। उन्होंने भी मध्यवर्गीय समाज से कथावस्तु का चयन किया है। कहानी संबन्धी विविध प्रयोग उनकी रचना में मिलेंगे। जीवन की गहरी अनुभूति डाची, कांकडां का तेली जैसी कहानियों में उपलब्ध होती है। अश्कजी के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। सन् 1950 के आसपास से ही हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुज़रने लगती हैं। इन दो दशकों में में विकसित कहानियों की प्रवृत्ति को एक नाम देना कठिन है। यदि कोई नाम दिया जा सकता है तो वह है आधुनिकता बोध की कहानियाँ, आधुनिकता यानी विज्ञान और प्रविधि की यांत्रिकता में जकड़े जटिल-जीवन-बोध की कहानियाँ।

आधुनिक जीवन में कुछ ऐसा टूट गया है कि पुराने सारे संबन्ध बदल गए हैं। रागपूर्णसंबन्ध अपने तनावों में मूल्यहीन होने के साथ अर्थहीन भी हो गये हैं। मोहन राकेशजी ने इन तनावों को मुख्य रूप से अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। कमलेश्वर तनावों के बीच मूल्य दृष्टि की तलाश करते हैं। निर्मल वर्माजी मूलत: रोंमांटिक होते हुए भी कुछ कहानियों में आज की सामाजिक विडंबना, निरर्थक चीख को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हैं। धर्मवीर भरती, रघुवीर सहाय और नरेश मेहता भी आज चर्चित कहानीकार हैं। राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, श्रीकांत वर्मा, कृष्णबलदेववैद, राजकमल चौधरी आदि भी तनावों के ही कहानीकार हैं। ये तनाव, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, सास-बहु, प्रमी-प्रेमिका सभी में दिखाई पड़ते हैं। सारी जीवन इतना जटिल और यांत्रिक हो गया है कि मनुष्य यंत्रगतिक हो चला है। व्यक्ति और समाज के बीच गहरी खाई पैदा हो गई है। ज्ञानरंजन, दुधनाथ सिंह, विजयमोहन सिंह, रवीन्द्र कालिया, महेन्द्रभल्ला आदि की कहानियों में आधुनिकता का वह रूप है जो उब, घुटन, व्यर्थता आदि को अभिव्यक्त करता है। हिन्दी कथा साहित्य जगत में इन कहानिकारों के अलावा और भी कई कहानीकार हैं जिनके सूची लंबी है जैसे-काशीनाथ सिंह, इब्राहिम शरीफ़, इजराइल, विश्वेशवर, सुधा अरोड़ा आदि।

भैरवप्रसाद गुप्त की कहानियाँ मानव जीवन और सामाजिक यथार्थ के विविध आयामों को प्राय: सूक्ष्म जीवन्त परिचय देती है। मज़दूरों के शोषण और संघर्ष को केन्द्र में रखकर उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उनकी हनुमान, चाय का प्याला जैसी कहानियाँ उनके कहानी लेखन के उस दौर की कहानियाँ हैं, जब एक लेखक के रूप में सामाजिक रूपान्तरण का, उनका उत्साह, कलात्मक संयम और कहानी की रूपगतअपेक्षाओं की ओर सजग होने लगा था।

समाजवादी साहित्य और भैरवप्रसाद गुप्त

हिन्दी साहित्य संसार में समाजवादी साहित्य का समारंभ विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का प्रतिफल है। सन् 1936 से साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र में नवयुग का श्रीगणेश हुआ। इसके मूल में रूस की समाजवादी विचारधारा काम कर रही थी। इस विचारधारा का प्रभाव बुद्धिजीवी वर्ग के साथ-साथ जन-साधारण पर भी पड़ा। करांचीकाँग्रेस से नेता गण भी इससे प्रभावित हुए थे। यद्यपि काँग्रेस में समाजवादी प्रेरणा का सूत्र इससे से भी पहले प्राप्त होता है पर अब वह समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित करती है। लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन के साथ ही हिन्दी में समाजवादी साहित्य को पनपने का अवसर मिलता है। इसके साथ समाजवादी साहित्य को जागरण और हंस जैसे पत्रों ने प्रेरणा प्रदान करके जागृत किया। इस प्रकार भारतीय साहित्य में समाज से होकर समाजवादी चेतना आरंभ हुई। साहित्य के पद्य विधा के साथ-साथ गद्य क्षेत्र में, विशेषकर हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में समाजवाद का रूप धारण करती है।

“समाजवादी साहित्य में समाज के बहुसंख्यक वर्ग मात्र के जीवन की गतिविधियों का चित्रण होता है-साधन संपन्न वर्ग मात्र का नहीं। समाजवादी साहित्यकार अपने दायित्व की सीमा को समाज नेतृत्व तक बढ़ा देता है जिसमें वह अपने कर्तव्यों के प्रति चिर जागरूक रहकर मानव को उसकी बिछड़ी मानवता से मिला सके, सर्वहारा वर्ग की दलित आत्मा का उद्बोधन कर उसकी

जीवन वर्तिका को उद्वेलित कर सके। समाजवादी साहित्य जन मानस को अर्थ वैषम्य का बोध करा उसे आर्थिक बँटवारे का रहस्य समझाकर उसके कठोर दैन्य का समाधान प्रस्तुत करता है। उसका मूल उद्देश्य है-सर्वहारा वर्ग के सत्वों की रक्षा" 18।

"समाजवादी साहित्य स्थायी और प्रभावशाली साहित्य के निर्माण के लिए समाज की तत्कालीन गतिविधियों को पहचानकर समाज के प्रगतिशील वर्ग से संबन्ध स्थापित करना आवश्यक समझता है। सामयिक सामाजिक गतिधियों तथा परिवर्तनों की गहराई में जाकर प्रतिक्रियावादी शक्तियों तथा क्रान्तिकारी शक्तियों को पहचानकर प्रगतिशील शक्तियों के मार्ग की बाधाओं को दूर करना ही समाजवादी साहित्यकार का लक्ष्य है" ।19

हिन्दी कथा-साहित्य में समाजवादी साहित्य के एक विशिष्ट एवं समृद्ध परंपरा पायी जाती है। समाजवाद को यथार्थवाद की साहित्यिक परिणति माना जाता है। इसी कारण समाजवादी साहित्यकार साहित्य को समाजवादी चेतना मानते हैं। इन साहित्यकारों की मूल प्रेरणा स्त्रोत माक्र्सवाद है। हिन्दी कथा साहित्य पर माक्र्सवाद का प्रभाव वास्तव में प्रेमचन्द युग से पड़ना आरंभ हो गया था।

प्रेमचन्दोत्तर युग में तो तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों ने हिन्दी के साहित्यकारों को माक्र्सवादी विचारधारा से उत्पन्न प्रभाव को ग्रहण करने के लिए बाध्य किया। प्रेमचन्दोत्तर युग में ऐसे कितने ही हिन्दी उपन्यास और कहानी निकले थे जो माक्र्सवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हुए हैं। मार्क्सवादी साहित्य के लिए हिन्दी में समाजवादी साहित्य अथवा प्रगतिवादी साहित्य नामरूढ हो गये हैं। हिन्दी साहित्य में समाजवादी कथा-साहित्य का प्रस्थान बिन्दु प्रेमचन्द का गोदान माना जा सकता है। "प्रेमचन्दोत्तर युग में समाजवादी साहित्यकारों में यशपाल, रांगेय राघव, नागार्जुन, राहुल साकृत्यायन, अमृतलाल नागर, राजेन्द्र यादव और भैरवप्रसाद गुप्त प्रमुख हैं" 20। इनके अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेश मेहता, उपेन्द्र नाथ अश्क, मोहन राकेश, भगवती प्रसाद बाजपेयी आदि का नाम भी आते हैं।

इनके रचनाओं में आंशिक रूप से समाजवादी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ ऐसे भी साहित्यकार हैं, जिनकी कुछ रचनाएँ समाजवादी दृष्टिकोण से प्रभावित दिखाई देती हैं। ऐसे साहित्यकारों में निरमला, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, भगवती चरण वर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

समाजवादी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में समाजवादी जीवन-दर्शन की सुन्दर अभिव्यक्ति दी हैं। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत मान्यताओं को ही नहीं वरन् सामाजिक मान्यताओं एवं समाज से संबन्धित दृष्टिकोण को भी मान्यता प्रदान की है। "इस दृष्टि से यशपाल के मनुष्य के रूप, बारह घण्टे, झूठ-सच, अप्सरा का शाप, राहुल साकृत्यायन कृत विस्मृत यात्री, मधुर स्वप्न, अमृत राय की बीज, रामेश्वर शुक्ल अंचल का उल्का, हिमांशु श्रीवास्तव का लोहे के पंख, यक्षदत्त शर्मा का महल और मकान, निर्माण पथ, अमृत लाल नागर का बूँद और समुद्र, उपेन्द्र नाथ अश्क कृत पत्थर अल पत्थर आदि रचनाएँ उल्लेखनीय है" 21।

भैरवप्रसाद गुप्तजी का हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण सन् 1945 में हुआ। समाजवादी साहित्यकार गुप्तजीप्रेमचन्दोत्तर युग के एक सशक्त कथाकार हैं। उन्होंने प्रेमचन्द की परंपरा को विकसित करने में अपना अमूल्य योगदान दिया है। गुप्तजी अन्य समाजवादी साहित्यकारों से पृथक दिखाई देते हैं। यशपाल, रंगेय राघव, राहुलजी, नागर्जुन, अमृत लाल नागर, अमृत राय आदि साहित्यकारों ने जिस प्रकार समाजवादी साहित्य की धारा को अग्रसर करने में अपना योगदान दिया है, उसी प्रकार भैरव प्रसाद गुप्त भी समाजवादी कथा-साहित्य को समृद्ध करने में अग्रणी रहे हैं। उनके उपन्यासों एवं कहानियों की दृष्टि समाजवादी रही है। उनकी दृष्टि जन-जीवन की जागृत चेतना के साथ-साथ भविष्य की संभावनाओं को भी तलाश करती है। उन्होंने प्राचीन रूढियों, अत्याचारों, ह्रासोन्मुखी रीति-रिवाज़ों के चित्रण के साथ-साथ विकास शील नई सामाजिक प्रवृत्तियों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर किया है।

एक साहित्यकार के रूप में गुप्तजी अपने समाजवादी सिद्धांतों का आरोपण नहीं करते बल्कि वे कथा साहित्य की दृष्टि में समाजवाद का प्रवक्ता न

बनकर जीवन की यथार्थता को खोजनेवाले अनुभव की अभिव्यक्ति देनेवाले माध्यम के रूप में स्वीकार करते हैं। डॉ.राजेन्द्र मोहन अग्रवाल ने भी गुप्तजी समाजवादी संवेदना से युक्त माना है। उनके विचार में "उन्होंने उपन्यासों की रचना की हैं और कहानियों की भी। दोनों में ही उनकी समाजवादी दृष्टि रही है। ये सामान्य जन की वर्ग-चेतना से संबन्ध रहे हैं। माक्र्सवादी होने के कारण उनके उपन्यासों की कथा वस्तु समान्यत: कृषकों, श्रमिकों आदि सर्वहारा वर्ग को लेकर चलती है। शोषित का वर्णन करने के लिए उन्होंने शोध के शोषण का भी विवरण किया है। और शोषकों के विविध रूपों में अपनाये जानेवालेहथकण्डों का भी जीवन्त चित्रण मिलता है। किन्तु यहाँ यह दृष्टव्य है कि उनकी यह दृष्टि मात्र अध्ययन प्रस्तुत ही न होकर अनुभूति के स्तर तक गहराई में पैठी हुई है। इसलिए कथानकों में प्रचारात्मकता की उपेक्षा वास्तविकता का पुट है" 22।

साहित्य समाज का दर्पण होने से समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्यकार पर भी पड़ता है। जिससे प्रभावित होकर वे अपनी साहित्य रचनाओं में इस परिस्थितियों को उभारने की कोशिश करता है। हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकार भैरवप्रसाद गुप्त के कथा-साहित्य में भी इन परिस्थितियों का उल्लेख सर्वत्र दर्शनीय है। देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुन्दर अभिव्यक्ति उनके कथा साहित्य में परिलक्षित हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में गुप्तजी के कथा साहित्य का विस्तृत अध्ययन आनेवाले अध्यायों में अंकित है।

संदर्भ

1.भारतीय साहित्य के निर्माता, श्री.मधुरेश, पृष्ठ.सं17

2.रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना, डॉ.शिवाजीनाळे, पृष्ठ.सं50

3.भारत में समाज, कंचन वर्मा और सीता वर्मा, पृष्ठ.सं20

4.समाज का अध्ययन, मनोरमा पवार और दिनेश वर्मा, पृष्ठ.सं19

5.रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना, डॉ.शिवाजीनाळे, पृष्ठ.सं50

6.समाज का अध्ययन, मनोरमा पवार और दिनेश वर्मा, पृष्ठ.सं20

7.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, डॉ.ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृष्ठ.सं122
8.वही पृष्ठ.सं123
9.भारतीय राजनीति नये क्षितिज, डॉ.भुवनेश्वरी चरण सक्सेना, पृष्ठ.सं391
10. उपन्यासकार अमृतलाल नागर, डॉ.राजेन्द्र प्रसाद, पृष्ठ.सं47
11.रामदर्श मिश्र के कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना,डॉ.शिवाजीनाळे,पृष्ठ.सं141
12. वही, पृष्ठ.सं121
13. समाज और धर्म, कंचन वर्मा और विमला देवी, पृष्ठ.सं02
14. वही, पृष्ठ.सं02
15. वही पृष्ठ.सं81
16. सामाजिक संस्कृति और उसका महत्व, आधुनिक हिन्दी निबंध, डॉ.भुवनेश्वरी चरण सक्सेना, पृष्ठ.सं265
17. हिन्दी कहानी-अंतरंग पहचान, रामदरश मिश्र, पृष्ठ.सं05
18. समाजवादी उपन्यासकार भैरव प्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर, पृष्ठ.सं136
19. हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना, डॉ.शिवाजीसांगोळे,पृष्ठ.सं70
20. यशपाल के उपन्यास साहित्य का अनुशीलन, भ.म.कडू, पृष्ठ.सं79
21. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ.सुनन्दा पालकर, पृष्ठ.सं281
22. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास, डॉ.बदरी प्रसाद, पृष्ठ.सं46

अध्याय 3

सामाजिक दृष्टिकोण में भैरवप्रसाद गुप्त का कथा-साहित्य

भैरवप्रसाद गुप्त सामाजिक जीवन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील कलाकार हैं। इस कारण से उनके कथा-साहित्य में भारत के विस्तृत एवं गहन सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रस्फुटित हुआ है। कथा-साहित्य में सामाजिक परिवेश जितना जीवंत होता है, वह उतना ही सफल कथा-साहित्य माना जाता है। इसके लिए जीवन के प्रति गहरी और सूक्ष्म दृष्टि का होना आवश्यक है। लेखन की सामग्री तो सामाजिक जीवन से ही मिलती है और सामाजिक जीवन कोई वायवीय वस्तु है नही, जिसकी घर बैठे कल्पना की जा सके।गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में भारतीय जीवन के सामाजिक पक्ष का अपने अनुभव से चित्रण किया है। वे खुद भारत के पिछड़े हुए उत्तर प्रदेश के सिवानकलाँ गाँव के हैं। अत: उन्होंने जीवन की समस्याओं, विसंगतियों और प्रश्नों को स्वयं देखा है, सहा है और भोगा भी है। इसलिए उन्होंने अपने कथा-साहित्य में जीवन के सामाजिक पक्ष का यथार्थ चित्रण किया है।गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत जाति व्यवस्था एवं अस्पृश्यता, पारिवारिक जीवन, वैवाहिक जीवन, दहेज, शिक्षा, नारी का स्थान, दासी-प्रथा, वेश्यावृत्ति आदि का चित्रण किया है।

इस विशेष अध्याय में, हम भैरवप्रसाद गुप्त के साहित्य को एक नए दृष्टिकोण से देखने जा रहे हैं। इस अद्वितीय अन्वेषण में, हम उनकी कथा-साहित्यिक रचनाओं को सामाजिक परिप्रेक्ष्य से जोड़ते हैं, जो हमें भारतीय समाज की विभिन्न पहलुओं और सामाजिक समस्याओं के साथ रोमांच, समर्थन, और समीक्षात्मक विश्लेषण का अवसर प्रदान करता है। इस यात्रा में, हम उनकी रचनाओं के माध्यम से समाज की मुखर अनुभूतियों को उजागर करने का प्रयास करेंगे, जिससे हम भारतीय साहित्य और सामाजिक संदर्भ में नए दरबारे तक पहुंच सकें।

जाति-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता

भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ण-व्यवस्था और जातीय व्यवस्था की भाँति अस्पृश्यता या छुआछूत का प्रचलन प्राचीन काल से चलता आया है। अस्पृश्यता का प्रमुख कारण जातीय व्यवस्था ही माना जाता है। समाज में लोग अज्ञान, अशिक्षा और अन्धविश्वास के कारण पुराने रीति-रिवाज़ों और परंपराओं में जकड़े हुए हैं, इस कारण से अस्पृश्यता को मानते हैं। वे उन्हें पशु से भी हीन समझते हैं। परंपरागत संस्कारों और आतंक से निम्न जाति के लोग भी अपने को अछूत मानते हैं। अस्पृश्यता देश के विकास के लिए बाधा बनी है। सरकार ने इसे हल करने के लिए कानून बनाए हैं, फिर भी यह विषय अब भी सिर उठाए खड़ी है। गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास में जातीय अस्पृश्यता का चित्रण इस प्रकार दिखाया है-"मैं तो कभी भी कुएँ पर पानी नहीं पीता। छोटी सी छोटी जाति का आदमी भी कुएँ पर मुझसे बड़ा हो जाता है और एसी नज़र से देखता है, मानो मुझसे छू जाने से ही सब कुछ गन्दा हो जाएगा"1।

समाज में छोटी जाति के लोगों को बड़ी जाति के लोगों के सामने बैठने की अनुमति निषेध है। अगर अनुमति मिल जाए, तो कुर्सी पर बैठने का अधिकार न होता था। इसका उल्लेख गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास में इस प्रकार किया है-"दरअसल वह इस बात से डरता था कि कहीं मन्ने के अब्बा ने उसे पीढ़ी पर बैठने के लिए कह दिया, जैसा कि वह बनियों को कहते हैं। छोटी जाति के लोग तो उनके सामने फर्श पर ही बैठते हैं।..........इसी कारण वह उनके पास जान-बूझकर ही कभी न आता था। इसके पहले केवल एक बार वह उसके पास जाने को मज़बूर हुआ था, उसे वह घटना आज भी अच्छी तरह याद है, हमेशा याद रहेगी!"2

कदम के नीचे कहानी में निम्न वर्ग की बूढ़ी मोतिया मंदिर के बाहर के आँगन की सफ़ाई करती थी। मंदिर के अन्दर उसे प्रवेश करना मना था। वह घर की जिम्मेदारियों को पूरा कर भगवान की सेवा कर रही थी। चार बेटे और चार बहुएँ होने पर भी मंदिर के कोने में कमरा बनाकर रहती है। मंदिर में साहू

घायल होकर पानी माँगने लगते हैं तो मोतिया देखती रह जाती है। निम्न जाति की होने के कारण वह साहू को पानी नहीं दे पाती। इस कहानी में जाति-भेद मुख्य रूप से दिखाई देता है।

समाज में निम्न जातियों के लोगों को मंदिर में प्रवेश करना एवं मंदिर के पोखरे में नहाना मना है। इसका चित्रण करते हुए गुप्तजी कदम के नीचे कहानी में मोतिया की माई के द्वारा कहते हैं-"पोखरे के जनाने घाट पर नहाने का उसे अधिकार न था। मेहतरों, दुसाधों, चमारों आदि नीच जातिवालों को बँधे पक्के घाटों पर नहाने की मना ही थी। सो बेचारे इधर-उधर कच्चे घाटों पर नहाते, जहाँ ठेहुन भर कीचड़ बारहों महीने बजबजाता रहता था"3।

पारिवारिक जीवन

गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में समाज के विभिन्न स्तर के लोगों के पारिवारिक जीवन का चित्रण किया है। परिवार मानव समुदाय की आधारभूत इकाई है। व्यक्ति की अस्तित्व की रक्षा और उसके विकास के समस्त सोपान परिवार से ही प्रारंभ होता है। प्राचीन काल में भारतीय परिवार संपन्न और समृद्ध थे। वहाँ सुख और शांति मिलती थी। वर्तमान भारतीय समाज में दो प्रकार के परिवार देख सकते हैं। संयुक्त परिवार और एकाकी परिवार। गुप्तजी के कथा-साहित्य में भी इसका चित्रण है।

संयुक्त परिवार

पुराने ज़माने में हमारा समाज संयुक्त परिवारों को ही महत्व देता था। संयुक्त परिवारों में माता-पिता, पुत्र, पुत्र-बन्धु, पुत्री-दामाद उनके बच्चे सब एक साथ रहते थे। इसका एक नायक भी होता था। लेकिन आधुनिक समाज में लोग संयुक्त परिवारों को प्रोत्साहन न देते हुए एकांकी परिवार के इच्छुक बन गये हैं। फिर भी कहीं-कहीं आज भी भारत में संयुक्त परिवार को देख सकते हैं। गुप्तजी ने भी अपने कथा-साहित्य में संयुक्त परिवार का चित्रण किया है।

गंगा मैया उपन्यास में गुप्तजी ने गोपी और मानिक के परिवार के माध्यम से संयुक्त परिवार का चित्रण इस प्रकार किया है-"भाई-भाई का प्रेम, बहन-बहन का प्रेम, देवर-भाभी का प्रेम, पुत्र, माता-पिता, बन्धुओं का प्रेम,

ऐसा लगता था जैसे चौबीसों घण्टे उस घर में अमृत की वर्षा होती है। छक-छककर, नहा-नहाकर घर का प्रत्येक प्राणी आनंद विभोर है, कोई दुख नहीं, कोई अभाव नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई शंका नहीं"4। इस प्रकार संयुक्त परिवार का चित्रण गुप्तजी के बिगड़े हुए दिमाग, यही ज़िन्दगी है आदि कहानियों में भी दर्शनीय हैं। "कुटुम्ब में धीरेन का पिता और माता को छोड़ सब लड़के, लड़कियाँ और बहुएँ बतकी को प्यार से फुआ ही कहकर पुकारती थी"5। कुमार के परिवार के बारे में गुप्तजी कहते हैं-"वह अपनी विधवा माँ, छोटे भाइयों और उनकी बहुओं का इतना ख्याल रखता कि वे सभी उसका बहुत अधिक सम्मान करते। कोठी के शान्तिपूर्ण वातावरण में वह कभी भी कोई खलल न पड़ने देता"6।

संयुक्त परिवारों में दो-तीन पीढ़ियों के लोग आपस में मिल-जुलकर रहने के कारण घर में सदा हल-चल मची रहती हैं। किसी में कोई अहंकार की भावना नहीं थी। पुरुष काम की तलाश में बाहर जाते हैं तो औरतें घर के कामों को आपस में बिना राग-द्वेष के बाँट लेती थीं। इसका उल्लेख गुप्तजी के भाग्य देवता उपन्यास में परिलक्षित है-"चाचाजी का घर बहुत ही मामूली खपरैलों का था। उसी के एक कमरे में बाबूजी, माँजी और चार भाई रहते थे। माँजी और चाचीजीमिलजुलकर रसोई में खाना बनाती थी और दोनों परिवारों के लोग एक ही साथ खाते थे"7।

संयुक्त परिवारों का विघटन

आधुनिक भारतीय समाज के लोग अधिकतर संयुक्त परिवार को चाहता नहीं है। पुराने ज़माने में जिन्होंने संयुक्त परिवारों को चाहा था वे लोग आज एकाकी परिवार को चाहते हैं। समाज में संयुक्त परिवारों के विघटन के अनेक कारण होते हैं। औद्योगीकरण के पश्चात् ही इस प्रकार के परिवारों का नाश हुआ,और संयुक्त परिवार के स्थान पर आज एकाकी परिवार ने अपना स्थान जमा कर लिया। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में संयुक्त परिवारों के विघटन का चित्रण किया है, साथ-साथ इसका कई कारण भी बताया है।

संयुक्त परिवारों में जब शिक्षित नारियाँ बहुरिया बनकर आती हैं, तब वे अपने अलग व्यक्तित्व बनाए रखने की कोशिश लगातार करती रहती है, क्योंकि संयुक्त परिवारों में शिक्षित नारियाँ कम होती हैं। इस कारण से परिवारों के अन्य सदस्यों को उपेक्षित दृष्टि से देखकर अपने पति एवं बाल-बच्चों को सही रंग-ढंग से परवरिश करने की इच्छा रखती है। गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास में महशर एक पढ़ी-लिखी बहु है। महशर के बारे में गप्तजी कहते हैं-"घर में मशहर मालकिन हो गयी थी और सभी उसकी बदमिज़ाज़ी के शिकार थे। वह अपने और अपने बच्चों के लिए अलग अच्छा खाना बनाती, दूध-घी का इन्तज़ाम रखती और मन्ने की बहनों और उनके बच्चों को घर की खेती से पैदा हुए मोटे अनाजों पर छोड़ देती। वह कहती-घर की मालकिन मैं हूँ, जैसे मैं चाहूँगी घर चलेगा। जिसको रहना हो रहे, जिसको जाना हो जाय! मेरी भला से"8।

"संयुक्त परिवारों में अनेक दोष हैं। शिक्षा के प्रसार व अन्य समाजों के संपर्क से लोगों को कर्मकाण्डों और परंपरात्मक मूल्यों के खोखलेपन का आभास हुआ है। नवीन आर्थिक दशाओं ने भी परंपरागत समाज व्यवस्था में परिवर्तनों को प्रेरित किया है। इन सबके परिणाम स्वरूप आज संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं। स्त्रियों में शिक्षा व आत्म-निर्भरता की भावना के विकास ने संयुक्त परिवारों को और धक्का पहुँचाया है। पढी-लिखी स्त्रियों की सदा यह प्रयत्न होता है कि वे संयुक्त परिवारों से पृथक अपने एकांकी परिवार बसायें जिसमें न तो कोई उनका हिसाब देखनेवाला हो और ऩ तो कोई उनपर शासन करनेवाला"9।

एकाकी परिवार

"एकाकी परिवार से अभिप्राय ऐसे गृहस्थ समूह से हैं जिसमें पति-पत्नी और बच्चों रहित अथवा अविवाहित बच्चों सहित रहते हैं। इस प्रकार के परिवरों में पति या पत्नी से संबन्धित अन्य रिश्तेदार निवास नहीं करते"10। गुप्तजी ने अपने जीवन के अधिकांश समय संयुक्त परिवार में रहने के कारण उनके कथा-साहित्य में मुख्यत: संयुक्त परिवार का ही चित्रण किया है। फिर

भी उनकी कुछ रचनाओं में एकाकी परिवार का चित्रण भी देख सकते हैं। ज्योतिष कहानी में ज्योतिषी के एकाकी परिवार का चित्रण इस प्रकार है- "उसके घर में दो ही और प्राणी थे, एक उसकी पत्नी और दूसरी उसकी सयानी लड़की"11। उसी प्रकार चरम बिन्दु कहानी में रामधन का परिवार भी एकाकी परिवार है-"माँ-बाप के इकलौते बेटे रामधन एक जोड़ी बढ़िया बैलों का अरमान लेकर ही जवान हुए थे"12।

पारिवारिक रिश्ते

वर्तमान समाज में संयुक्त परिवारों के टूटने से पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई, बहन-बहन, देवर-भाभी, सास-बहु आदि के संबन्धों में विघटन हो रहा है। संयुक्त परिवारों के लिए यह समस्या बहुत ही बड़ी बाधा बनती जा रही है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में भारतीय परिवारों के सदस्यों के बीच के संबन्धों का चित्रण बहुत ही तन्मयता के साथ चित्रित किया है।

पति-पत्नी के संबन्ध

पति-पत्नी के संबन्ध पारिवारिक जीवन की आधारशिला है। परिवार में दोनों का स्थान बुलंद पहिए की तरह है। इनके सहयोग और आपसी प्रेम भाव से परिवार की उन्नति होती है। इनके बनने और बिगड़ने पर परिवार का यश-अपयश, सुख-दुःख, उन्नति-अवनति अवलंबित रहती है। दोनों जब अपना सर्वस्व एक दूसरे के लिए समर्पित करते हैं, तब परिवार सुखी एवं समृद्ध बनता है। दोनों को एक-दूसरे पर विश्वास और समझदारी होनी चाहिए। परिवार को समृद्ध और संपन्न बनाने के लिए कोशिश करनी चाहिए।

प्राचीन काल में पति-पत्नी का संबन्ध पवित्र एवं सुदृढ़ होता था। पति पत्नी को सम्मान देता था और पत्नी पति को परमेश्वर के समान पूजती थी। इसलिए परिवार में हमेशा खुशी का माहौल था। गुप्तजी के अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में मास्टरजी और मास्टराईन के माध्यम से आदर्श पति-पत्नी का चित्रण किया गया है। उपन्यास में मास्टराईन कहती है-"मेरी माताजी रात में बारह-बारह बजे तक भोजन के लिए पिताजी की प्रतीक्षा करती थी, जब पिताजी आ जाते तो उनके हाथ पाँव धुलवाकर, उनके लिए पीढ़ी रखती।

पिताजी पीढ़ी पर बैठ जाते तो, माताजी थाली में भोजन परोसकर उनके सामने रखती"13।

परिवार में पति-पत्नी का अपना-अपना एक विशेष स्थान होता है। जहाँ पति परिवार के संचालन के लिए अर्थ की तलाश करता है, तो पत्नी वही तकलीफ़ संचित अर्थ के आधार पर परिवार की गतिविधियों को सुचारू रूप में निर्वाह करती है। पति-पत्नी का पारिवारिक संचालन में कभी-कभी क्षेत्र परिवर्तन होने से परिवार की गति में स्वभावतः रुकावट उत्पन्न हो जाती है। गृहणी ही जानती है कि परिवार के दैनिक जीवन के कार्यक्रम क्या-क्या होते हैं, उसे किस तरह सफलता से पूर्ण कर सकते हैं। यदि पत्नी का काम जैसे रसोई संभालने का काम पति को करना पड़े तो वह परिवार दो-चार दिनों में अस्त-व्यस्त स्थिति पर पहुँच जाएगा। इस बात को व्यक्त करते हुए गुप्तजी के नौजवान उपन्यास में भरत के माताजी पिताजी से कहती है-"मैं एक पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, ना समझ और गंवार हूँ, यही सही है। मैं लक्चर नहीं दे सकती, पर पंचायत नहीं कर सकती, उपदेश नहीं दे सकती, यह भी सही है। लेकिन दो दिन के लिए मैं कहीं चली जाऊँ तब देखिए कि आप यह घर कैसे चलाते हैं"14।

पति-पत्नी के बीच का संबन्ध एक दिन में खत्म होनेवाला संबन्ध नहीं है, बल्कि यह जन्म-जन्मांतर का संबन्ध है। इस संबन्ध में छोटी-छोटी बातों को लेकर समस्याएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इन समस्याओं को यथोचित आपस में समझदारी से सुलझाना चाहिए। अगर पति-पत्नी के संबन्ध में समझदारी है तो उनका पारिवारिक जीवन संतोषपूर्ण होगा। इसका उल्लेख गुप्तजी ने अपने सती मैया का चौरा उपन्यास में मन्ने और महशर के दाम्पत्य जीवन के माध्यम से चित्रण किया है। उपन्यास में मन्ने अपनी पत्नी से कहता है-"और सच पूछो तो मुहब्बत नाम ही समझदारी का है, एक दूसरे के जज़्बों की समझ के बिना मुहब्बत खुद एक तकलीफ देह चीज़ साबित हो सकती है"15। गुप्तजी के नौजवान उपन्यास में भी इस प्रकार का एक संदर्भ देखने को मिलता है। उपन्यास में भरत अपने माता-पिता के संबन्धके बारे में कहता है-"इस तरह

पिताजी और माताजी का अपना-अपना जीने का अलग-अलग ढंग था। ऊपर से लगता था कि उनके बीच कहीं भी कोई सामंजस्य नहीं था। मुझे लगता था कि इन्हें एक दूसरे की बड़ी ही गहरी समझ है और उनके बीच जो आपसी संबन्ध बना हुआ है, उसका आधार उनकी यह समझी ही है”16।

पति-पत्नी के संबन्ध में गलतियाँ होना स्वाभाविक है, अगर गलतियाँ हो गई तो उसपर हठ करने के वजाय एक दूसरे से माँफ़ी माँगने के लिए तैयार होना चाहिए। एक दूसरे से माँफ़ी माँगने से समस्याएँ खत्म होना चाहिए। सती मैया का चौरा उपन्यास में मन्ने और महशर के बीच झगड़ा होते हैं। झगड़े के कारण समझकर मन्ने पत्नी से अपनी गलती का माँफ़ी माँगने के लिए तैयार हो जाता है। मन्ने पत्नी से कहता है-“मुझे माफ कर दो महशर! यह मेरी गलती है। मैं माफी के काबिल हूँ। यकीन मानो मुझे बेहद अफसोस है”17।

बच्चे ईश्वर का वरदान हैं। पति-पत्नी के जीवन में बच्चों का महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चों के जन्म से पति-पत्नी का संबन्ध और भी सुदृढ़ होता है। पति-पत्नी के व्यवहार बच्चों के जीवन में असर पड़ती हैं। कभी-कभी अपने बच्चों के सामने पति-पत्नी झगड़ा करने तक तैयार हो जाते हैं। सती मैया का चौरा उपन्यास में मन्ने और महशर के झगड़े देखकर उनकी बच्ची शम्मू रोती है। झगड़े में जोश आकर मन्नेशम्मू का गला घोंटने तक आ जाता है। बाद में अपने इस बात पर पश्चाताप होकर वह अपनी बेटी से कहता है-“माफ कर मेरी बच्ची! तेरा बाप पागल हो गया था, अन्धा हो गया था! अब उसे होश आ गया है, उसकी आँखें खुल गयी हैं। अब वह तुझे कभी न भूलेगा, तुझे बहुत प्यार करेगा”18।

आधुनिक भारतीय समाज में पारिवारिक जीवन जटिल हो गया है और पति-पत्नी के बीच का रिश्ता टूट गया है। इसके कई कारण होते हैं। आज उनके संबन्धों में स्नेह, विश्वास और समर्पण की भावना बहुत ही कम रही है। वे एक दूसरे से दूर जा रहे हैं, इसलिए पति-पत्नी के पवित्र रिश्ते में दरारें पड़ने लगी हैं। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में पति-पत्नी के रिश्ते में विघटन का चित्रण किया है।

दाम्पत्य जीवन में परस्पर स्नेह और विश्वास का महत्वपूर्ण स्थान है। अगर इस स्नेह और विश्वास में कमी आ गये, तो दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ने की संभावना बहुत अधिक है। जब पति-पत्नी के बीच सन्देह आरंभ होता है, तब वे एक-दूसरे से धीरे-धीरे अलग होने लगते हैं। उनके बीच की आत्मीयता, सहनशीलता, समझौता आदि सभी को सन्देह रूपी चिनगारी जलाकर भस्म कर देती है। अन्तिम अध्याय उपन्यास में शकुंतला के मामा और मामी के माध्यम से गुप्तजी यह साबित करते हैं। मामा और मामी निसन्तान हैं, इसलिए पितृ-मातृ विहीन शकुंतला मामा के यहाँ रहती है। शकुंतला बड़ी होने से मामा के प्रति मामी के मन में शंका उत्पन्न होती है। अपनी शंका स्पष्ट करती हूई मामी अपने पति से कहती है-"मैं वहाँ से हटकर अपने कमरे की ओर जाने लगी तो पीछे से मामीजी की गरज सुनायी पड़ी, इतने भोले मत बनो। अब इस छोकरी को ही लेकर तुम रहो, मैं कल अपनी मायके चली जाऊँगी"19।

कभी-कभी पति-पत्नी के भाई, बहन या कोई अन्य रिश्तेदार के आगमन से उनके दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ने लगती हैं। सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजी ने पति-पत्नी के संबन्ध में तीसरे के आगमन से उत्पन्न समस्या का चित्रण किया है। उपन्यास में महशर की बहन आयशा के आने में मन्ने और मशहर के दाम्पत्य जीवन में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। महशर मन्ने से कहती है-"जिस तरह तुमने मेरा कलेजा भूना है, उसी तरह तुम्हारा भी न भूना तो बन्दी का नाम महशर नहीं। अब यह आग सारी ज़िन्दगी बुझने की नहीं । इसी में जलकर मुझे राख होना है और इसी में जलाकर तुम्हें भी राख बनाना है"20।

अगर एक बार पति-पत्नी के रिश्ते में दरार पड़ गयी, तो उसे जोड़ना बहुत मुश्किल है। दरार से उनके मन में अपने पति या पत्नी के प्रति क्रोध की भावना जन्म लेती हैं। वे आपस में मिलना तो दूर, हाथ में मिले तो मार डालने का विचार से चिंतित रहते हैं। इस प्रकार के एक संदर्भ गुप्तजी के एक जीनियस की प्रेम कथा उपन्यास में परिलक्षित है। उपन्यास में पति-पत्नी के रिश्ते में आये दरार के कारण कुसुम अपने पति राजेश को खून करती है। पति को मारने

के बाद आक्रोश में कुसुम कहती है-“आज क्यों नहीं बोल रहे पति देव? तो क्या आपकी खामोशी को मैं आपका इकरार समझूँ? लेकिन आज खुले आम भी इकरार कर लें तो आप को कौन सज़ा दे सकता है? क्या आपके दोस्त आप को सज़ा दे सकते हैं? क्या कोई वकील आपको सज़ा दे सकता है? क्या कोई कचहरी आप को सज़ा दे सकती है? नहीं। क्योंकि आप उनके नहीं एक लड़की के मुजरिम है। जिसकी ओर लड़नेवाला कोई नहीं है। मैं समझ लिया था पति देव, अच्छी तरह समझ लिया था और इसलिए रमन भैया का घर छोड़ते समय ही मैं ने तय कर लिया था कि और कोई न दे मैं अपने मुजरिम को अपने हाथों से सजा दूँगी”21।

माता-पिता एवं संतान

पारिवारिक जीवन में माता-पिता एवं संतानों के बीच के रिश्ते का महत्वपूर्ण भूमिका है। परिवार में एकता तथा शांति स्थापित करने का उत्तरदायित्व इनके हाथों में निहित है। परिवार में बच्चों के आगमन से, उनके प्रति माता-पिता अपने मन में प्रतीक्षाएँ बुनने में तैयार लगते हैं। अपने बच्चों के लिए उचित भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि देने के लिए वे कठिन परिश्रम करते हैं। माता-पिता प्रतीक्षा करती है कि अपने बच्चे बड़े होकर परिवार, समाज और देश के लिए सेवा करेगा, वार्धक्य में उनको संरक्षण करेगा।

प्राचीन काल में माता-पिता एवं संतानों का संबन्ध पवित्र होते थे, लेकिन आधुनिक काल में इन तीनों के बीच ईर्ष्या भाव, आत्म-सम्मान, जिद्दी स्वभाव, महत्वाकांक्षा और पारिवारिक कलहों के कारण तनाव निर्माण हो रहे हैं। इससे उनके रिश्तों में दिन-प्रति-दिन विघटन हो रहा है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में माता-पिता एवं संतानों के बीच के रिश्ते का चित्रण किया है।

परिवारों में माता-पिता अपने संतानों के जन्म से ही उसके भविष्य की चिन्ता करके उसके भविष्य निर्माण के लिए सतर प्रयत्नशील रहते हैं। अपने बेटे के प्रति सपना देखनेवाला पिता का चित्रण गुप्तजी के मौत का नशा कहानी में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-“बेटा बड़ा होगा, पढेगा-लिखेगा, कोई अच्छी नौकरी करेगा, बुढ़ौती का सहारा बनेगा”22। भारतीय परिवारों में संतान अपने

माता- पिता की आशाओं का पालन एवं सेवा शुश्रूषा करना परम कर्तव्य समझते हैं। गुप्तजी ने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास के मास्टराईन द्वारा भारतीय समाज के आदर्श बेटी का चित्रण महत्वपूर्ण ढंग से किया है। उपन्यास में मास्टराईन अपने माता-पिता के बारे में अपना विचार इस प्रकार प्रकट करती हैं-"मैं उन्हें एक माता-पिता के रूप में ही देख सकती थी, एक नारी-पुरुष के रूप में नहीं। उन्होंने मुझे जन्म दिया था, मेरा पालन पोषण किया था, इसलिए सर्वाधिक सम्मान तथा प्रेम के पात्र थे। उनके सिवा मैं किसी दूसरे के बारे में सोच नहीं सकती थी। उनकी आशाओं का पालन करना तथा उनकी सेवा-शुश्रूषा करना मैं अपना कर्तव्य समझती थी और सदा यह बात ध्यान में रखती थी कि मुझसे ऐसा कुछ न हो जाये, जो उन्हें बुरा लगे अथवा जिससे रंच-मात्र भी कष्ट हो "23। इसी उपन्यास में मास्टराइन अपने पति से कहती है "मैं जो कुछ भी माताजी को ही लेकर थी और माताजी कुछ थी पिताजी को और मुझे लेकर ही थी"24 ।

भारतीय परिवारों में पिता-पुत्र रिश्ते का महत्वपूर्ण स्थान है। पुत्रों का महत्व इस कारण से अधिक होता है, क्योंकि आवश्यकता पितरों के तर्पण, पिंडदान तथा दाह-संस्कार के लिए होती है। पिता सोचते हैं कि पुत्र होने पर परिवार का वंश चलता है। इसलिए हर पिता अपने पुत्र को अच्छी तरह की सुविधा देकर उन्नत बनाना चाहते हैं। इस प्रकार का संदर्भ गुप्तजी के नौजवान उपन्यास में देखने को मिलता है। अच्छी तरह परीक्षा देकर घर वापस आये पुत्र भरत के पीठ ठोंकते हुए पिता माता से कहते हैं-"लड़का प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाएगा तो इसका जीवन बन जाएगा। आदमी को अपना जीवन बनाने के लिए कुछ भी उठा न रखना चाहिए। कोई भी सुअवसर खो देने से फिर प्राप्त नहीं होता। लड़के ने जान लगाकर पढ़ाई की और पर्चे भी खूब अच्छे किये, जिससे बढ़कर हमारे लिए खुशी की क्या बात हो सकती है"25। इस प्रकार पिता-पुत्र रिश्ते के एक सुन्दर चित्रण गुप्तजी के गंगा मैया उपन्यास में प्राप्त है। उपन्यास में बड़ा पुत्र मानिक के हथियारे की खून कर जेल गये छोटे पुत्र गोपी को जेल आकर मिले पिता का चित्रण और दोनों के बीच का वार्तालाप भारतीय

पारिवारिक व्यवस्था में पवित्र पिता-पुत्र रिश्ते का सुन्दर अभिव्यक्ति है। “मिलते वक्त दोनों ने अपने दिल-दिमाग पर पूरा-पूरा काबू रखने की कोशिश की थी। किसी प्रकार की दुर्बलता या तड़पन दिखाकर वे एक-दूसरे का दुख बढ़ाना न चाहते थे। बाप ने बेटे का ढ़ाढ़स बँधाया। बेटे ने बाप को कोई चिन्ता न करने को कहा”26।

परिवारों में माँ-बेटी के रिश्ते का प्रमुख स्थान है। बेटियों को जीवन का मूल्य एवं व्यवहार पर शिक्षा देने का पहला दायित्व माँ पर निर्भर है। माँ अपनी बेटी को ससुराल भेजने के लिए घर का सब काम सिखाकर बचपन से ही तैयार करती है। अत: एक लड़की के जीवन में शिक्षा देनेवाली पहली गुरु माँ ही है। गुप्तजी ने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में माँ-बेटी के पवित्र रिश्ते का सुन्दर उदाहरण दिया है। उपन्यास में मास्टराईन ने अपनी माँ की याद करती हुई पति से कहती हैं-“माताजी ने ही मुझे सिखाया था कि पिताजी जब जाने लगे तो तुम उनके पाँव ज़रूर छूना और कहना जल्दी आएँ.......घर की सफाई मैं करती, माताजी के कपड़े मैं साफ करती, रसोई के बहुत सारे काम मैं करती, अपने और माताजी के कपड़ों की सिलाई और मरम्मत मैं करती और भी जो काम माताजी करने को कहती मैं करती”27। इस प्रकार भारतीय परिवारों में माता-पिता एवं संतानों के रिश्ते पवित्र होते थे।

माता-पिता एवं संतानों के रिश्तों में विघटन

वर्तमान भारतीय समाज में आधुनिक काल के परिवर्तन के फलस्वरूप माता-पिता एवं संतानों के रिश्ते में परिवर्तन आने लगे हैं। परिवारों में इनके बीच समस्याएँ उत्पन्न होने लगी हैं। इस पारिवारिक विघटन के पीछे अनेक कारण देख सकते हैं। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में माता-पिता एवं संतानों के रिश्ते का विघटन का चित्रण किया है।

परिवारों में आजकल युवा पीढ़ी, लड़के या लड़की, मौज-मस्ती करके अपने माता-पिता द्वारा कमाई गयी धन का दुरुपयोग करते हुए वास्तविक जीवन को पहचानने में असमर्थ है। इसके कारण माता-पिता एवं संतानों के बीच लड़ाई-झगड़े की समस्या आज के परिवारों में देखने को मिलता है। गुप्तजी

ने सती मैया का चौरा उपन्यास में माता-पिता एवं संतानों के रिश्ते में आये परिवर्तन का चित्रण इस प्रकार किया है-“शादी के आठ-दस दिन बाद मालुम हुआ कि बाप-बेटे में लड़ाई हो गयी है। बाप ने बेटे से कह दिया कि वह अपना अलग इन्तज़ाम कर ले। एक दिन सुना गया कि समरनाथ ने अपने बाप को कई डंडे मारे हैं। लोगों ने बीच में पड़कर उसे हटाया न होता तो शायद वह अपने बाप की जान लेकर ही छोड़ता”28। इस प्रकार का संदर्भ गुप्तजी ने क्यों आँख भर आयी हैं कहानी में प्रस्तुत किया है। कहानी के वकील साहब और बेटे के माध्यम से इसका चित्रण किया है। रमेश अपने माँ-बाप के इच्छा के विरुद्ध शादि करना चाहता है। तब वकील साहब अपने बेटे से कहता है-“मेरे जिन्दा रहते ही तू अपनी मर्जी चलाना चाहता है? क्या मतलब तेरा?”29। पिता के यह वचन सुनकर रमेश अपने बाप से कहता है-“मैं लड़का अब नहीं हूँ। डबल एम.ए हूँ। कमाता हूँ। अपने मन-माफिक ही मैं शादी करूँगा। बेहत्तर है कि आप इस मामले में मेरे बीच में न पड़े”30।

गुप्तजी के भाग्य देवता उपन्यास में बेटा अपने पिता की बात इनकार करने से पिता माता से कहते हैं-“तो तुम उससे कह देना कि मैं जो भी खाता पीता हूँ, अपनी कमाई का खाता पीता हूँ और वह भी जो साहब बना फिरता है, मेरी कमाई की ही बदौलत! मैं अभी चाहूँ तो उसे रास्ते का भिखारी बना सकता हूँ”31। इसी प्रकार अपने बेटे से तंग हुए पिता का चित्रण मौत का नशा कहानी में दिखाई पड़ती है। गुप्तजी ने कहानी में पिता-पुत्र रिश्ते में आये परिवर्तन का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है-“तुम बका करते थे कि मैं उसे दिखा दूँगा, दुनिया को दिखा दूँगा, कि मुझमें अब भी ताकत है, मैं अपाहिज नहीं हूँ, मैं किसी के टुकड़ों पर चलनेवाला जीव नहीं हूँ”32। इसी कहानी में अपने हाथ से छूटे गये बेटे का विचार करने वाला एक पिता का चित्रण गुप्तजी ने इस प्रकार किया है-“पिता ने जब देखा कि उनकी बात का मूल्य पुत्र के लिए कुछ रह ही नहीं गया, तो वह भी चुप हो गये। सोच लिया, लड़का बिगड़ गया”33।

माता पिता की सेवा करना संतानों का कर्तव्य है। संतानों को जन्म दिये माता-पिता को भूलकर वे कुछ भी करें उसमें उनको उन्नति नहीं मिलेगी। भारत के सभी धर्म-ग्रन्थों में माता-पिता की सेवा करना तथा आदर करने का बात कहा गया है। गुप्तजी भी यह कर्तव्य अपने कथा-साहित्य में किया है- "सदानन्द, कष्ट के समय माता-पिता की सहायता करना तुम्हारा कर्तव्य है"34।

भाई-भाई के रिश्ते

परिवार में भाई-भाई के रिश्ते पवित्र होते हैं। उनके एक दूसरे के प्रति प्रेम, सद्भाव, संगठन, सामंजस्य और सहयोग से परिवार संपन्न बनता है। वे आपस में किसी काम के लिए जीवन देने तक तैयार रहते हैं। किन्तु आधुनिक काल के सामाजिक जीवन में ज़मीन-जायदाद, स्वार्थ, द्वेष भावना, ईर्ष्या और महत्वाकांक्षा के कारण उनके रिश्तों में धीरे-धीरे दरारें पड़ने लगी हैं। वे एक दूसरे के दुश्मन बन रहे हैं। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में भाई-भाई के रिश्ते का यथार्थ चित्रण किया है। गंगा मैया उपन्यास में गोपी के कथन के द्वारा गुप्तजी यह स्थापित किया है कि भाई-भाई का प्रेम पवित्र है। उपन्यास में गोपी कहता है-"मेरे रहते भैया को कुश्ती में नहीं उतरना पड़ेगा। बाबुजी और भैया की शुभकामना और आशीर्वाद का बल पाने का हक मुझे ही तो भगवान की ओर से मिला है"35। इस प्रकार छोटी सी शुरुआत उपन्यास में अपने छोटे भाई सरल को काम दिलाने के लिए कठिन काम करके पैसा कमाकर घूस देने के लिए तैयार हुए बडे भाई का चित्रण भी भाई-भाई के रिश्ते का सुन्दर उदाहरण है।

बहन-बहन के रिश्ते

हिन्दी कथा-साहित्य में बहुत ही कम लेखकों ने ही बहन-बहन रिश्ते का चित्रण किया है। लेकिन गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में बहन-बहन के बीच के पवित्र रिश्ते का चित्रण किया है। भारतीय परिवारों में बहन-बहन के रिश्ते पवित्र और श्रेष्ठ मानते हैं। अगर परिवार में माँ नहीं तो बड़ी बहन छोटी बहन के लिए माँ बन जाती है। किन्तु आधुनिक काल में शिक्षा, नौकरी आदि

के कारण इनके संबन्धों में भी दरारें पड़ने लगी हैं। गंगा मैया उपन्यास में गुप्तजी ने बहन-बहन के रिश्ते का चित्रण इस प्रकार किया है-“छोटी बहन की तो वह माँ ही बन गयी। पहले वह उसे बहन की तरह प्यार करती थी, लेकिन अब उसे बहन के प्यार के साथ-साथ माँ के स्नेह, ममता, सेवा और प्यार की भी ज़रूरत थी। बड़ी बहन ने उसे वह सब कुछ देना शुरु कर दिया। वह उसे बच्चों की तरह गोद में बिठाकर दवा पिलाती, खिलाती, उसके कपड़े बदलती, उसके बाल संवारती, चोटी गूँथती”36।

देवर-भाभी के रिश्ते

भारतीय संयुक्त परिवारों में माता-पुत्र के रिश्ते के समान देवर-भाभी के रिश्ते पवित्र माने जाते हैं। बडे देवर को पिता या भाई की तरह पूजनीय माना जाता है, तो बड़ी भाभी को माँ की तरह सम्मान दिया जाता है। परिवार में देवर-भाभी के रिश्ते बहुत ही पवित्र, ममतापूर्ण और आदर्श माने जाते हैं। इतिहास और ग्रन्थों में इनके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इनके रिश्तों की महत्ता को प्रमाणित कर भारतीय संस्कृति के महत्व को प्रतिपादित भी किया गया है। गुप्तजी के छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरल को तलाशकर घर आए पुलिस को देखकर रोती हुई भाभियों का चित्रण देवर-भाभी के पवित्र रिश्ते का उदाहरण है-“भाई और दोनों भाभियों की आँखों से झर-झर आँसु गिर रहे थे। उनके मूंह से कोई बात न निकल रही थी। सरल ने भीगी आवाज़ में कहा-तुम लोग परेशान मत होओ। मैं ने जो बातें बड़े भैया को बतायी हैं, तुम लोगों ने सुनी है न। दारोगा साहब मुझे पकड़ने नहीं आये हैं। दो-तीन दिन में यह पुलिस वाला यहाँ से चला जाएगा”37। इसी उपन्यास सरल काम की तलाश में सदर जाने वक्त “झुककर बड़ी भाभी के पाँव छुए और फिर हमेशा की तरह मंझली भाभी के पांव छूने के लिए झुका, तो मंझली भाभी ने भी हमेशा की तरह नहीं-नहीं मेरे राजकुमार कहते हुए उसके दोनों बाजू पकड़कर, उसे अंक में समेटकर उसका माथा चूम लिया”38।

वर्तमान परिवर्तित भारतीय समाज में देवर-भाभी के रिश्ते में परिवर्तन हो रहा है। स्वार्थ, द्वेष भावना, आधुनिक चकाचौंध तथा यौन संबन्धों के कारण

देवर-भाभी के रिश्ते टूटने लगा है। गुप्तजी के गंगा मैया उपन्यास के गोपी और भाभी, मशाल उपन्यास के नरेन और सकीना, छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरल और उसके बड़ी एवं मँझले भाभी, एक अच्छा काम कहानी में रामकृष्ण और भाभी आदि देवर-भाभी के रिश्ते का उदाहरण हैं।

सास-बहू के रिश्ते

भारतीय परिवारों में सास-बहू के संबन्ध माँ-बेटी के संबन्ध की भाँति पवित्र होती हैं। उनके सहयोग और योगदान से परिवार में शांति रहती है, परिवार आदर्श बनता है। लेकिन अहंभावना, दुष्ट स्वभाव, झूठी प्रतिष्ठा, आत्म-सम्मान आदि से संबन्ध बिगड़ते हैं। कभी सास बहू पर अत्याचार करती है, तो कभी बहू सास पर। इससे सास-बहू के रिश्ते में दरारें पड़ने लगी हैं। सास-बहू के रिश्ते एवं उनके संबन्धों में आये विघटन गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में चित्रण किया है।

परिवार में अच्छी एवं संस्कारवाली लड़की को बहुरिया के रूप में मिलने के लिए मन में प्रर्थना और मंदिर में पूजा चढ़ाने तक सास तैयार रहती है। अगर अच्छी बहू मिल गयी, तो सास अपनी खुशी दूसरों के सामने बाँट लेती है। गुप्तजी के गंगा मैया उपन्यास में अच्छी बहुरिया मिलते ही सास अपनी खुशी प्रकट करती है-“कौन जाने, बहू कैसे आयेगी? तू तो पिछले जनम की मेरी बेटी थी। न जाने कितना गंगा नहाकर इस जनम में तुझे बहू के रूप में पाया” 39। इस प्रकार इसी उपन्यास में सास-बहू के पवित्र रिश्ते के साथ-साथ उनके रिश्ते के विघटन का चित्रण भी गुप्तजी ने दिखाया है। उपन्यास में सास गरजती है-“कलमूँही! तुझे शर्म न आयी देवर पर ड़ोराड़ालते। मैं तो समझती थी कि सावित्री-सी सती है बहू। क्या-क्या पाखंड़ रचे थे, पूजा-पाठ, ध्यान-भक्ति, सेवा शुश्रुषा! मुझे क्या मालुम था कि इस पाखंड़ की आड़ में तू मेरी नाक काटने की तैयारी कर रही है। चुड़ैल! तुझे लाज न आयी यह सब पाप करते यही सब करना था तो तू क्यों न निकल गयी किसी पापी के साथ? तू काला मूँह करती, मेरा बेटा बच जाता तेरे जाल से! कितने ही आये रिश्ते लेकर और लौट गये। हम कहें क्या बात है कि वह किसी के कान ही नहीं

देता। हमें क्या मालुम था कि भीतर-ही-भीतर तू बेरार्मी का नाटक रच रही है। कुशल है कि बूढ़ा अपंग हो गया है, नहीम तो तुझे आज बोटी-बोटी काट कर फेंक देता! तू चखती मज़ा अपनी करनी का! जा कहीं डूब मर कुल-बेरिन"40।

वर्तमान काल के भारतीय परिवारों में सास-बहू की समस्या भयंकर रूप धारण कर चुकी है। इसके कारण परिवरों से एकता और शांति नष्ट हुई है। आज परिवारों में आनेवाली अधिकतर बहुएँ पति के साथ, अपनी सास से अलग रहना चाहती हैं। परिवार में शांति कायम रखने के लिए लड़के मज़बूर होकर अपने माँ-बाप से अलग रहने का इन्तज़ाम करते हैं। गुप्तजी के मौत का नशा कहानी में इस प्रकार के एक संदर्भ दृष्टिगत है-"सास-बहू में झगड़ा हुआ। दूसरे दिन लड़के ने बताया कि हमने एक घर किराये पर ले लिया है। हम शाम को वहाँ चले जाएँगे। जब सास-बहू में पटती नहीं, तो एक साथ रहना ठीक नहीं है"41।

इस प्रकार भारतीय परिवारों में, सदस्यों के बीच के रिश्तों में आये परिवर्तन देश के पारिवारिक व्यवस्था के लिए बड़ी खतरानक स्थापित हो रही हैं। वास्तव में परिवार समाज की एक प्राथमिक और मौलिक इकाई है। मनुष्य का जन्म, विकास और सामाजीकरण परिवार से ही प्रारंभ होता है और उसी परिवार के प्रसार से ही संपूर्ण समाज का निर्माण संभव है। लेकिन, यहाँ एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आधुनिक समय में भारतीय परिवार की संरचना कार्यों व महत्व में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है।

विवाह

प्राचीन काल से ही भारत में विवाह-संस्कार का महत्व रहा है। लेकिन सभ्यता के विकास के साथ-साथ विवाह संबन्धी धारणाओं में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समाज में विवाह को लेकर दो व्यवस्थाएँ प्रचलित है। प्रथम परंपरागत व्यवस्था जिसमें अपने विशिष्ट मूल्य रहे हैं। उसमें विवाह का नियामत माता-पिता ही होते हैं। द्वितीय विवाह, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव की उपज है। यहाँ अभिभावक की मान्यता गौण है, लड़के-लड़कियों की स्वतंत्र इच्छा ही वैवाहिक चुनाव में सर्वोपरी मानी जाती है।

समाज में विवाह के विविध आदर्श रहे हैं। परंपरागत विवाह के मूल्यों में विवाह के आत्मिक संबन्ध, जन्म-जन्मान्तर का संबन्ध, पूर्व निश्चित संबन्ध, अटूट संबन्ध स्वीकार किया था। लेकिन अब के समाज में इस विवाह को लेकर कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसके कारण विवाह संस्था का महत्व कम हो रहा है और नारी पर अत्याचार हो रहे हैं। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में वैवाहिक जीवन के अनेक पक्षों पर प्रकाश डाला है। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, विवाह-पूर्व आकर्षण, विवाहोत्तर आकर्षण आदि वैवाहिक जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं पर गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में चित्रण किया है।

बाल-विवाह

भारतीय संस्कृति में विवाह एक पवित्र संस्कार है। लेकिन अज्ञान, अशिक्षा, धार्मिक अंधविश्वास, रूढियों एवं परंपराओं के कारण बाल-विवाह किए जाते हैं। बाल-विवाह एक अनिष्ट प्रथा है क्योंकि जिनका विवाह हो रहा है वे यह नहीं जानते कि पति-पत्नी क्या होते हैं? विवाह क्यों किया जाता है? वे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपरिपक्व रहते हैं। उनके भविष्य, भले-बुरे का विचार किए बिना उनके विवाह किए जाते हैं। बाल-विवाह से अनेक समस्याएँ निर्माण होती है। कभी-कभी पत्नी बदसूरत और अनपढ़ होने पर, दहेज कम मिलने पर अत्याचार किए जाते हैं। पति की मृत्यु से बालिका को विधवा का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अत: बाल-विवाह प्रथा पति-पत्नी और समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हुई है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में बाल-विवाह का चित्रण किया है। शोले उपन्यास में शोभी की दुर्गति के कारण बाल-विवाह ही है। बरन के दादा शोभी के बाप से पुत्री के बारे में पूछते समय उन्होंने कहा “जब पाँच वर्ष की ही वह थी, तभी उसकी मंगनी हो गयी थी। आज उसके ब्याह की लगन भी पड़ गयी है”42।

अनमेल विवाह

भारत में कहीं-कहीं अनमेल विवाह होता रहता है। दहेज देने में असमर्थ मध्यवर्गीय परिवार की लड़कियाँ इसका शिकार बनती हैं। अनाथ

बालिकाओं को भी कभी-कभी अपनी स्वामिनी के इच्छानुसार बूढ़े लोगों की पत्नी बनना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पति को अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद पत्नी की बहन से शादी करनी पड़ती है। हमारे परिवार में आज भी ऐसे विवाह होते रहते हैं। इसलिए गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में अनमेल विवाह की चर्चा की है। गुप्तजी के सेवाश्रम नामक उपन्यास में नायिका रंभा को अपनी सत्रह साल की उम्र में चालीस साल के सेठ सोनेलाल से शादी करनी पड़ती है। उसके वैवाहिक जीवन नरक-तुल्य बन जाती है। सोने लाल का गर्भ धारण करके भी वह उससे घृणा करती है। आग और आँसु उपन्यास में भी अनमेल विवाह का चित्रण है। उपन्यास में ठकुरानी पान कुंवारी भी इस अनमेल विवाह के अभिशाप को झेल रही है। वह ऐसी शोषित नारी है जो सामन्ती प्रतिष्ठा की रक्षा के कारण अनमेल विवाह का जुआ अपनी गर्दन में डालने को विवश हो जाती है और अपनी चिर-संचित अभिलाषाओं का खून करके अपनी प्रेमी का जीवन समाप्त करके एक जमींदार की ठकुरानी बनकर जीवन भर के लिए व्याधि को गले लगाती है। पान कुंवारी के ताल्लूकदार पिता ने अपनी आन की रक्षा कर ली, किन्तु इस अनमेल विवाह के कारण वह टूट चुकी थी। इस टूटन का अनुभव व्यक्त करते हुए बड़े सरकार अपनी पत्नी की लौंडी मुँदरी से कहता है-“सच कहता हूँ, जैसे ही मैं तेरी रानीजी की ओर हाथ बढ़ाता हूँ, जाने उन्हें क्या हो जाता है कि वह कांपने लगती है और दुसरे ही क्षण उनके दांत लग जाते हैं, बदन बर्फ की तरह ठण्डा हो जाता है....तू तो सब जानती ही है। मैं तो भर पाया”43।

प्रेम विवाह

प्रेम मानव की पवित्रतम भावना तथा सर्वोत्तम गुण है। वह एक अज्ञात, अस्पष्ट भावना के रूप में मानस में जन्म लेकर विवाह तक ले जाता है। पाश्चात्य देशों में आम तौर पर प्रेम विवाह का प्रचलन है। फलस्वरूप भारतीय समाज में भी उसका असर पड़ा है। सह-शिक्षा, नौकरी, टेलिविशन, इंटरनेट आदि के कारण भारतीय समाज में प्रेम विवाह दिन-प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में प्रेम एवं विवाह के स्वरूप का चित्रण किया

है। अपनी क्यों आँख भर आयी है कहानी में रमेश और रंजना के प्रेम को इस प्रकार व्यक्त किया है-"धीरे-धीरे उनके संबन्ध गाढ़े होते गये। वे एक दूसरे के लिए दिल में एक मीठी बेचैनी महसूस करने लगे। फिर इस बेचैनी को शान्त करने के लिए छिपे-छिपे पार्क, सिनेमा और सपाट के उनके प्रोग्राम बनने लगे"44। गुप्तजी ने अपने सेवाश्रम उपन्यास में प्रेम के स्वरूप को और भी स्पष्ट करने का प्रयास आनन्द के प्रेम के माध्यम से इस प्रकार किया है-"एक प्रेम वह होता है, जिसे शारीरिक प्रेम कहते हैं। शरीरों का मिलन ही उसका उद्देश्य होता है। मिलन न होने से वियोग की यातनाएँ झेलनी पड़ती है। वह प्रेम या तो मिलन के बाद समाप्त हो जाता है। एक दूसरा प्रेम होता है, जिसे आत्मिक प्रेम कहते हैं। यहाँ प्रेम पात्र पात्र-प्राप्त करने की वस्तु नहीं होती। यहाँ प्रेम-पात्र आराध्य होता है। प्रेमी आजीवन उसकी आराधना करता रहता है। सर्वस्व होम ही इस प्रेम का उद्देश्य होता है। आराध्य में अपना लय कर या आराध्यमय होकर ही यहाँ प्रेमी चिर आनन्द को प्राप्त करता है। यह बड़ी कठिन साधना होती है, इसकी यातना भी दारुण होती है। यह अपने को तिल-तिल जला देने की तरह होता है"45।

अगर माता-पिता प्रेम विवाह करने की अनुमति न देते हैं तो प्रेमी-प्रेमिका आत्महत्या करने तक तैयार हो जाती हैं। आजकल इस तरह का विवाह भारतीय समाज में बहुत अधिक देखने को मिलता है। गुप्तजी की कहानी मजनू की टीला में प्रेम और प्रीति के बीच की वार्तालाप इस प्रकार के संदर्भ का उदाहरण हैं-"उस वक्त हम एक बार साफ़-साफ़ उनसे कह देंगे कि हम एक-दूसरे को बहुत प्यार करते हैं। हमारी शादी कर दो, वरना......."

"हाँ हाँ, कहो वरना"?

"वरना हमारी जिन्दगी तबाह हो जाएगी! हमारी आशाएँ कुँठित हो जाएँगी! हम लुट जाएँगे! हम पागल हो जायेंगे! हम आत्महत्या कर लेंगे!"46

अन्तर्जातीय विवाह

आधुनिक युग में सभी देशों में परिवर्तन आ जाने के कारण विवाह में भी परिवर्तन आ गया है। इसलिए अन्तर्जातीयविवाहों का समर्थन हमारे समाज

में होने लगा है। विवाह की परंपरागत धारणाएँ गौण होती जा रही हैं। आज विवाह एक समझौता अथवा मैत्री संबन्ध है, स्त्री पुरुष का स्थायी बन्धन है। इसलिए आधुनिक नारी-पुरुष अपनी इच्छा को प्रथम स्थान देकर विवाहित हो जाते हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्त नारी-पुरुष जाति-पाँति की ओर परवाह किए बिना अपनी इच्छानुसार वर-वधु को ढूँढते और शादी करते हैं। आपसी मिलन से उनका जीवन शांतिपूर्ण होने का संभावना है, तो भी इसका एक दोष यह है कि कभी अन्तर्जातीय विवाह किए हुए व्यक्ति को समाज घृणा की दृष्टि से देखेगा। गुप्तजी ने इन सब बातों को देखकर इस समस्या की ओर अपने कथा साहित्य में हमारा ध्यान केन्द्रित किया है।

गुप्तजी ने शोले, सतीमैया का चौरा, आग और आँसु आदि उपन्यासों एवं उनके कुछ कहानियों में अन्तर्जातीय विवाह का चित्रण किया है। शोले उपन्यास में जाति के बदले प्रेम को प्रमुखता देकर गुप्तजी ने यह कार्य संपन्न किया है। उपन्यास में अनंतम और बेबी के अन्तर्जातीय विवाह क्रांतिकारी ढ़ग से किया है। जाति, धर्म के विचार भी वे नहीं करते। आग और आँसु उपन्यास में लल्लन अपनी माँ से शकुंतला से विवाह करने की बात करते समय माँ ने केवल यही कहा कि "तु जल्दी मुझे बहुरानी का मूँह दिखा। किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं "47। लल्लन की माँ उनसे लड़की के धर्म और जाति के बारे में कभी कुछ नहीं पूछा। हिन्दी साहित्य के कई समाजवादी कथा-साहित्य में अन्तर्जातीय विवाह का चित्रण किया गया है। यशपाल के मनुष्य के रूप, झूठा-सच, रंगेय राघव के कब तक पुकारूँ, नागार्जुन के दु:खमोचन आदि रचनाओं में इस विवाह का खूब विचार-विमर्श हुआ है।

विधवा विवाह

भारतीय समाज व्यवस्था में विधवा होना नारी के लिए शाप सिद्ध होता था, क्योंकि जीतेजी उसे नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती थी। उसके खान-पान, रहन-सहन, कपड़े आदि में कठोर नियम होते थे। उसे किसी समारोह, शादी-ब्याह में सम्मिलित नहीं किया जाता। उसे कुलक्षणी, मनहूस कहकर उसपर ताने कसते हैं। लेकिन सामाजिक बदलाव, सेवा भावी संस्था

और नारी संगठनों के प्रयासों से विधवा के पुनर्विवाह हो रहे हैं। उससे शापित नारी को मुक्ति मिल रही है।

गुप्तजी परिवर्तनवादी हैं इसलिए वे विधवा पुनर्विवाह के पक्षधर है, इसका वास्तविक चित्रण उनके कथा-साहित्य में परिलक्षित है। गुप्तजी ने अपने गंगा मैया उपन्यास में विधवा के प्रति समाज का विचार व्यक्त किया है- "विधवा का जीवन एक ठूँठ की ही तरह होता है, जिस पर कभी हरियाली नहीं आने की, कभी फल-फूल नहीं लगने के, व्यर्थ, बिलकुल व्यर्थ, धरती का भार! ठूँठ का बस एक उपयोग होता है, उसे काटकर लावन में जला दिया जाता है"48। उपन्यास में गोपी की भाभी, अपने बड़े भाई मानिक के मृत्यु से विधवा बन जाती है। विधवा होने से परिवार में उसे गौण स्थान ही मिलता था- "उस दिन से वह करुणा की देवी बन गयी और दु:खी और जलती हुई आत्माओं पर वह सेवा-शुश्रूषा, स्नेह और भक्ति की शीतल छाया बनकर छा गयी"49। सास, ससुर और बहन की सेवा-शुश्रूषा बड़ी तन्मयता से वह करती थी। भाभी का जीवन एक साधना का जीवन बन गया। अपने पति के विचार उन्हें दु:खाता था। इसके बारे में गुप्तजी पूछते हैं-"विधवा के जीवन में सुख के एक क्षण की भी कल्पना कैसे की जा सकती है?"50

सामाजिक मान्यता के अनुसार विवाह होने पर अगर पत्नी की मृत्यु हो जाती है, तो पति दूसरा विवाह कर सकता है, समाज उसे मान्यता देता है। लेकिन पति की मृत्यु होने पर नारी को दूसरा विवाह करने के लिए समाज मान्यता नहीं देता। ऐसी नारी को आजीवन विधवा के रूप में अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। समाज के इस व्यवस्था के प्रति गुप्तजी ने अपने गंगा मैया उपन्यास में आक्रोश व्यक्त किया है-"ऐसा क्यों? ऐसा क्यों होता है? यह अन्तर क्यों? क्यों एक को अपनी उजड़ी दुनिया को गले से लिपटाये तिल-तिल जलकर राख हो जाने को विवश होना पड़ता है और दूसरी को अपनी उजड़ी दुनिया फिर से बसाकर सुख चैन से ज़िन्दगी बिताने का अधिकार मिलता है"51।

भारतीय समाज में छोटी जाति के विधवाओं के लिए पुन: विवाह करने का अधिकार है। लेकिन बड़ी जाति के विधवाओं को अधिकार नहीं था। गंगा मैया उपन्यास में गोपी के घर के हलवाहाबिलरा द्वारा गुप्तजी बड़ी बिरादरी की रीति-रिवाज़ों की आलेचना करते हैं-"यह कैसा रिवाज़ है मालकिन, आप की बिरादरी का? इस मामले में तो हमारी ही बिरादरी अच्छी है, जो कोई बेवा इस तरह अपनी ज़िन्दगी खराब करने को मज़बूर नहीं। मेरी ही देखिए न। भैया भाभी को छोड़कर गुज़र गये, तो भौजी का ब्याह मुझसे हो गया। मज़े में ज़िन्दगी कट रही हैं। और आप ऊँची बिरादरी में क्यों पैदा हुई कि आपकी ज़िन्दगी ही खराब हो गयी"52। बिलरा की बातें सुनकर द्वेष भाव से भाभी उस समय की विधवा का जीवन इस प्रकार व्यक्त करती है-"तुझे क्या मालुम नहीं कि इस कुल की विधवा ज़िन्दा जलकर चिता में भस्म हो जाती है"53। इसका समर्थन उपन्यास में गोपी के शब्दों में भी दर्शनीय हैं-"उनकी बिरादरी की विधवा लकड़ी का वह कुन्दा है, जिसमें उसके पति की चिता की आग एक बार लग जाती है, तो वह जलता रहता है, तब तक जलता रहता है, जब तक जलकर राख नहीं होता"54।

देश में विधवाओं के जीवन में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। विधवा की बेटी से शादी करना समाज में नीच समझा जाता है। अगर शादी हो गयी, तो उसमें बड़ी बिरादरीवाले भाग नहीं लेते हैं। इसका उल्लेख गुप्तजी के क्यों आँख भर आयी हैं कहानी में देखने को मिलता है। कहानी में विधवा की बेटी से शादी करने की इच्छा प्रकट करने पर रमेश की माँ इस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है-"अरे तू उस विधवा भिखारिन की बेटी से शादी करेगा रे? इसलिए क्या हम ने तुझे इतना पढ़ाया-लिखाया था? अरे अभागे, अपनी माँ से तो पूछ लेता! बाप अभी ज़िन्दा है तो.........जवान बहन घर में पड़ी है"55।

विवाह-पूर्व आकर्षण

गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में, विवाह के पूर्व समाज के नर-नारी में होनेवाला आकर्षण से वैवाहिक जीवन में उत्पन्न समस्याओं का चित्रण किया

है। इसका उल्लेख प्रमुख रूप से गुप्तजी के शोले उपन्यास में देखने को मिलता है। ज़मींदार माँ-बाप का बेटा बरन और किसान की बेटी शोभी के बीच प्रेम-प्रसंग और एक साथ विवाह न होने के कारण दोनों के वैवाहिक जीवन में होनेवाले कष्ट आदि की सुंदर अभिव्यक्ति इस उपन्यास में होती है। बरन और शोभी का दाम्पत्य जीवन विवाह-पूर्व आकर्षण से दुरितपूर्ण बन जाता है। इसका उल्लेख करते गुप्तजीउपन्यास में कहते हैं-“शाभी जो आज इस दयनीय, निस्सहाय, निष्प्रयोजन जीवन की व्यर्थता की अवस्था को प्राप्त हुई, उसका कारण उसका प्रेम ही था”56। गुप्तजी के आग और आँसु उपन्यास में भी पानकुंवारी के माध्यम से पूर्वाकर्षण के कारण विवाहोपरान्तक्लेशपूर्ण जीवन बितानेवाली नारियों का चित्रण किया है।

विवाहोत्तर आकर्षण

वैवाहिक जीवन में विवाहोत्तर आकर्षण तनावों से परिपूर्ण है। विवाह के बाद दूसरे व्यक्ति के प्रति स्त्री या पुरुष के मन में होनेवाले मानसिक द्वंद्व और पारिवारिक विषमता का चित्रण गुप्तजी के कथा-साहित्य में बहुत ही प्रमुखता के साथ अंकित किया है, इसमें गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास विशिष्ट रूप से प्रतिपादित किया है। वर्तमान समाज में पति-पत्नी के व्यक्तित्वों में भिन्नता होने के कारण, विवाहोत्तर आकर्षण पनपती है। मन्ने और आयशा के प्रेम प्रसंग इसका उत्तम उदाहरण है। आयशामन्ने की पत्नी महशर की छोटी बहन है। आयशा और मन्ने में प्रेम हो जाता है। मन्ने घंटों अपने में डूबा-डूबा नमूना (आयशा) के बारे में सोचता रहता है। गुप्तजी ने मन्ने का सोच इस प्रकार व्यक्त किया है-“कितनी सुंदर है नमूना। और शायद...शायद वह उसे भी चाहती भी है। उसने कैसे रात को सड़क पर उसके हाथ पर चुपचाप पान थमाये थे।...कैसे उसकी शेरवानी के बटन लगाए थे। कैसे उसके मूँह में पान खिलायें, क्यों न उसने उसकी अंगुलियों को चूम लिया? शायद......शायद एक नई स्फूर्ति...एक नया उल्लास...जिसे उसने कभी नहीं समझा, कभी नहीं अनुभव किया...”57। इस तरह के व्यवहार के कारण मन्ने और महशर के वैवाहिक जीवन में बहुत अधिक कष्ट भोगना पड़ा। इसी उपन्यास में बसमतिया

से मन्ने का अवैध संबन्ध भी होता है। इसमें मन्ने को बसमतिया से एक बच्चे का जन्म होता है। इस प्रकार विवाहोत्तर आकर्षण का चित्रण गुप्तजी के कालिंदी, आग और आँसु, शोले आदि उपन्यासों में चित्रित है।

कालिंदी उपन्यास में सेठ कालिंदी प्रसाद का विवाह एक फूहड़ लड़की से हुआ। पत्नी से असंतुष्ट होने के कारण उसने एक वेश्या को अपने रखैल बनाया। उससे उसको एक बेटी का जन्म हुआ। आग और आँसु उपन्यास में अपनी पत्नी से असंतुष्ट होकर दूसरी स्त्रियों को अपनी कामपूर्ति का साधन माननेवाला सामंत बड़े सरकार का चित्रण गुप्तजी ने किया है। उपन्यास में बड़े सरकार अपनी पत्नी पानकुंवारी को छू भी नही सकता था। इसलिए लौंडियों से उसका आकर्षण होता है। विवाह के बाद भी पानकुंवारी को अपने प्रेमी रंजन से मात्र मिलने की आशा रहती है। शोले उपन्यास में वैवाहिक जीवन में प्रवेश करनेवाली शोभी अपनी ससुराल इसी भावना को लेकर आयी थी कि वह अपने पति को वह सब कुछ देगी, जो एक पत्नी से उसे मिलना चाहिए। लेकिन ससुराल में शोभी की आशा टूट जाती है। अपने पति देव से सच्चे प्रेम न मिलने के कारण फिर उसका आकर्षण बरन की ओर होता है।

दहेज प्रथा

भारतीय समाज में दहेज प्रथा एक समस्या नहीं है, अपितु यह तो प्राचीन काल से ही चली आ रही एक प्रथा है, केवल समय-समय पर इसके रूपों में परिवर्तन होता चला आया है। देश में वैवाहिक बंधन को पवित्र एवं अटूट माना गया है। विवाह संबन्ध को गंभीर मानते हुए भारतीय लोगों की यहाँ तक धारणा है कि विवाह बंधनों को तोड़ना मनुष्य के वश की बात नहीं चाहे ईश्वर भले ही इसे तोड़ दे। देश के प्रचीनमनीषियों ने अपने संस्कृत ग्रंथों में भी इस बात का उल्लेख किया है कि विवाह में कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष को दहेज दिया जाता है। इसके साथ ही कुछ ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं कि उस समय दहेज सहित विवाहों को ठीक नहीं माना जाता था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भी दहेज प्रथा को अच्छा नहीं माना जाता था।

समय के परिवर्तन के साथ-साथ दहेज प्रथा का विकृत रूप हो गया एवं इस परिवर्तन ने इसे कुप्रथा के रूप में परिणित कर दिया है। इस कुप्रथा का जिन कारकों पर प्रभाव पड़ा उनमें सबसे अधिक लड़की ही प्रभावित हुई। इससे लड़की की दयनीय स्थिति हो गयी है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में दहेज प्रथा का स्वरूप एवं उससे प्रभावित सामाजिक दोषों पर प्रकाश डाला है।

वर्तमान समाज में दहेज प्रथा विकराल रूप धारण कर चुका है। अमीर और गरीब सभी मनचाहे दहेज की माँग कर रहे हैं। भारतीय परिवारों में दहेज न दे सकने के कारण लाखों की संख्या में लड़कियों का विवाह नहीं कर पाते। आज विवाह में नारी के स्थान के ऊपर दहेज का स्थान है। दहेज प्रथा के आगमन के कारण समाज में स्त्री एक बिक्री हुई वस्तु बन गयी है। गुप्तजी ने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में समधी के शब्दों के माध्यम से दहेज प्रथा का भयंकर रूप दिखाया है-"अभी तक मेरे भतीजे के लिए जो-जो पार्टी आयी है, उसने अपना-अपना आफर इस काँपी में दर्ज कर दिया है। अभी और छह महीने हम दूसरी पार्टियों के भी इन्तज़ार करेंगे। फिर जिस पार्टी का आफर सबसे ऊँचा होगा, हम उस पार्टी की लड़की को सबसे पहले देखेंगे"58।

आज के समाचार पत्रों में दहेज प्रथा से जुडे समाचार पढ़ने से मालुम होगा कि समाज में दहेज प्रथा का रूप क्या है? इसका उल्लेख गुप्तजी ने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में किया है-"निम्न वर्ग तथा मध्यवर्ग के माता-पिताओं के लिए दहेज की प्रथा बड़ी भयंकर है। आज के समाचार पत्रों में प्रायः रोज़ ही पढ़ने को मिलता है कि मनचाहा दान-दहेज न मिलने के कारण पति, सास और बहुओं को जलाकर मार ड़लते हैं"59। इसी उपन्यास के माध्यम से दहेज प्रथा के प्रति गुप्तजी ने अपना विचार प्रकट किया है। वे समाज में व्याप्त इस कुप्रथा के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करते हैं-"यह सब कैसा गोरखधन्धा है? कहाँ माता-पिता, बेटे-बेटी, पति-पत्नी, ससुर-दामाद, सास-बहु आदि के मधुर प्रेममय, ममतामय, घनिष्ठतमसंबन्ध और कहाँ दान-दहेज, बहु-दाह, मुकदमेबाजी......"60।

शिक्षा

हमारे प्राचीन मनीषियों ने विद्या के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है-"विद्या वह है जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्त कराती है, उसे अंधकार से निकालकर प्रकाश दिखाती है। वह मनुष्य के नेत्रों के सम्मुख छाई धुन्ध को साफ़ कर उन्हें जीवन को उसके संपूर्ण रूप में देखने की प्रेरण देती है। जो विद्या ऐसा नहीं करती, वह वास्तविक अर्थों में विद्या नहीं है"61। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य उन दुर्गुणों से मुक्ति पाना है, जो जीवन को अंधकारमय बनाए हुए हैं। गुप्तजी अपने कथा-साहित्य के माध्यम से शिक्षा के महत्व एवं आज की शिक्षा के स्वरूप पर प्रकाश डाले हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत पहले से पिछड़ा हुआ है। यहाँ के गाँवों में शिक्षा का स्वरूप शहरीय शिक्षा से भिन्न है। आज़ादी के बाद देश के सरकार ने शिक्षा के प्रचार के लिए अनेक योजनाएँ बनायी, लेकिन गाँवों में आर्थिक विपन्नता और अज्ञान के कारण लोग शिक्षा के प्रति इतने जागृत और आकर्षित नहीं हुए हैं जितने शहरी जनता। गुप्तजी अपने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में मास्टरजी के द्वारा इस तथ्य का समर्थन करते हैं-"हमारा ग्रामीण अशिक्षित समाज में तो नया जीवन का प्रकाश पहुँचने में और भी अधिक समय लगता है, लेकिन वह एक-न-एक दिन पहुँचना अवश्य है। अशिक्षित समाज पुराने धर्माचरणों, कर्मकाण्ड़ों तथा प्रथाओं को आज भी गले से लगाए हुए हैं, जबकि जीवन में इन आचरणों, कर्मकाण्ड़ों तथा प्रथाओं की कोई सार्थक भूमिका नहीं रह गयी है। अशिक्षा पुराने संस्कारों की पोषक होती है, जबकि शिक्षा अज्ञान के अन्धकार को दूर करती है और नये आधुनिक संस्कार का निर्माण करती है"62।

आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षावाले मनुष्य वर्तमान समाज में आग बुझे राख के समान हैं-"विद्याविहीन मनुष्य बिना सींग पूँछ का पशु होता है"63। गंगा मैया उपन्यास में गुप्तजी शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला है। पूजन अपने साला मटरू (पाहुन) से कहता है-"उसे ज़रूर-ज़रूर पढ़ाना है पाहुन! कम से कम एक आदमी का घर में पढ़ा-लिखा होना बहुत ज़रूरी है। पटवारी-जमींदार जो कर-कानून की बहुत

बघारते हैं, उसका ज्ञान हासिल किये बिना उसका जवाब नहीं दिया जा सकता। अनपढ़ गंवार समझकर वे हर कदम पर हमें बेवकूफ बनाकर मूसते हैं”64।

मानव जीवन में शिक्षा का स्थान बहुत ऊँचा है। आज अशिक्षित व्यक्ति समाज के ऊपर एक बोझ है। पढ़-लिख जाने पर व्यक्ति के ज्ञान का विकास होता है। ज्ञान का भंडार इतना अकूत है कि उसका एक छोटा-सा अंश पाकर भी आदमी विद्वान हो सकता है, लेकिन उसकी ज्ञान पिपासा शांत नहीं होती। शिक्षा के माध्यम से मानव में उचित-अनुचित को समझने का विवेक उत्पन्न होता है। शिक्षा के द्वारा ही कूपमण्डूकता से मुक्ति पाकर मनुष्य का भविष्य उज्वल बनती है। इसलिए शिक्षा ग्रहण करना एवं प्रदान करना हर एक भारतवासियों का कर्तव्य है। इस विचार धारा को गुप्तजी ने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में चित्रित किया है-“आपने पढ़ लिखकर जो ज्ञान प्राप्त किया है उसका किसी न किसी रूप में समाज के लिए सदुपयोग होना ही चाहिए। एक जमाने से मैं समाज से कटा हुआ हूँ। अब आपके माध्यम से मैं समाज से जुड़ना चाहता हूँ। समाज के अन्धविश्वास तथा धर्मान्धिता के कारण मेरे माता-पिता की जो दशा हुई और मुझे भयंकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उसे हम यदि थोड़ा ही दूर कर सकें तो हमारा जीवन सार्थक हो सकता है। यह काम हम अनपढ़ों को ज्ञान का प्रकाश देकर ही कर सकते हैं”65। इस प्रकार ज्योतिष कहानी में शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए गुप्तजी कहते हैं-“विद्या स्वार्थ-सिद्दि के लिए नहीं होती, वह समाज-सेवा के लिए हैं”66।

गुप्तजी अपने छोटी सी शुरुआत उपन्यास में साक्षरता अभियान को प्रस्तुत कर गाँव की ़फिजा बदलने के लिए, अपने व्यक्तिगत आकांक्षाओं को होम कर समष्टि चेतना से प्रेरित होकर शिक्षा विशेषकर कन्या व प्रौढ़ नारियों को शिक्षित करने की एक छोटी सी पहल शुरु कर गाँव के जड़ीभूत वातावरण में एक नई चेतना जगाने की कोशिश की हैं।

वर्तमान समाज में शिक्षा का स्वरूप बदल गया है। आधुनिक शिक्षा इसलिए भी आदर्शरहित है कि उसका उद्देश्य केवल उदरपूर्ति करना है।

मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में-'अब नौकरी के लिए विद्या पढ़ी जाती यहाँ'। वर्तमान शिक्षा ही ऐसी है कि इससे नागरिकता के भावों का विकास नहीं होता है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत क्रियात्मक शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिलता, इसलिए देश में कृषि तथा अन्य उद्योगों की दयनीय दशा है।

आज कल देश के गरीबों के लिए अच्छी शिक्षा एक दुर्लभ वस्तु बन गयी है। शिक्षा पाने के लिए उन्हें अधिक से अधिक मूल्य चुकाना पड़ रहा है, अर्थात शिक्षा आज एक व्यवसाय के रूप धारण कर लिया है। अध्यापन कार्य भी एक पेशा बन गया है। इसका उल्लेख गुप्तजी के अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में दृष्टिगत है-"दर असल अध्यापन का कार्य अब एक पेशा बन गया है और शिक्षा का कार्य एक व्यवसाय बन गया है। अध्यापकों में यूनियनवाद घुस गया है और निजी शिक्षा-संस्थाओं में धनार्जन की प्रवृत्ति, अभिभावकों के शोषण और भ्रष्टाचार का बोलबाला है"67।

नारी का स्थान

प्राचीन काल के भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्यन्त सम्मानपूर्ण था। हमारे शास्त्रों ने भी नारियों को महत्वपूर्ण एवं उच्च स्थान दिया है। परन्तु समाज बदला। जहाँ नारी को देवी तथा लक्षमी के समान पूजा किया जाता था, वहाँ अब उसे पुरुषों की भोग्य वस्तु समझा जाने लगा। आज जब हम समाज में नारी की दशा का अवलोकन करते हैं, तो हमारा मस्तक लज्जा से झुक जाता है। आज की नारी अपने अंक में दासता को छिपाए हुए हैं, उसे प्रताड़ित तथा पीड़ित किया जाता है। उसके आत्म-सम्मान का भी महत्व नहीं दिया जाता, पुरुष-वर्ग नारी के साथ खिलवाड़ कर रहा है। वैदिक युग के बाद नारी-समाज का इतिहास धीरे-धीरे पुरुषों की बेड़ियों, सामाजिक बन्धनों में जकड़ी जानेवाली नारी का इतिहास है। इसलिए गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में नारी के विविध समस्याओं का चित्रण किया है।

सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजी ने भारतीय समाज के पीड़ित नारी का चित्रण महशर के माध्यम से किया है-"महशर की सूरत देखकर ड़र लगता। अच्छी-भली लड़की की क्या हालत हो गयी थी! बाल बिखरे, चेहरा

सूशा, आँखों में बहशत, कपड़े बोसीदा, हरदम किसी को नोंच खाने के लिए सैयार, हर वक्त बड़बड़ाहट, लड़ाई, गाली, बद्दुआ, रोना, झींकना, बाल नोंचना, छाती कूटना, दीवार से सर टकराना, बेहोश होना, कभी खाना, कभी न खाना”68।

आग और आँसु उपन्यास में नारियों के प्रति सामन्त वर्ग का अत्याचार एवं शोषण का चित्रण गुप्तजी ने किया है। उपन्यास के बड़े सरकार न जाने कितनी कन्याओं को अपनी अंकशायिनी बनाने का सौभाग्य प्रदान कर चुके थे। इसका वर्णन गुप्तजी ने इस प्रकार किया है-“हवेली में जितनी औरतें थीं सबकी सब अपने दिनों में उसी की तरह ठाकुर की सेवा में रह चुकी थीं, कोई उसपर हँसनेवाला न था। चलनी चलनी पर कैसे हँसे?”69

नारियों के प्रति सामन्तों की घृणित चेष्टाएँबन्दूक की शक्ति से पूरी होती रहीं। यदि किसीने अपने नारित्व की भेंट चढ़ाने में थोड़ी भी आनाकानी की तो उसका उत्तर था मृत्यु--“सोए में ही बड़े सरकार उसे अपनी बगल में खींच लेते थे और उसके जिस अंग के साथ जैसा चाहते थे, करते थे। शुरु-शुरु में नींद खुल जाने पर बदमिया के हाथ मशीन की तरह उठकर विरोध करते थे, उसकी सारी देह कसमसाकर जंजीरों को तोड़ देना चाहती थी। लेकिन जंजीरों की ताकत से लोहा लेना असहाय, अनाथ छोकरी के बस की बात न थी। वह जानती थी कि पलंग की पाटी के पास बिछौन के नीचे एक बन्दूक रखी रहती है”70। इसी उपन्यास की रानी पानकुँवारी भी इस प्रकार सामन्ती दंभ का शिकार बन जाती है। वह अनिच्छित व्यक्ति से विवाह होने पर दु:खित होकर जीवन की अंतिम सासें गिनती रहती है। उसकी शादी उसके प्रेमी राजेन्द्र से इसलिए नहीं हो पायी कि “ताल्लुकेदार को तो यह बात जड़ से ही असह्य थी कि कोई उनकी लड़की से या उनकी किसी से मोहब्बत करने की हिम्मत करे।.....यह बात उनकी समझ के बाहर और खिलाफ थी कि कैसे उनकी लड़की ने किसी से आँख मिलाई या किसी ने उनकी लड़की की ओर देखा”71।

हमारे पुरुष प्रधान देश के वैवाहिक जीवन में नारी का शोषण होना स्वाभाविक है। गुप्तजी जैसे सामाजिक चेतना से युक्त साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में इन समस्याओं का चित्रण किया है। शोले उपन्यास में पुरुष प्रधान समाज में नारी का शोषण इस प्रकार दिखाया है-"पर पुरुष तो नारी को अपनी कामेच्छा पूर्ति के साधन के सिवा कुछ मानता ही नहीं। ब्याह क्या हो जाता है, उसे नारी पर मनमाना करने का जैसे अधिकार मिल जाता है।....कौन पुरुष है, जो ब्याह के दिन से ही नारी को अपनी भावनाओं, इच्छाओं और आशाओं का गुलाम बनाना शुरु नहीं कर देता? दबते-दबते एक दिन वह शून्य हो जाती है.....पुरुष का छत्र-राज्य स्थापित होता है"72।

नारी के प्रति समाज में हो रही अत्याचारों के प्रमुख कारण परिस्थितियाँ और सामाजिक व्यवस्था ही है। इसका समर्थन करते हुए गुप्तजी शोले उपन्यास में कहते हैं-"जिन परिस्थितियों ने जकड़कर शोभी का रक्त-माँस चूस लिया, उसके मातृत्व, नारीत्व का गला घोंट दिया, उसके जीवन की सार्थकता को खत्म कर दिया, उसे शून्य बना दिया, उसकी जिम्मेदारी उस सामाजिक व्यवस्था पर है, जो ऐसी परिस्थितियों को पैदा करता है, जो नारी पर पुरुष के पशुत्व का एकछत्र अधिकार देती है, सासु को पतोहू के साथ एक खरीदी हुई दासी की तरह व्यवहार करने की क्षमता देती है और नारी को चुपचाप मिट जाने के लिए विवश करती है। जब तक यह व्यवस्था नहीं बदलती, शोभी की तरह मूक नारियाँ घर-घर में सड़ती ही रहेंगी, इनका उद्धार नहीं हो सकता"73।

हमारे समाज में पुरुष और नारी को देखने-परखने का अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं। वास्तव में यह एक गलत सामाजिक रीति है। समाज में पुरुष और नारी को समान अधिकार होना चाहिए। जब तक यह अधिकार न मिलता तब तक नारियों के प्रति इस तरह की समस्याएँ पनपती ही रहेगी। इसका उल्लेख भी गुप्तजी ने शोले उपन्यास में किया है-"यह दृष्टिकोण का अंतर ही जहाँ नारी को मिट जाने के लिए बाध्य करता है, वहीं नर के मनमाने कार्यों को भी सह लेता है। इसलिए जब तक यह अंतर नहीं मिटता, नारी को

सच्चे मानी में जीने का अधिकार नहीं मिल सकता, पुरुषों से शासित समाज में उन्हें विकसित होने का अवसर नहीं मिल सकता और जब तक यह नहीं होता, नारी की समस्या हल ही नहीं हो सकती”74। गुप्तजी इसी उपन्यास में आगे कहते हैं-“स्त्रियों को इस गुलामी से तभी मुक्ति मिल सकती है जब वे अधिक से अधिक संख्या में मर्दों के साथ खुलकर अधिक से अधिक समय तक हर सामाजिक उत्पादन के कार्यों में शामिल हो”75। गुप्तजी नारी जन्म एवं अधिकार और गुलामी से मुक्ति का हल देते हुए शोले उपन्यास में कहते हैं कि “जब तक बेटी समाज का उतना ही उपयोगी अंग माता-पिता के लिए नही बन जाती, जितना बेटा होता है, तब तक यब समस्या हल नहीं होती”76।

वर्तमान भारतीय समाज में नारियों की दयनीय दिशा में परिवर्तन आया है। शिक्षा, नारी जागरण आदि के प्रचार-प्रसार इसमें महत्वपूर्ण कार्य निभा रहे हैं। आज नारियाँ जानने लगीं कि अगर वह काम नहीं करती परिवार और समाज उसे दासी बनाएगी। गुप्तजी भी अपने कथा-साहित्य द्वारा भारतीय नारियों में चेतना लाने एवं उसे आत्म-निर्भर बनाना चाहते हैं। अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में इसका उदाहरण है-“समाज का प्रायः प्रत्येक व्यक्ति समाज के लिए कोई-कोई काम ज़रूर करता है। इसी से समाज चलता है, जनता का जीवन चलता है। स्त्री समाज के लिए काम नहीं करती, वह घर की दासी होती है, अपने पति की दासी होती है, उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता, निजत्व नहीं होता”77। गुप्तजी इसी उपन्यास में मास्टरजी के माध्यम से आगे कहते हैं-“अपने घर का काम-काज तो प्रायः सभी स्त्रियाँ करती है, लेकिन अब बहुत सारी स्त्रियाँ ऐसी भी हैं, जो अपने घर के काम-काज के साथ कोई और भी धन्धा करती है। किसानिनें खेतों में काम करती हैं। मज़दूरिनें कारखानों में काम करती है। बहुत सारी स्त्रियाँ स्कूलों में पढ़ाती है, कार्यालयों में काम करती है। बहुत सी डाक्टर हैं, नर्स हैं। अब तो प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में आप को स्त्रियाँ काम करती दिखाई पड़ जाएँगी”78। हर्ष का विषय है कि देश के वर्तमान सरकार भी नारी-कल्याण के लिए ही ठोस कदम उठा रही है। भारत के नये संविधान में नारियों के अधिकार और कर्तव्यों पर उदार दृष्टिकोण

से विचार किया गया है। आशा है, निकट भविष्य में नारी जाति का उत्थान अवश्य होगा। वे पुन: अपने प्राचीन गौरवपूर्ण स्थान को प्राप्त कर देवी तथा लक्ष्मी की तरह पूजी जाएँगी।

दासी-प्रथा

समाज में दासी प्रथा एक अभिशाप के रूप में व्याप्त है। समाज में दासियों का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उनका जीवन अपने स्वामियों एवं स्वामिनियों की सेवा के लिए होता है। उसका शरीर पर स्वामी का पूर्ण आधिपत्य है। वह उसे इच्छानुसार किसी को दे सकता था, बेच सकता था अथवा कठोर यंत्रणा दे सकता था। उनकी बिक्री बकरी के समान की जाती थी। अन्य वस्तुओं की तरह दासियों को विवाह में दहेज के रूप में दिया जाता था। दहेज में दासियाँ देने की ऐसी अटूट परंपरा भी जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। इसका उल्लेख गुप्तजी के कथा-साहित्य में देखने को मिलता है। आग और आँसु उपन्यास में मुंदरी की माँ दहेज में आयी थी और अब मुंदरीकुंवरी के दहेज में दी जा रही है। इस बात को स्पष्ट करते हुए उपन्यास में ठाकुर कहता है-"वही होगा जो हमेशा से होता आया है।.....तू भी तो मेरी ताल्लुकेदारिन के साथ यहाँ आयी थी। एक दिन तेरी माँ ने भी अपने मालिक से तेरे बारे में यही बातें कही होंगी और उन्होंने भी शायद यही जवाब दिया होगा जो मैं आज तुझे दे रहा हूँ"79।

दहेज में आयी हुई दासी के शरीर का एक स्वामी न था, उस पर सभी का अधिकार था। इसका चित्रण करते हुए गुप्तजी कहते हैं-"रानीजी पर सिर्फ सरकार का हक था। लेकिन मुंदरी पर अपना-अपना हक जमाते जैसे ससुराल से आए हुए सब पाहुरों में एक वह भी हो। शुरु-शुरु में कितनों ने ही उसकी ओर हाथ लपकाए"80। इन दासियों की शक्ति पर शोषण किया जाता था। उनसे सेवा ली जाती थी और साथ ही साथ ये सामन्तों की वासना तृप्ति का साधन थीं। आग और आँसु उपन्यास की "बदमिया बड़े सरकार के पैर दबाते-दबाते जब नींद से निढ़ाल हो जाती तो, बड़े सरकार उसके शरीर से खेलने लगते"81।

समाज में दासियों के प्रति अत्याचार बढ़ रही हैं। समाज में दासी का कार्य अपने स्वामी का सेवन करना है, सब कुछ सहना है। आग और आँसु उपन्यास में दासी जीवन इस प्रकार व्यक्त किया है-"मैं गुलाम हूँ, रानी जी, और एक गुलाम को तो उसका मालिक अपने मज़े के लिए बकरे की तरह हलाल कर देता है। अब मेरे भी हलाल होने का समय आ गया है। छुरी पजाई जा रही है"82।

वेश्यावृत्ति

हिन्दी कथा-साहित्य में वेश्या जीवन पर सर्वागीण प्रकाश डालनेवाले प्रेमचन्द थे। रंगेय राघव जैसे बहुत अधिक साहित्यकारों ने इस विषय को अपनी रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया है। सामंती नैतिकता के शिकंजों में छटपटाती नारी की विवशता गुप्तजी के कथा-साहित्य में भी दर्शनीय हैं। गुप्तजी के आशा, कालिंदी, सेवाश्रम तथा मशाल उपन्यासों में वेश्या जीवन का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है। सामंत युगीन नारी बुरी सामाजिक व्यवस्था के फलस्वरूप वेश्या बन जाती है। आशा उपन्यास में आशा के दूकानदार पिता अपनी बेटी की शादी का प्रबन्ध नहीं कर पाता। दहेज का इन्तज़ाम न करने के कारण आशा को नवाब का शिकार बनना पड़ता है, और उस पतन से बाहर आने पर भी अंत में कालिंदी प्रसाद उसे रखैल बना देती है।

गुप्तजी के मशाल उपन्यास में परिस्थितिवश वेश्या बन जाती सकीना को हम देख सकते हैं। झम्मन आदि उनका शोषण करते हैं। साहब के घर में नौकरी करती सकीना को एक रात में उन्होंने उपद्रव किया। उनके गाल पर थप्पड़ मारकर वहाँ से भागती सकीना के उपकार करने के बहाने आये व्यक्ति उसे झम्मन के पास ले जाते हैं। वहाँ सकीना वेश्या बन जाती है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से वेश्या जीवन का चित्रण बड़ी ही मार्मिक ढंग से किया है। इस विषय के बारे में गुप्तजी का विचार है-"किसी न किसी विवशता के कारण नारी वेश्या बन जाती है, वह उस जीवन में आनंद या संतोष का अनुभव नहीं कर पाती। उस जीवन में उबरने के लिए सदा प्रयत्न करती

रहती है”83। गुप्तजी के नारी पात्रो में रंभा, आशा, जमुना, मुंदरी, बदमिया, सुनरी, सकीना आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

गुप्तजी के कथा-साहित्य में समकालीन भारत के सामाजिक ज़िन्दगी के स्पंदन को मुखरित करते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित अधिकांश विषयों का सामयिक महत्व होता है। जाति व्यवस्था एवं अस्पृश्यता, पारिवारिक जीवन, परिवार के सदस्यों के बीच की रिश्ता, वैवाहिक जीवन, दहेज, शिक्षा, नारी का स्थान, विवाह-पूर्व एवं विवाहोत्तर आकर्षण, दासी प्रथा, वेश्यावृत्ति आदि सामाजिक विषय आज भी प्रासंगिक हैं। पारिवारिक जीवन में आज अदिकाधिक घुटन और तनाव से पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, सास-बहु तथा परिवार के अन्य सदस्यों में स्वार्थ, ईर्ष्या, अत्यधिक महत्वाकांक्षा, अहंभाव, यौन संबन्ध, हवस आदि से नाजुक और पवित्र रिश्ते टूटकर परिवार का विघटन होता हुआ दिखाई देता है। इससे परिवार में जो अशान्ति निर्माण हो रही है, उसका वास्तविक चित्रण गुप्तजी के कथा साहित्य में मिलता है।

हमारी संस्कृति में विवाह संस्था को पवित्र माना जाता है। किन्तु बाल-विवाह, अनमेल विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, दहेज, अमीर-गरीब भेद आदि आयामों में लोगों का अज्ञान, अशिक्षा, रूढिवादिता, अंधविश्वास, नारी की कुरूपता, यौन संबन्ध, स्वार्थ, धन लोलुपता, झूठी प्रतिष्ठा आदि कारणों से देश के वर्तमान विवाह संस्था बड़ी समस्याओं को सामना कर रही हैं। इसलिए विवाह संस्था का महत्व कम हो रहा है। सरकार बाल विवाह को रोक लगाई हैं, फिर भी देश के कुछ भागों में आज भी बाल विवाह हो रहे हैं। धर्म और जाति के बन्धन तोड़कर, अपने माता-पिता की इच्छाओं के विरुद्ध, प्रेम विवाह करनेवाले युवक और युवतियों की संख्या भी देश में बढ़ रही हैं।

संक्षेप में वर्तमान देश के सामाजिक जीवन में सच्चाई, ईमानदारी, नैतिक मूल्य, सदाचार आदि सिद्धान्तों का ह्रास हुआ है। इन्होंने सामाजिक जीवन को दीमक की तरह कुरेदा है और खोखला बना दिया है, इसका वास्तविक चित्रण गुप्तजी के कथा साहित्य में मिलता है।

<u>संदर्भ</u>

1. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 24
2. वही, पृष्ठ सं 47
3. कदम के नीचे (सपने का अन्त कहानी संग्रह पृष्ठ सं 40)
4. गंगा मैया, पृष्ठ सं 14
5. बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह पृष्ठ सं 11)
6. यही.ज़िन्दगी है (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 34)
7. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 16
8. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 316
9. समाज शास्त्रीय अवधारणाएँ एवं भारतीय समाज, राम गोपाल सिंह, पृष्ठ सं 119
10. समाज का अध्ययन, मनोरमा पवार और दिनेश वर्मा, पृष्ठ सं 19
11. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 103)
12. चरम बिन्दु (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 69)
13. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 20
14. नौजवान, पृष्ठ सं 18
15. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 314
16. नौजवान, पृष्ठ सं 18
17. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 280
18. वही, पृष्ठ सं 314
19. अन्तिम अध्याय, पृष्ठ सं 183
20. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 315
21. एक जीनियस की प्रेम कथा, पृष्ठ सं 132
22. मौत का नशा (आँखों का सवाल कहानी संग्रह पृष्ठ सं 69)
23. अक्षरों के आगे मास्टरजी पृष्ठ सं 32
24. वही, पृष्ठ सं 33
25. नौजवान, पृष्ठ सं 8
26. गंगा मैया, पृष्ठ सं 18
27. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 32-33
28. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 456-457
29. क्यों आँख भर आयी हैं (आँखों का सवाल कहानी संग्रह पृष्ठ सं 105)

30. वही, पृष्ठ सं 105
31. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 23
32. मौत का नशा (आँखों का सवाल कहानी संग्रह पृष्ठ सं 71)
33. बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह पृष्ठ सं 12
34. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 116)
35. गंगा मैया, पृष्ठ सं 19
36. वही, पृष्ठ सं 20
37. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 16
38. वही, पृष्ठ सं 91
39. गंगा मैया, पृष्ठ सं 62
40. वही, पृष्ठ सं 83
41. मौत का नशा (आँखों का सवाल कहानी संग्रह पृष्ठ सं 70)
42. शोले, पृष्ठ सं 47
43. आग और आँसु, पृष्ठ सं 121
44. क्यों आँख भर आयी हैं (आँखों का सवाल कहानी संग्रह पृष्ठ सं 95)
45. सेवाश्रम, पृष्ठ सं 37
46. मजनू की टीला (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह पृष्ठ सं 65)
47. आग और आँसु, पृष्ठ सं 363
48. गंगा मैया, पृष्ठ सं 27
49. वही, पृष्ठ सं 47
50. वही, पृष्ठ सं 24
51. वही,पृष्ठ सं 42
52. वही, पृष्ठ सं 45
53. वही, पृष्ठ सं 46
54. वही, पृष्ठ सं 47
55. क्यों आँख भर आयी हैं (आँखों का सवाल कहानी संग्रह पृष्ठ सं 109)
56. शोले, पृष्ठ सं 129
57. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 486
58. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 57
59. वही, पृष्ठ सं 44

60. वही, पृष्ठ सं 45

61. आधुनिक शिक्षा, कुलश्रेष्ठ एवं शर्मा (आदर्श निबंध पृष्ठ सं 161)

62. अक्षरों के आगे मास्टरजी पृष्ठ सं 23

63. वही, पृष्ठ सं 49

64. गंगा मैया, पृष्ठ सं 47

65. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 52

66. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 107)

67. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 51

68. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 308

69. आग और आँसु, पृष्ठ सं 33

70. वही, पृष्ठ सं 33

71. वही, पृष्ठ सं 131

72. शोले, पृष्ठ सं 130

73. वही, पृष्ठ सं 133

74. वही, पृष्ठ सं 132

75. वही, पृष्ठ सं 134

76. शोले, पृष्ठ सं 153

77. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 17-18

78. वही, पृष्ठ सं 17

79. आग और आँसु, पृष्ठ सं 41

80. वही, पृष्ठ सं 65

81. वही, पृष्ठ सं 32

82. वही, पृष्ठ सं 133

83. भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना,शोध-प्रबंध, डॉ. एलसम्मा पृष्ठ सं 158

अध्याय 4

आर्थिक दृष्टिकोण में भैरवप्रसाद गुप्त का कथा-साहित्य

मानव के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में अर्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समाज की जीवन प्रक्रिया आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहती है। आर्थिक स्थिति के उतार-चढ़ाव के कारण सामाजिक जीवन में परिवर्तन होते हैं। "माक्र्सवादी विचार धारा में आर्थिक असमानता तथा शोषक और शोषितों के बीच चल रही लड़ाई का कारण अर्थभाव एवं उसका असमान वितरण माना जाता है"1। इससे समाज का ढाँचा असंतुलित रहता है। अर्थ ही महत्वपूर्ण बनने से लोग उसकी प्राप्ति के लिए अनीति, अत्याचार, भ्रष्टाचार, काला बाज़ार और बेईमानी करने लगते हैं। साहित्यकार भी सामाजिक प्राणी होता है, इसलिए समाज के इस वैषम्य को वह अपनी दृष्टि से देखता है और अपनी कृतियों में उसका विवेचन करता है।भैरवप्रसाद गुप्त ने आज़ादी के पहले और आज़ादी के बाद भारतीय समाज की आर्थिक स्थिति को नज़दीक से देखा है। समाज के लोगों में आये उतार-चढ़ाव देखे हैं। इसलिए आर्थिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत उनके कथा-साहित्य में चित्रित वर्ग-संघर्ष, गरीबी, अकाल, मूल्य-वृद्धि, बेरोज़गारी, शहरीकरण आदि विषयों का विस्तृत अध्ययन नीचे दिया जा रहा है।

वर्ग-संघर्ष

वर्ग-संघर्ष का मूलाधार आर्थिक है। आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ है। फलत: वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है। आर्थिक असमानता ने समाज में उच्च, मध्य और निम्न वर्गों का जन्म दिया। निम्न और उच्चवर्ग के बीच व्यापक विषमता ने निम्न वर्ग को उच्च वर्ग के विरुद्ध संघर्षरत किया। समाज में प्रत्येक युग की आर्थिक परिस्थितियों के कारण वर्ग-

संघर्ष उत्पन्न होता है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में वर्ग चेतना एवं वर्ग संघर्ष का चित्रण किया है।

समाज में मूल रूप में दो वर्ग रहे हैं-शोषक और शोषित। उत्पादन साधनी पर अधिकार रखनेवाला वर्ग शोषक वर्ग एवं इनपर आश्रित होकर कठिन परिश्रम करके शोषित जीवन जीनेवाला शोषित वर्ग। गुप्तजी ने अपने भाग्य देवता उपन्यास में इन दोनों वर्गो का और भी विभाजित करने का परिश्रम किया है-"इन दोनों प्रमुख वर्गों के अन्तर्गत कई-कई वर्ग होते हैं, जैसे-मालिक वर्ग में महाराज, राजा, बड़े ताल्लुकेदार, छोटे ताल्लूकेदार, बडे जमींदार, छोटे जमींदार वैसे ही मातहात वर्ग में बडे किसान, छोटे किसान, उच्च मध्यम वर्ग तथा मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवी, अधिकारी, व्यापारी, दूकानदार, बाबू लोग, हुनरमन्द मज़दूर आदि और निम्न वर्ग के मज़दूर, गरीब लोग आदि"2।

समाज में शोषक और शषित वर्गों के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है, क्योंकि इन दोनों वर्गों के हितों में अन्तर्विरोध है। आज तक के संपूर्ण समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। जब तक समाज में आर्थिक असमानता है तब तक यह वर्ग-संघर्ष चलता ही रहेगा, इसका अन्त नहीं होगा। इसका उल्लेख भाग्य देवता उपन्यास में इस प्रकार है-"शोषक वर्ग और शोषित वर्ग के बीच का यह अन्तरविरोध वर्गीय समाज में कभी समाप्त नहीं होता, क्योंकि जमींदार और पूँजीपति चाहते हैं कि उनका मुनाफा बराबर बढ़ता जाए, जबकि किसान और मजदूर चाहते हैं कि उनका शोषण समाप्त हो"3।

भारत की विशिष्ट सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों में वर्ग-संघर्ष के दो रूप उपलब्द होते हैं। पहला है किसान-ज़मींदार संघर्ष और दूसरा मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष। कृषि व्यवस्था पर आधारित अर्थ व्यवस्था की विसंगतियों से पहला वर्ग संघर्ष संबन्ध हैं तो पूँजीवादी मशीनीकरण एवं उद्योग-धन्धों पर आधारित अर्थ व्यवस्था की विसंगतियों से दूसरा वर्ग-संघर्ष।

किसान-ज़मींदार संघर्ष

किसान-ज़मींदारी संघर्ष का प्रमुख कारण प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित ज़मींदारी प्रथा है। इस प्रथा का आरंभ मुगल शासन से माना जाता है,

लेकिन अंग्रेज़ी शासन में यह प्रथा और भी बढ़ गया। ज़मींदार अपनी पूँजी और आतंक के बल पर शोषित गरीब किसान और निम्न जाति के लोगों का शोषण करते हैं। ज़मींदार अभावग्रस्त किसानों को भूमि कर्ज देकर दुगुना वसूल करते हैं। उनसे बेगारी लेना, पिटाई करना, झूठे इलज़ाम लगाकर फँसना, हत्या करना, नारी की इज्जत लूटना जैसे घिनौने कृत्य कर शोषण करते हैं। ज़मींदारों की ज़मींदारी नहीं रही किन्तु वे पूँजी और पाले हुए गुण्डों के आतंक से ग्रामीण किसानों का शोषण कर रहे हैं। उनके शोषण से किसान अब भी आतंकित और पीड़ित रहते हैं। इसलिए समाज में प्रचीन काल से ही किसान इनके नीतियों के विरुद्ध संघर्ष करने का निर्णय लिया था। फलस्वरूप समाज में किसान-ज़मींदार संघर्ष का आरंभ हुआ। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में किसान-ज़मींदार संघर्ष का चित्रण किया है।

गुप्तजी के गंगा मैया उपन्यास में ज़मींदारों के विरुद्ध किसानों में असंतोष भड़क रहा है। ज़मींदारों ने पुश्तों से हराम का दीयर से बटोरा है, किन्तु किसान अब अपनी धरती एवं अपने परिश्रम की कमाई ज़मींदारों के हाथ सौंपने को तत्पर नहीं है। उपन्यास में मटरू कहता है-"जान दे देंगे, लेकिन ज़मींदारों का वहाँ पाँव न जमने देंगे। सालों यह लड़ाई चलेगी। गंगा मैया की कृपा से हमारी जीत होगी। हक और न्याय हमारे साथ हैं। झूठ, फ़रेब, धाधली और जुलुम की गाड़ी बहुत दिनों तक नहीं चलती। अब मटरू अकेला नहीं, दीयर और तीरवाही के हज़ारों किसान उसके साथ हैं। अपनी प्यारी धरती पर जान देनेवालों से उनकी धरती छीन लेने की ताकत किसमें हैं?"4 उपन्यास के नायक मटरू का साला पूजन में भी वही जोश है। वह कहता है-"तुम्हारे साथी अपनी खून की आखिरी बूँद तक से इनकी रक्षा करेंगे। जिस तरह गुज़री ज़माना वापस नहीं आता ज़मींदारों के उखडे पैर यहाँ फिर कभी न जम सकेंगे। हमारे ज़ोर दिन दिन बढ़ता जा रहा है। हमारे साथी बढ़ते जा रहे हैं। ज़माना आगे बढ़ रहा है। यहाँ का हर किसान आज का मटरू बनने की तमन्ना रखता है"5।

सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजी ने वर्ग-संघर्ष के स्वरूप को उभारा है। ज़मींदारसुगन्धराय द्वारा लगान की दर बढ़ाने पर एक भी किसान बढ़ी हुई दर पर लगान देने को प्रस्तुत नहीं है। गुलाम हैदर के नेतृत्व में ग्राम निवासी एकत्रित होते हैं एवं इस शोषण के विरुद्ध ज़मींदार का सामना करते हैं। ज़मींदार के विरुद्ध उनकी यह लड़ाई दो वर्गों की लड़ाई है-शोषक और शोषित वर्गों की। इसी उपन्यास में किसान जमुनवा निम्न वर्ग की आवाज़ है। उसने जीवन भर ईमानदारी से समय पर ज़मींदार का लगान चुकाया है, किन्तु बेटे की बीमारी और उस पर बाबू साहब के लगान के लिए किये गये निर्मम व्यवहार ने जमुनवा को अन्तर से तोड़कर रख दिया है। यह टूटन उसमें एक नयी चेतना को, नये विद्रोह को जन्म दे रही है। तभी तो जमुनवा बाबू साहब के समक्ष अकड़ जाता है, झटका देकर अपनी गर्दन छुड़ाकर आँखें गिरोरकरजमुनवा बोला-"हाथ मत लगाइए। जो आपने कहा, वही बहुत है।....उसकी आँखों से चिनगारी छूट रही थी, वह चीखे जा रहा था-हमारा लड़का मर रहा है....और....यह....न हमारा ठाकुर, न मालिक, हमारा पानी उतार रहा है"6।

शोषित मानव जब विद्रोह पर उतर आता है, तो दुनिया की कोई शक्ति उसे डरा नहीं सकती। सती मैया का चौरा उपन्यास में जमुनवा किसी भी तरह ज़मींदार के सामने आने को तैयार नहीं है, तभी तो मन्ने द्वारा चन्नन से पूछने पर कि तुम उसे पकड़कर क्यों नहीं ले आये। चन्नन अपनी विवशता स्पष्ट करता है- "वो हमारे पकड़ने के बस का है सरकार? ज़रा हाथ लगाया, तो बोला, हाथ बढ़ाया, तो तोड़के रख देंगे"7।

गंगा मैया उपन्यास में ज़मींदारमटरू को झूठी इल्ज़ाम लगाकर जेल भेज देती है। जेल में मटरू गोपी से मिलता है। तब गोपी कहता है-"ये ज़मींदार इतने हरामी होते हैं कि किसान का ज़रा भी सुख इनसे नहीं देख जाता"8। इसी उपन्यास में ज़मींदार के व्यवहार से उसका कारिन्दा भी गाँव में निरंकुश होकर शासन करता है। ज़मींदार ज्यादातर समय शहरों में रहते हैं। इसलिए इसका फ़ायदा उठाकर कारिन्दा अपना हुकूमत गाँवों में चलाता है।

कारिन्दामटरू से ज़मींदार के साथ समझौता रखने के लिए कहता है। तब मटरू इनकार करते हैं तो कारिन्दा धमकी देकर कहता है-" बुरा न मानना, ये जमींदार बडे ज़ालिम शैतान है। वे ऊँच-नीच, झूठ-सच, मक़र, फ़रेब कुछ नहीं देखते। अमलों के साथ रोज़ का उनका उठना-बैठना होता है। भला तुम उनसे कैसे पार पाओगे? फिर कागज़-पत्थर में भी उनका नाम दर्ज है। कानून-कायदे के पैंतरे में ही वे तुम्हें नचा मारेंगे"9। कारिन्दा की बात सुनकर मटरू आक्रोश में कहता है-"मैं ने मेहनत की, फसल उगायी, तो देखकर दाँत गड़ गये। चले हैं अब जमींदारी का एक जताने। आएँ न ज़रा हल कन्धे पर ले कर!। दिल्लगी है यहाँ खेती करना! भोले किसानों को बेवकूफ बनाकर रुपये एः्ं्ठ लिये। बेचारे वे मेहनत करेंगे और मसनद पर बैठे गुलछर्रेंउड़ाएँगे तुम्हारा जमींदार"10।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ। लेकिन स्वार्थी नेताओं ने उसका स्थान ग्रहण किया है। सती मैया का चौरा उपन्यास के मन्ने द्वारा गुप्तजी ने स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है-"आज़ादी के बाद जो उम्मीद बाँध हुए थे, उनमें क्या एक भी पूरी हुई है? उनकी हालत क्या किसी के रूप में सुधरी है? कितने ही किसान तो ज़मींदारों के खेत निकाल लेने के कारण अब मज़दूर बन गये हैं। मज़दूरी की खोज में भटक रहे हैं। तुम किसी भी किसान या मज़दूर को ले लो, उसके घर को जाकर देखो, उसके तन के कपड़े को देखो, उससे पूछकर समझो कि उसमें क्या परिवर्तन आया है?"11 गाँव की दयनीय दशा के बारे में आगे यही बताया गया है कि "ज़मींदार खत्म हो गये, महाजन टूट गये, लेकिन गाँव के किसान और मज़दूरों में क्या कोई परिवर्तन आया है? ज़मींदारजब तक रहे, उन्हें पीसते रहे। ज़मींदारी जब टूटी तो उन्होंने उसके टूटन के पहले ही अपने खेत बेच दिये या झूठे सहकारी फ़ारम खोल लिए या अपने रिश्तेदारों के नाम खेत लिख दिये"12।

गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में सहकारी खेती और पंचवर्षीय योजनाएँ जैसी ग्रामीण विकास योजनाओं के दुरुपयोग पर किसान और ज़मींदार

के बीच चलनेवाले वर्ग-संघर्ष को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त किया है। उनके धरती, शोले आदि उपन्यासों एवं कफ़न, टिड्डे, ज्योतिष आदि कहानियों में भी किसान-ज़मींदार संघर्ष का चित्रण किया गया है।

किसान-महाजन संघर्ष

भारतीय समाज में किसान-ज़मींदार संघर्ष की भाँति किसान-महाजन संघर्ष भी देखने को मिलता है। महाजन गाँवों में अभावग्रस्त किसानों को कर्ज देकर आतंक से वसूल करते हैं। पुलिस और सरकारी अधिकारियों से साठ-गाँठ कर उनकी ज़मीन-जायदाद हड़पना, पिटाई करना, बेगारी लेना, नारी की इज्जत लूटना, उन्हें जेल भिजवाना, कत्ल करना आदि इस तरह की गंदी हरकतें कर भोले-भाले, ग्रामीण किसानों को निर्दयदा से शोषण करते हैं। तभी गाँवों में किसान-महाजन संघर्ष उत्पन्न होती है। आज़ादी के बाद भी भारतीय गाँवों में यह स्थिति देखने को मिलती है, इस पर गुप्तजी प्रकाश डाले हैं।

किसान की रोजी-रोटी तो खेती पर निर्भर रहती है। इसलिए गरीब अवस्था में भी अपने पास जो कुछ भी हो चाहे अनाज हो, आभूषण हो, महाजन से गिरवी रखकर वे खेत लेना चाहते हैं-“इनकी सबसे बड़ी कमज़ोरी खेत और बैल-भैंस हैं। खेत पर ये जान देते हैं। किसी भी मूल्य पर खेत लेने के लिए तैयार रहते हैं”13 आग और आँसु उपन्यास में गुप्तजी ने इसका चित्रण किया है। गाँव में महाजन शंभू का मुनीम बही खोले बैठा है, जिसके चारों ओर किसानों की भीड़ लगी है। वे अपने संपत्ति एक-एक कर मुनीम के सामने रखकर पैसा माँग रहे थे-“जिसके पास जो कुछ था, वह रख रहा था, बेच रहा था, कोई अनाज तौल रहा था, कोई चाँदी के छोटे-छोटे गहनों को तौल रहा था, कोई सरखत पर अंगूठे का निशान लगा रहा था”14। ज्योतिष कहानी में गुप्तजी ने किसानों को शोषण करनेवाला एक महाजन का चित्रण किया है। कहानी में महाजन कहता है-“मेरे ग्राहकों में अधिकतर किसान थे। उन्हें बुद्धू बनाने में मुझे कोई भी कठिनाई नहीं हुई”15।

मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष

भारत में मशीनीकरण और औद्योगीकरण के फलस्वरूप मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष का आरंभ हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत का औद्योगिक विकास होने पर यहाँ बड़ी-बड़ी मिलें और वस्त्रों का बहिष्कार भारत के पूँजीपतियों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उन्होंने स्वदेशी मिलों की स्थापना करके इस अवसर का पूरा फायदा उठाया। मज़दूर तो उनके आर्थिक स्वार्थ की सिद्धी का साधन मात्र था। मज़दूरों को न तो अच्छा भोजन मिलता था और न ही औद्योगिक केन्द्रों में उनके आवास का कोई उचित प्रबंध था। इस कारण से देश में मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष अनिवार्य हो गया। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष का चित्रण किया है।देश में मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष के कारण दर्शाते हुए गुप्तजी अपने भाग्य देवता उपन्यास में छगनजी के माध्यम से कहते हैं-“मालिक हमेशा अपनी गोटी लाल करने की चिन्ता में रहता है, तो दूसरी ओर वर्करों को भी अपनी भलाई की चिन्ता रहती है और दोनों के बीच की लड़ाई लगातार तेज़ होती जाती है.......सभी मालिक वर्करों के दुर्भाग्य होते हैं, और उन सबसे वर्करों को लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती है”16।

मशाल उपन्यास में गुप्तजी ने श्रमिक मज़दूरों की यातनाओं का, कष्टों का और उनकी बढ़ती हुई संगठित शक्ति का वर्णन किया है। भारी औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप शहरों में मज़दूरों का एकत्रीकरण, पूँजीपतियों और मज़दूरों के हितों का टकराव और संघर्ष, मिल-हड़तालों, ताला-बन्दी आदि चित्रित हैं। उपन्यास में “मज़दूरों की न्यायपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति न करने वाले मिल मालिक और पूँजीपतियों को हम देख सकते हैं। उनके शोषण के विरोध में मज़दूर आन्दोलन होता है। वे हड़ताल को एक मात्र हथियार के रूप में स्वीकारते हैं। मज़दूरों का दमन, कांग्रस सरकार द्वारा कामरेडयूसुफ जैसे मज़दूर नेताओं की गिरफ्तारी, निहत्थी मज़दूरों पर लाठी चार्ज, गोलियों का प्रयोग, विभिन्न प्रकार के अत्याचार इन सबका वर्णन बड़ी तन्मयता से भैरवजी ने मशाल में किया है”17।

पूँजीपति वर्ग श्रमिकों का शोषण करते हैं। यह वर्ग ज़मींदारों की भाँति शोषितों को प्रत्यक्ष रूप से कोई शारीरिक कष्ट नहीं देता, बल्कि वह

उसको जोंक की तरह चूसता रहता है तथा उसके ह्मदय को धीरे-धीरे खोखला बनाता रहता है। वह शोषित व्यक्तियों को मनुष्य समझता ही नहीं। उसके मन में हमेशा अर्थ का ही विचार रहता है। गुप्तजी के भाग्य देवता उपन्यास में देश की असली स्वार्थी पूँजीपति का चित्रण देखने को मिलता है। उपन्यास में पूँजीपतिबाबुजी अपनी पत्नी से कहते हैं-"मेरे लिए, सच मानिए अब अच्छा पहनना ओढ़ना कोई माने ही नहीं रखता। मेरा ध्यान तो हमेशा असली बात पर रहता है कि धन, अधिक से अधिक धन मेरे पास कैसे आ सकता है"18।

मशाल उपन्यास में कानपुर के ऐतिहासिक मज़दूर आन्दोलन का प्रतिबिंब देखने को मिलता है। इसमें मज़दूरों की ताकत का चित्रण गुप्तजी ने शकूर के विचारों के माध्यम से स्पष्ट किया है। उपन्यास में शकूर का विचार मंजूर सकीना से कहता है-"हमारी ताकत के सामने हर ताकत सर झुकाती है। हमने यह दुनिया बनायी है। दुनिया की हर चीज़ हमारी ताकत से बनी है। दुनिया की हर चीज़ हमारी है। लेकिन...लेकिन दुनिया के चंद सरमायादारों ने इन चीज़ों पर अपना नाजायब हक जमा रखा है हमें बेवकूफ़ बनाकर, वे हमसे गुलामों की तरह काम कराते हैं और हमारी मेहनत की कमाई पर गुलछर्रें उड़ाते है"19। फिर वह रूस की क्रांति के बारे में कहता है-"रूस में गरीब किसानों और मज़दूरों ने वहाँ के सरमायादारों की ताकत से पहली बार टक्कर ली और दुनिया में एक नये इन्कलाब को कामयाब बनाया। दुनिया के सारे गरीबों, किसानों, मज़दूरों को एक नयी राह दिखायी। आज दुनिया के मज़दूर उसी राह पर आगे बढ़ रहा है।...हिन्दुस्तान का हर मज़दूर उसी राह पर चलेगा। वह राह ज़िन्दगी की राह है, खुशहाली की राह है, तरक्की की राह है।...उस राह पर चलनेवालाइन्सान इस्पात का बन जाता है और कभी भी हार नहीं खाता"20।

कफ़न कहानी में मज़दूर जीवन का दयनीय चित्रण गुप्तजी ने किया है । कहानी में रमुआ का जीवन मालिक के बुरे व्यवहार के कारण बहुत ही दयनीय एवं दु:खपूर्ण है। आज देश में सरकार ने जानवरों पर कियेजानेवाले अत्याचार पर कानून लगाया है, लेकिन आदमी द्वारा आदमी पर कियेजानेवाले अत्याचार की ओर आँख मूँदकर बैठे हैं। कहानी में मज़दूर रमुआ का विचार है-

"ओफ़, ये बाबू भी कितने कठोर होते हैं। एक छन को भी ख्याल नहीं होता कि उनकी मज़दूरी करनेवाला भी उनकी ही तरह का एक इन्सान है, जिसके हड्डियों के ढाँचे की ताकत की भी एक हद है, जिसके बाहर का काम लेना उस पर अत्याचार करना है! सरकार ने इक्के, टाँगे, बैलगाड़ी वगैरह की सवारियों और बोझों के लिए कानून बनाया है, ताकि घोड़ों और बैलों के साथ अत्याचार न हो सके। पर मज़दूरों के साथ जो बाबू लोगों का अत्याचार है, उससे जैसे सरकार को कोई मतलब ही नहीं है। जानवरों पर किया गया अत्याचार जुर्म है, पर आदमी द्वारा आदमी पर किया गया अत्याचार जैसे कोई बात ही नहीं! गधे से भी बदत्तर सलूक करते हैं ये...."21।

समाज की सारी तकलीफ़ें और परेशानियों का जड़ पूँजीवादी व्यवस्था ही बताते हुए गुप्तजी अपने भाग्य देवता उपन्यास में कहते हैं-"समाज की सारी तकलीफें और परेशानियों की जड़ यह पूँजीवादी व्यवस्था है, जो चन्द पूँजीपतियों की भलाई के लिए जनता का शोषण करती है, उसपर अत्याचार करती है, उसके जीवन को नष्ट करती है, समाज के विकास को रोकती है, करोड़ों लोगों को बेकार करती है, भूखों से मारती है, झोपडियों या फुटपाथों पर जिन्दगी बसर करने और भीख माँग कर गुज़ारा करने के लिए विवश करती है"22।

मौत का नशा कहानी में समाज से पूँजीवादी व्यवस्था मिटाने का आह्वान देते हुए गुप्तजी अपना कथा-पात्र यूनियन सेक्रटरी के माध्यम से कहते हैं-"सारा खून पीकर समाज के ये राक्षस इनसान को खोइये की तरह घूरे पर फेंक देते हैं, सड़ने-गलने के लिए। ये राक्षस जब तक हमारे समाज में बने रहेंगे, इनसान मुक्त नहीं हो सकता, उसे ज़िन्दगी में सुख-चैन नसीब नहीं हो सकता, हर घड़ी इनसान की गर्दन पर बेकारी, भुखमरी, दुःख, निराशा, दरिद्रता, असफलता की सलवारें लटकती ही रहेंगी। हमें इन्हें खत्म करना होगा। यह व्यवस्था बदलनी होगी, जिसमें लाखों-करोड़ों इनसानों की ज़िन्दगी मुट्ठी-भर दरिन्दों के हाथों में उनकी मर्जी पर छोड़ दी गयी है......"23। इस कहानी में वे आगे कहते हैं-"यह महंगी, यह बेकारी, यह तंगी क्यों रोज़-रोज़

बढ़ती जा रही है, और इनसानों के सिर पर ये परेशानियाँ कौन लाद रहा है और उनसे फ़ायदा उठाकर कौन अपनी तिजोरियाँ भर रहा है, ज़रा आँख खोलकर आप देखिए तो! आज इनसान की ज़िन्दगी और मौत चन्द राक्षसों के हाथ का खिलौना बन गयी है"24।

आज दुनिया के मज़दूर ने अपना हक समझ लिया है। वे जाग उठे हैं। सारे संसार में मज़दूर संगठित होकर पूँजीवादी शोषक वर्ग से संघर्ष कर रहे हैं। शोषक शक्ति के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है। गुप्तजी भी अपने कथा-साहित्य द्वारा मज़दूरों में आवेश और चेतना लाने का प्रयास किया है। यह प्रयास उनके मशाल उपन्यास में नरेन के शब्दों में प्रकट है-"मैं यह लड़ाई अपने खून की अंतिम बूँद तक लड़ूँगा, क्योंकि जीवन मुझे दुनिया की हर चीज़ से ज्यादा प्यारा है। प्यारा इसलिए नहीं कि उससे मुझे मोह है, बल्कि इसलिए कि वह संसार के सबसे अनमोल वस्तु है, उससे, उसकी शक्ति से हम दुनिया की इतिहास की वह सबसे बड़ी लड़ाई लड़ते हैं जो दुनिया को हमेशा के लिए खुशहाल कर देगी, इनसान-इनसान की ज़िन्दगी को हमेशा-हमेशा के लिए सर सब्ज कर देगी, इनसानियत के माथे से शोषण के कलंक को धो देगी, इनसान-दुश्मनों के पैदा किए हुए दुःख, गम, आँसु, भूख, गरीबी, नंगेपन को मिटा देगी"25।

गरीबी

भारत में अगर सबसे बड़ी कोई समस्या है, तो वह है गरीबी। भारत की 70 फीसदी आबादी अभी भी भरपेट खाना नहीं खा पाती है। अमीरी-गरीबी का फासला बढ़ते ही जा रहा है। गरीबी से पीड़ित लोगों को सहायता देने के लिए भारत सरकार कई राहत की योजनाएँ बना चुकी हैं, फिर भी हमारे देश में गरीबों की संख्या अधिक है। गरीब मज़दूर और किसानों को तथा छोटे-छोटे व्यवसाय करनेवालों को गरीबी के कारण जीवन जीना मुश्किल हो जाता है। गरीबी के कारणों में अशिक्षा, अज्ञान, जनसंख्या, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार आदि प्रमुख हैं।गुप्तजी का कथा-साहित्य जीवन की आर्थिक कुंठाओं और घुटन को लेकर है। उन्होंने देश की गरीबी को देखा है, सहा है। आज़ादी मिलने पर

भी भारत के गरीबी में कोई ज्यादा परिवर्तन नहीं हुआ। गरीब लोग पहले की तरह गरीब ही रहे हैं। गरीबी के कारण उन्हें दैनिक जीवन में अनेक यातनाओं को सहना पड़ता है। इसका मार्मिक एवं ह्मदयभेदक चित्रण गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में किया है।

टिड्डे कहानी में भारतीय गाँव की गरीबी का दयनीय चित्रण है-"औरतों की कमर से ऊपर के अंग भी फटी-पुरानी साड़ी के आँचल से ही ढँके हैं, कुर्ती या झूला कुछ नहीं है। बच्चों और बच्चियों की कमर में सिर्फ भगईलिपटीहै। सबके चेहरे सुखे हैं, आँखें सूनी हैं, पंसलियाँ गिनी जा सकती हैं, हाथ बेजान-लटके से हैं, टाँगे लड़खड़ाती हैं और पाँव नंगे और गन्दे हैं। मर्दों के सिर, दाढ़ी और मूँछ के बाल बढ़े, सूखे और बिखरे हैं और औरतों के सिर के बाल चील के खोते की तरह लगते हैं। न मर्दों को अपने शरीर की सुध है और न औरतों को"26।कफ़न कहानी में गुप्तजीरमुआ के परिवार की गरीबी पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-"यह रमुआ की स्त्री धनिया है! इसके कपड़े को न देखो! जैसे नग्नता भी लजा रही है!"27 लोहे की दीवार कहानी में बाबूजी के घर की गरीबी का चित्रण इस प्रकार है-"पिछले चार-पाँच महीनों से एकाध गड्डी धनिया की पत्तियों, दो-चार हरी मिर्ची और एक दो टमाटरों के सिवा सब्जी के नाम पर आया ही क्या था? एसा ही चल रहा है, आजकल। घर में चीज़ का अकाल पड़ा हुआ है। रोटी-चटनी के भी लाले पड़े हुए हैं"28। एक पाँव जूता कहानी में गरीबी से पीड़ित एक परिवार का चित्रण इस प्रकार है-"कैसे कटे थे बब्बू की माँ के वे दिन! भगवान दुश्मन को भी न दिखाये वैसे दिन। लोग उनके पास भी आते सहमते। घर में एक दाना नहीं। रात को कोई पड़ोसी सोता पड़ने पर छुपकर कुछ खाने को दे जाता, तो अधम काया की भूख मिटती, वर्नाफ़ाका"29।

सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजी ने देश में व्याप्त गरीबी की नग्न चित्रण की है-"घर निहायत गंदा था, एसामालुम होता था कि झाड़ू तक न लगती हो। फर्श पर, दीवारों पर गर्द जमी थी। चारों ओर बीड़ी के जले हुए टुकड़े, दियासलाई की जली हुई तीलियाँ, पीक, पान की सीठियाँ और मुर्गियों

और कबुतरों की बीटें बिखरी पड़ी थी। सामान के नाम पर तीन-चार खाटें, एक छोटा तख्त, कुछ मामूली बिस्तरें, दो मिट्टी के घड़े और अल्मोनियम के कुछ बर्तन थे। जिल्ले मियाँ, भाभी और उनके लड़कों के शरीर के कपड़ों पर भी घर की दशा की ही छाप थी"30। इसी उपन्यास में मुन्नी अपने गाँव की शोचनीय अवस्था को दिखाकर कहता है-"जिनके पास दो जून खाने को अन्न नहीं, तन ढकने को कपड़े नहीं, जो खेत की उपज बढ़ाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं, लेकिन बेचारे कुछ कर नहीं पाते, क्योंकि उनके पास न पर्याप्त साधन है, न सुविधा"31।

कफ़न कहानी में, देहातों में गरीबी की वजह से लोगों के पास कफ़न खरीदने तक पैसा नहीं है, लेकिन वहाँ के अमीर लोगों के पास उनके जानवरों को कफ़न खरीदने के लिए पैसा है। "आखिर उस गरीब की लाश एक पुराने, फटे-नुचे कपड़े से ढक गंगा में लुढ़का दी गई। पर आज इस सेठ की भैंस के कफ़न के लिए नई दरी और मलमल का इन्तजाम हो रहा है। गरीब मज़दूर और सेठ की भैंस-इनसान और जानवर ! मगर नहीं, गरीब इन्सान का रुतबा उस जानवर के बराबर नहीं है, जिसका सम्बन्ध एक दौलत वाले से है! यह दौलत है, जो एक इन्सान को जानवर से भी बदतर गया-गुज़रा बना देती है, और एक जानवर को इन्सान से भी उँचा रुतबा दिलाती है! यह दौलत है, जिसके शिकज्जों में कस कर इन्सानित का गला घुट जाता है, और जिसके साये में पशुत्व भी मौज की जिन्दगी बिताता है!"32।

समाज में महंगाई गरीबी का प्रमुख कारण है। आज के सरकार महँगाई पर काबू नहीं पा रही है। पेट्रोल, डीज़ल का दाम बढ़ता जा रहा है। अनाज के दाम में आग लगी हुई है। वहीं दूसरी तरफ़ मज़दूरी करनेवाले मज़दूर का सब तरह से शोषण हो रहा है। उन्हें नाम मात्र की मज़दूरी मिल रही है। भारतीय गाँवों में जाकर इनकी बदहाली को देख सकता है। इसका उल्लेख गुप्तजी ने मशाल उपन्यास में इस प्रकार किया है-" हम रोज़ आठ घण्टे छाती फाड़कर काम करते हैं और जानते हो क्या मिलता है? सवा डेढ़ रूपया रोज़। इस महंगाई के जमाने में इससे दो जून भरपेट रोटी चलाना और एक जोड़े

कपड़े बनवाना, घर का किराया क्या मुमकिन है? गाँव में देखते हो किसान मज़दूर कितना काम करते हैं? लेकिन किसी को दो जून भरपेट मयस्सर होता है? किसी के तन पर कभी साबित कपड़े देखने को मिलते हैं?"33।

गरीबी के कारण भरपेट भोजन न मिलने पर परीक्षा में उत्तीर्ण होना असंभव बन जाता है। इसका दर्दनीय विवरण गुप्तजी ने ज्योतिष कहानी में प्रस्तुत किया है-"मुझे भर पेट खाना मिला होता तो मेरा कोई भी पर्चा खराब न होता। मैं ने हाईस्कूल द्वितीय श्रेणी में पास किया था, चाचाजी।"34। इसी कहानी में गरीबी का विकराल रूप भी देखने को मिलता है। गरीबी के कारण परिवारों में खाने का एक भी चीज़ उपलब्ध नहीं होता, तब परिवार के सदस्य जो मिले वह खाने के लिए विवश होते हैं। इसका प्रतिपादन करते हुए गुप्तजी कहते हैं-"भूख भैया, बड़ी जालिम चीज़ है, उसकी आवाज़ कहीं बड़े गहरे से आती हुई सुनायी दी, भूख में लोग गोली भी खा लेते हैं"35।

देश के किसान-मज़दूर दिन भर तन-तोड़ मेहनत करके अपने परिवार चलाते हैं, फिर भी उनके परिवार में गरीबी हैं। वे एक भी क्षण सुख का अनुभव नहीं कर पाते। इसका चित्रण धरती उपन्यास में चित्रित है-"हमारे देश के गरीब किसान और मज़दूर अपने जीवन निर्वाह के लिए हाड़-तोड़ मेहनत करते हैं, फिर भी वे सुखी नहीं है"36।

गरीबी एक देश का अभिशाप है। गरीबी के कारण देश उन्नति नहीं पा सकता। देश में उन्नति नहीं तो वहाँ के लोगों का हाल क्या होगा? अगर लोगों में गरीबी है तो उनके जीवन में खुशी कैसे आएगी? इसलिए देश से गरीबी को हटाना चाहिए ताकि भारतीय परिवारों में खुशी ला सके। एक पाँव जूता कहानी में गुप्तजी ने बाबूजी के माध्यम से गरीबी दूर होने की आशा करके कहते हैं- "हाय हम कितने गरीब हैं, कितने दुखी हैं। जिस दिन यह गरीबी दूर होगी, दर असल वही खुशी का दिन होगा"37।

अकाल

समाज में ग्रामीण लोग अर्थाभाव से अभावग्रस्त ज़िन्दगी जी रहे हैं। गरीबी उनके लिए शाप सिद्ध हुई है, उससे वे अनेक यातनाएँ सहते हैं। उसी

प्रकार अकाल भी जनजीवन पर गहरा असर डालता है। अकाल से खेती-बाड़ी नष्ट हो जाती है। नदी, नाले, कुएँ, नहर, तालाब सूख जाते हैं। इसलिए खेती और पीने के लिए पानी नहीं मिलता। मनुष्य को अनाज, जानवरों को घास और पशु-पक्षियों को खाने के लिए कुछ न मिलने से वे तड़प-तड़प कर मरते हैं। गाँव उजड़ जाते हैं। गुप्तजी अकाल से समाज के जनजीवन पर किस प्रकार का भयंकर प्रभाव पड़ता है, पीड़ाग्रस्त जीवनयापन करते हैं, इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

चरम बिन्दु कहानी में गुप्तजी ने देश में घटित अकाल का चित्रण बहुत ही वेदनाजनक ढंग से किया है। कहानी में रामधन के गाँव एवं उसके जीवन में अकाल का भीषण रूप इस प्रकार वर्णित है-"उस चाँदनी से रामधन की आँखें जल रही थीं। उन्हें ऐसा लग रहा था कि यह चाँदनी नहीं है, सफ़ेद-सफ़ेद साँप लहरा रहे हैं और गरीबों को डंस रहे हैं। सावन बीत रहा है। एक बूँद पानी अभी तक नहीं पड़ा। इस साल भी भदई मारी गयी। यह मार-पर मार कैसे बर्दाश्त होगी। अकाल पड़ गया है। एक मुट्ठी दाना नज़र नहीं आता। कस्बे के बाज़ार में धूल उड़ रही है। पहले भी तो सूखा पड़ता था, लेकिन इस तरह से गल्ला कभी एकदम गायब न होता था"38। इसी कहानी में गुप्तजी अकाल का रूप और भी दर्दानाक बताया है-"रामधन ने सकपकाकर जोतें खींचीं। बैल ठिठककर खड़े हो गये। सामने अनगिनत नर-कंकाल खड़े थे"39।

इसी प्रकार सेवाश्रम उपन्यास में रंभा चाचाजी से कहती है-"सुबह-ही-सुबह बाहर शोर सुनकर मैं अपने कमरे से बाहर आयी, तो क्या देखती हूँ कि विद्यालय के मैदान में कुछ मर्द-औरतों की भीड़ लगी हुई है, आभा देवी ज़ोर-ज़ोर से उन्हें डाँटकर बाहर जाने को कह रही हैं और वे लोग आभा देवी के सामने हाथ फैला-फैलाकर, गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर कुछ माँग रहे हैं। मैं सहज जिज्ञासावश ही उनके पास चली गयी। भीड़ में एक-दूसरे से गूँथे हुए कंकाल स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों को सूखे हाथ उठाये और दाँत चियारे खाने को कुछ माँगते देखकर मेरी तो आत्मा काँप उठी"40।

टिड्डे कहानी में अकाल का चित्रण इस प्रकार है-"ताल ही गरीबों के जीवन का सहारा रह गया है। और कोई भी सहारा नहीं है, न अन्न, न धन। एक जल के न होने से गाँव कैसे रेगिस्तान बन गये हैं, जैसे चारों ओर हू का आलम हो"41।

मूल्य-वृद्धि

प्रत्येक देश की अपनी विभिन्न समस्याएँ होती हैं, जिनमें बढ़ते हुए मूल्यों की समस्या सबसे अधिक भयंकर है। इसका प्रभाव जनमानस पर गहरा पड़ता है। इसके परिणाम स्वरूप बड़े-बड़े आर्थिक विकास के कार्यक्रम आगे नहीं बढ़ पाते। देश की अर्थ-व्यवस्था को मज़बूत और स्थायी बनाने के लिए मूल्यों पर नियंत्रण करना अति आवश्यक है। मूल्य वृद्धि के लिए विभिन्न कारण उत्तरदायी होते हैं-वस्तुओं की माँग तथा पूर्ति में असंतुलन होना, वितरण व्यवस्था में कमियाँ, आर्थिक नियोजन की त्रुटियाँ, मुद्रा का अत्यधिक प्रसार, जनता की क्रय क्षमता में वृद्धि, अत्यधिक काले-धन, जमाखोरी, मुनाफ़ा खोरी तथा काले बाज़ार की प्रवृत्ति, परिवर्तित सामाजिक परिवेश तथा राजनीतिक वातावरण, उत्पादन की अपेक्षा मज़दूरी में वृद्धि, अत्यधिक हड़ताल, तालेबंदी आदि।

मूल्य वृद्धि रोकने के लिए भारत सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। सरकार ने खाद्य पदार्थों का आयात, औद्यौगिक विकास के लिए कल-पुर्जों का आयात पहले की अपेक्षा बढ़ा दिया है। इसके अलावा राष्ट्रीय व्यापार निगम, खाद्य निगम की स्थापना, बड़े नगरों में उच्च बाज़ार-व्यवस्था, सामान्य बाज़ारों की स्थापना, जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए परिवार नियोजन को बढ़ावा, भारत रक्षा नियम अधीन अनिवार्य वस्तु अधिनियम जारी किये हैं। गुप्तजी के कथा-साहित्य में मूल्य-वृद्धि की समस्या का विस्तृत चित्रण देख सकते हैं। लोहे की दीवार कहानी में बाबूजी का कथन इसका प्रमाण है। कहानी में बाबूजी अपनी पत्नी से कहते हैं-"क्या जमाना आ गया है! एक-एक आने गड्डी धनिया की पत्ती बिक रही है। दो ही साल पहले तो, तुम्हें मालुम है, जब हम आजकल के दिनों में सब्जी खरीदते थे, तो सब्जीवाले एक-एक गड्डी धनिया की पत्ती और एक-

एक मुट्ठी हरी मिर्चें यों ही झोले में डाल देते थे”42। इस प्रकार का प्रसंग गुप्तजी की ज्योतिष में भी देखने को मिलता है। कहानी में ग्राहक कहता है- “अपनी ही ज़िन्दगी में मैं ने चार आने सेर देशी घी की पूड़ी खायी है, भैया। एक वह जमाना था और एक आज का जमाना है। समझ में नहीं आता क्या हो गया”43। कफ़न कहानी में महँगाई से पीड़ितरमुआ और धनिया के परिवार की दयनीय दशा देखकर गुप्तजी स्वयं कहते हैं-“पता नहीं कि गरीब धनिया इस महँगी के जमाने में कैसे अपना खर्च पूरा कर पाती है”44।

बेरोज़गारी

इक्कीसवीं सदी की ओर अग्रसर विज्ञानी मानव अनेक अभिशापों से ग्रसित है। बेरोज़गारी उनमें से एक भयंकर अभिशाप है। वर्तमान आर्थिक युग में जीविकोपार्जन ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य रह गया है। किसी देश में कम से कम बेरोज़गारों का होना वहाँ की आर्थिक प्रगति और विकास का परिचायक होता है। जब जनसंख्या की वृद्धि आर्थिक विकास वृद्धि से अधिक हो जाती है, तब बेरोज़गारी का उदय होता है। बेरोज़गारी का अर्थ काम के अवसरों की कमी है।भारत में बेरोज़गारी का रूप भयंकर बन गया है। साधारण या उच्च शिक्षा प्राप्त अनेक युवक-युवतियाँ रोज़गार कार्यालयों में लाईन लगाकर कई दिनों तक दस बजे से पाँच बजे तक खड़े रहने पर भी, केवल बेरोज़गारी में नाम ही लिखा पाता है। फलस्वरूप उसके मन में इस देश और समाज के प्रति विरक्ति की भावना उत्पन्न होती है। इसी भावना का फल है कि भारत जैसे आध्यात्मिक देश में भी आत्महत्याओं की अधिकता होती है। बेरोज़गार युवक देश के लिए विनाशकारी, अनुशासन हीन, विद्रोही और क्रांतिकारी बन जाते हैं। इसलिए देश का सर्वप्रथम कर्तव्य बेरोज़गारी दूर करना है और जन-सामान्य को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर प्रदत्त करना होता है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से समाज में प्रचलित बेरोज़गारी का चित्रण किया है।

भारतीय गाँवों में युवक पढ़-लिखकर बड़े हो जाते हैं, तब उनके सामने नौकरी की समस्या खड़ी हो जाती है। वे नौकरी के लिए कोशिश करते हैं, किन्तु नौकरी न मिलने से वे बेकार रहते हैं। गुप्तजी के सती मैया का चौरा

उपन्यास में मुन्नी ने बेरोज़गारी के प्रति अपना विचार व्यक्त किया है। मुन्नी सोचता है-"ओह! बेकारी कितना बड़ा अभिशाप है! यह इन्सान को मुर्दा बना देता है"45। अन्त में गाँव में काम न मिलने पर माँ-बाप को बिना बताए गाँव छोड़कर मुन्नी नौकरी की तलाश में मद्रास जाने की तैयारी करता है।समाज में आज पढ़े-लिखे युवकों के सामने बेरोज़गारी एक प्रश्न चिह्न है। पढ़ाई के समय युवक यही महत्वाकांक्षा रखते हैं कि अध्ययन के बाद उन्हें कहीं न कहीं नौकरी मिलेगी। पर पढ़ाई के बाद नौकरी न मिलने पर वे दु:खी बन जाते हैं। उनकी आशाएँ टूट जाती हैं।

"-तुम ने अपनी महत्वाकांक्षा के संबन्ध में क्या बताया-आफ़ताब ने पूछा।

-मैं ने बताया कि मेरी कोई भी महत्वाकांक्षा नहीं है-सरल ने बताया-मुझे एक नौकरी चाहिए, कोई भी"46।

हमारे समाज में शिक्षित और अशिक्षित सभी प्रकार के बेरोज़गार देखे जा सकते हैं। पर उनमें शिक्षितों की संख्या अधिक रहती है। इसका उल्लेख करते हुए छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरल कहता है-"मैं नौकरी के लिए एक जमाने से भूखा हूँ। लेकिन आज तक किसी ने एक नेवाला भी मेरी थाल में नहीं डाला! मैं नौकरी तलाशते हुए पढ़ाई आगे बढ़ाता रहा। नौकरी नहीं मिली और मैं परीक्षा पर परीक्षा पास करता गया"47।ज्योतिष कहानी में गुप्तजी ने समाज में व्याप्त बेरोज़गारी का गंभीर रूप चित्रण किया है। कहानी में सदानन्द के पिता ने उन्हें इसलिए पढ़ाया कि पढ़-लिखकर सदानन्द को नौकरी मिलेगा, तब परिवार से गरीबी हट जाएगी। लेकिन वैसा नहीं हुआ तो घर की हालत से आजिज आकर पिताजी ने सदानन्द से कहा-"तू पढ़ा-लिखा होकर हमारे साथ यहाँ क्यों भूखों मर रहा है? जाकर कहीं कोई नौकरी-चाकरी क्यों नहीं ढूँढ़ता? आँख से ओझल कहीं तू भूखों मर भी जायेगा तो हमें उतना दु:ख नहीं होगा जितना यहाँ तुझे भूखे देखकर होता है" । यह सुनकर सदानन्द कहता है-"मैं क्या करता, कहाँ जाता?" 48

'अपरिचय का घेरा' कहानी में बेकारी की समस्या मुख्य रूप से दिखाई पड़ती है। कहानी में कई युवक बेकारी के कारण जीवन से जैसे हारे हुए

लगते हैं। इसी तरह गाँव का लछमन भी बेकार है। घर में माँ-बाप, भैया-भाभी लछमन को डाँटा करते हैं कि वह किसी काम पर जाए। खाना खाते समय, उठते-बैठते समय यहाँ तक कि हर समय उसे डाँट खानी पड़ती थी। असह्य लछमन काम की तलाश में गाँव छोड़कर मद्रास चला जाता है। वहाँ पर जाकर घरेलु बच्चों को पढ़ाने के काम में लग जाता है, जिससे कमाई भी अच्छी होने लगती है। लछमन को बार-बार गाँव की याद आती थी। शहर में हर तरह की सुख-सुविधाएँ होते हुए भी लछमन अपने आप को अकेला महसूस कर रहा था। गाँव जाने की सोचता, लेकिन फिर उसे लगता कि अगर वह गाँव लौटेगा तो घरवालों से फिर बेकारी के कारण ताने-बाने सुनने होंगे, यह सोचकर मज़बूरन उसे मद्रास में ही रहना पड़ता है।

समाज में आज नौकरी मिलना है तो सिर्फ शिक्षित होना ही नहीं बल्कि घूस भी देना पड़ता है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में गुप्तजी ने सरल के भाई द्वारा इसका उल्लेख किया है। सरल का भाई कहता है-"नौकरी की तलाश में तो वह मिडिल पास करने के बाद से ही लगा है। उसे नौकरी कहाँ मिलेगी? दो बार तो यहाँ की पुलिस ही उसके खिलाफ रिपोर्ट कर चुकी है। डाक खाने में और फिर रेलवे में वह चुन लिया गया था। पुलिस रिपोर्ट भेजने के लिए पाँच हज़ार और दस हज़ार रुपये माँगे थे। इतने रुपये बड़े भैया कहाँ से देते, वे एक हज़ार और पाँच सौ तक देने को तैयार थे। लेकिन नायब ने इनकार करते हुए कहा, मैं ने आपकी औकात को ध्यान में रखकर ही कम से कम माँगा है। रेलवे में टी.टी की जगह है, लड़के की नियुक्ति हो गयी, तो वह एक-दो महीने में ही दस हज़ार पीट लेगा। डाक खाने की नौकरी प्रतिष्ठा की और उन्नति की दृष्टि से बहुत अच्छी है। यों तो उसे नैकरी मिलेगी नहीं"49।

शहरीकरण

शहरीकरण मुख्यत: औद्योगीकरण की देन है। भूख तथा बेकारी से व्याकुल गाँववाले शहरों की तरफ़ भाग रहे हैं। शहरों में औद्योगीकरण बढ़ रहा है। इस स्वतंत्र देश की धुरी माननेवाले किसान बरबाद हो रहे हैं। जमींदार व पूँजीपति मज़दूरों का शोषण कर रहे हैं और अपने निजी स्वार्थों के लिए उन्हें

मरवा भी डालते हैं। शहरीकरण के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था का ह्रास हो जा रहा है। औद्योगीकरण पर केन्द्रित नीतियों के कारण कृषि पिछड़ती जा रही है। देश के गाँवों के लोग अतीत में कष्ट भोगा था, वर्तमान में भोग रहे हैं और भविष्य में भी निराशाजनक है। हालत यह है कि शहर से शिक्षित ग्रामीण युवक भी वापस लौटना नहीं चाहते। परिष्कृत कृषियंत्र, अच्छी खाद, उन्नत बीज, योजनाबद्ध सिंचाई व्यवस्था, धरती पर कृषि योग्य भूमि, रोज़गार के अवसरों आदि के अभाव के कारण किसान या तो आत्महत्या करने का विकल्प पाते हैं या रोजी-रोटी की तलाश व जीविकोपार्जन की इच्छा, आधुनिक जीवन का आकर्षण, बेहत्तर अवसर की तलाश आदि के कारण शहरों की ओर पलायन करते हैं। इसका चित्रण गुप्तजी के कथा-साहित्य में देखने को मिलता है।

कफ़न कहानी में ज़मींदार के अत्याचारों से पीड़ितरमुआ गाँव छोड़कर शहर पहूँचता है। रमुआ गाँव में एक अच्छा किसान था, लेकिन ज़मींदार के अन्याय से किसान रमुआ शहर में आकर जीने के लिए मज़दूर बन गया। इसका विवरण कहानी में गुप्तजी ने इस प्रकार किया है-“ज़मींदार ने अपने खेत निकाल लिये। लड़ाई के कारण गल्ले की कीमत अठगुनी-दसगुनी हो गई। खेतों का लगान भी उसने इसी तरह बढ़ाना चाहा, पर उतने लगान पर जोतने से मिलता ही क्या? कितना रोया-गिड़गिडाया था वह! पर ज़मींदार क्यों सुनने लगा कुछ? लगान का बढ़ाना तो एक बहाना था। वह जानता था कि इतना लगान कोई दे नहीं सकता। हुआ ही वही। उसने खुद खेतों पर अपना हल चलवा दिया। कल का किसान आज मज़दूर बनने को विवश हो गया। पड़ोस के धेनुका के साथ वह गाँव में अपनी स्त्री धनिया और बच्चे को छोड़, शहर में आ गया”50।

इस प्रकार का संदर्भ गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास में भी दर्शनीय है। उपन्यास में मुन्नी गरीब परिवार का लड़का है। उन्हें गाँव में मज़दूरी न मिलने से उसके परिवार को भूखा रहना पड़ता है। वह काम की तलाश में मद्रास चला जाता है। इसका वर्णन करते हुए उसका दोस्त कहता है-“वह आज मद्रास में कोई मामूली नौकरी कर रहा है”51। छोटी सी शुरुआत

उपन्यास में सरल काम की तलाश में लखनऊ चला जाता है-“गाड़ी लखनऊ आठ बजे सुबह पहुँची। दो घंण्टे लेट थी। सरल ने प्लेटफार्म पर ही नहा-धोकर कपड़े बदले और एक टी-स्टाल से दो टोस्ट नमक के साथ खाकर पानी पिया”52। लेकिन वहाँ उन्हें अच्छी नौकरी नहीं मिली तो वहाँ छोड़कर दिल्ली गया। वहाँ भी काम पर असंतुष्ट होकर मद्रास के लिए रवाना होता है।

भारतीय गाँवों में उन्नत शिक्षा पाने की सुविधा नहीं है, इसलिए गाँव के शिक्षित युवक-युवतियाँ उन्नत शिक्षा एवं नौकरी प्राप्त करने के लिए शहर की ओर भाग रहे हैं। शहर में पहुँचकर वे वहाँ के चकाचौंध में फँस जाते हैं, फिर अपने गाँव वापस नहीं आते। बिगड़े हुए दिमाग कहानी में धीरेन“गाँव की पढ़ाई खत्म कर वह शहर के हाई-स्कूल में पढ़ने जाने लगा”53। उसी प्रकार छोटी सी शुरुआत उपन्यास में आफ़ताब उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपना गाँव छोड़कर इलाहाबाद चला जाता है। उपन्यास में आफ़ताब कहता है-“मैं बी.ए में अडमिशन लेने के लिए सात जुलाई को इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ और आठ जुलाई को पहुँच गया”54।

वर्तमान गाँवों के युवक गरीबी के कारण अपना परिवार छोड़कर काम की तलाश में शहर की ओर जा रहे हैं। शहर में पहुँचकर अगर उन्हें काम नहीं मिलता, तो भी वे गाँव वापस आने की इच्छा नहीं रखते हैं। इसका उल्लेख करते हुए गुप्तजी टिड्डे कहानी में कहते हैं-“कस्बे या शहर गाँवों से बहुत दूर है, जब तक शरीर में दम था, सुबह वहाँ काम की तलाश में जाते थे। कुछ को काम मिलता था और कुछ को काम न मिलने से लौट आना पड़ता था। जिन्हें कोई स्थायी काम मिल गया था, उन्होंने अपने गाँवों को ख़ैरबाद कह दिया था। वे कभी-कभी कुछ पैसे अपने परिवार को भेजते थे”55।

आर्थिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में गुप्तजी के कथा साहित्य का अध्ययन करने पर यह लक्षित हुआ कि भारत के लोग आर्थिक अभावों में अपना जीवन यापन कर रहे हें। आर्थिक अभाव ही लोगों की सबसे बड़ी समस्या रही है और उसके साथ जूझते आए हैं। आज़ादी के पहले विदेशी शासन काल में देश की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ था। आज़ादी के बाद ज़मींदार, पूँजीपति,

सेठ, साहूकार, सरकारी अदिकारी, राजनीतिक नेता आदि के शोषण और अत्याचारों से देश का जन-जीवन खोखला और मायूस बना है। इसके साथ-साथ देश के लोगों का अज्ञान, अशिक्षा, झूठी प्रतिष्ठा, अंधविश्वास, प्राकृतिक प्रकोप आदि से उनकी आर्थिक स्थिति पर गहरा असर पड़ा है। देश के अधिकांश लोग आज भी अपनी दैनिक जीवन में आवश्यक ज़रूरतों की पूर्ति करने में असमर्थ हैं। देश में प्राकृतिक प्रकोपों के कारण खेती में काम करनेवाले मज़दूर, छोटे-छोटे किसान और छोटे-छोटे उद्योग करनेवाले लोग गाँव छोड़कर रोज़गार की तलाश में नगर की ओर जा रहे हैं।

संदर्भ

1. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, सुनन्दा पालकर, पृष्ठ सं 275
2. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 303
3. वही, पृष्ठ सं 304
4. गंगा मैया, पृष्ठ सं 47
5. वही, पृष्ठ सं 108
6. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 99
7. वही, पृष्ठ सं 119
8. गंगा मैया, पृष्ठ सं 42
9. वही, पृष्ठ सं 28
10. वही, पृष्ठ सं 28
11. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 369
12. वही, पृष्ठ सं 368
13. गंगा मैया, पृष्ठ सं 57
14. आग और आँसु, पृष्ठ सं 39
15. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 105
16. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 224
17. भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, डॉ.एलसम्मा, शोध-प्रबन्ध, पृष्ठ सं.119
18. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 388
19. मशाल, पृष्ठ सं 108-109

20. वही, पृष्ठ सं 109
21. कफ़न (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 28
22. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 228
23. मौत का नशा (आँखों का सवाल कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 75
24. वही, पृष्ठ सं 76
25. मशाल, पृष्ठ सं 114
26. टिड्डे (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 154
27. कफ़न (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 36
28. लोहे की दीवार (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 57
29. एक पाँव जूता (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 132
30. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 202
31. वही, पृष्ठ सं 368
32. कफ़न (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 38
33. मशाल पृष्ठ सं 182
34. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 84
35. वही, पृष्ठ सं 95
36. धरती, पृष्ठ सं 77
37. एक पाँव जूता (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 134
38. चरम बिन्दु (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 78
39. वही, पृष्ठ सं 79
40. सेवाश्रम, पृष्ठ सं 36
41. टिड्डे (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 155
42. लोहे की दीवार (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 62
43. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 91
44. कफ़न (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 32
45. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 85
46. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 62
47. वही, पृष्ठ सं 24
48. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 85
49. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 72

50. कफ़न (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 31
51. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 79
52. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 208
53. बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 11
54. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 37
55. टिड्डे (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 155

अध्याय 5
राजनैतिक दृष्टिकोण में भैरवप्रसाद गुप्त का कथा-साहित्य

साहित्य और राजनीति एक दूसरे से तरंगित और प्रभावित होते हैं। अज्ञेय का मत है-"साहित्य और राजनीति को दो पृथक और विरोधी तत्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के से संघर्ष युग में यह मूर्खता पूर्ण सा ही है"1। जिस प्रकार जीवन और साहित्य के बीच अटूट संबन्ध है, उसी प्रकार जीवन और राजनीति में भी है। अरस्तू ने लिखा है-"मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। राजनीति की जड़ें मनुष्य की भावना से जुड़ी हुई है"2। यही कारण है कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति व्याप्त है। ग्रामीण लघु समाज से लेकर नागरिक बृहत समाज तक राजनीति के विविध आयाम है।आज का समाज राजनीति की धुरी पर घिस रहा है। चुनाव और सत्ता की राजनीति ने भारतीय जन-चेतना को बुरी तरह रौंद डाला है। आज़ादी के पहले जिन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया था उनमें से कई नेता आज़ादी के पश्चात् स्वार्थी और भ्रष्टाचारी बन गये। चरित्रहीन, स्वार्थी, भ्रष्टाचारी, गिरगिट की तरह दल बदलू अवसरवादी नेताओं ने राजनीति को खिलवाड़ बना दिया है। राजनीति के कुप्रभाव से उद्भूत विसंगतियाँ जीवन के विविध आयामों को प्रभावित कर रही है और देश का उज्ज्वल स्वरूप बहुत हद तक नष्ट होता जा रहा है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में आज़ादी के पूर्व और बाद के देश की राजनीति से जुड़े सभी पहलुओं का चित्रण किया है।

स्वतंत्रता आन्दोलन

स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और उसे हम लेकर रहेंगे यह नारा राष्ट्र नेता बाल गंगाधर तिलक का था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा पराधीन सपनेहु सुख नाहीं। हमारा देश भी पराधीनता के गहरे अन्धेरे कुएँ में गिरकर कराह रहा था। भारत माता अंग्रेज़ शासकों के कारागार में कैद थी। उसकी आत्मा तड़प रही थी। उसके पैरों में बेड़ियाँ तथा हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई थी। ऐसे समय में हमारी जन्म-भूमि के तपस्वी महापुरुषों तथा माँ के

सपूतों ने माँ की स्वतंत्रता का बीड़ा उठाया। वे गुलामी की जंजीरों को काटने के लिए कटिबद्ध हो गये। कहा जाता है कि अंग्रेज़ों के राज्य में सूरज कभी नहीं डूबता था, परन्तु भारतीयों के अथक प्रयास से उसको डूबना पड़ा।अंग्रेज़ों के अत्याचार सहते-सहते भारतीयों का सोया स्वाभिमान जाग उठा। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने अंग्रेज़ी शासन को हिला दिया। इसके बाद भारत का प्रत्येक स्वाभिमानी नागरिक क्रांतिकारी बन गया। सरदार भगत सिंह, राम प्रसार बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद आदि अनेक क्रांतिकारियों ने हँसते-हँसते स्वयं को देश के लिए बलिदान कर दिया। वीरता के साथ सीनों पर गोलियाँ खायीं पर हार नहीं मानी। राष्ट्रपितामहात्मागाँधीजी के नेतृत्व में अहिंसा आन्दोलन चलाया। अन्त में बलिदानी वीरों का सपना पूरा हुआ और 15 अगस्त 1947 को हमारा देश भारत पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन एवं ब्रिटिश आतंक का चित्रण बहुत ही ह्मदयभेदक ढंग से चित्रण किया है। गुप्तजी का परिवार भी इस आन्दोलन में भाग लिया था एवं अपने दो भाई ब्रिटिश आतंक का शिकार बने।

सन् 1920 में गाँधिजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन आगमन हुआ। असहयोग कार्यक्रम के अन्तर्गत मानक उपाधियों का त्याग, सरकार द्वारा चलाए जानेवाले विद्यालयों तथा काँलेजों का छात्रों द्वारा बहिष्कार एवं इसके स्थान पर राष्ट्रीय स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना हुई। ब्रिटिश न्यायालयों, विद्यालयों एवं नागरिक सेवा का बहिष्कार किया गया। गुप्तजी असहयोग आन्दोलन की याद दिलाते हुए कहानी कौड़ों की बौछार में कहते हैं-“देश में असहयोग का आन्दोलन छिड़ा। दोनों भाई हाई-स्कूल के आठवें दर्जे में पढ़ रहे थे। उस समय मँझले भैया की उम्र सोलह साल और छोटे की उम्र तेरह साल थी। असहयोग का आन्दोलन जब चला, तो स्कूल के विद्यार्थियों ने भी एक सभा की। बड़े-बड़े लड़कों की एक समिति पिकेट्टिङ की योजना को कार्योन्वित करने के लिए बनाई गई”3।

स्वतंत्रता आन्दोलन में सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। 8 अगस्त 1942 की मुंबई बैठक में कांग्रेस ने भारत छोड़ो की घोषणा की। जिसमें प्रस्ताव था ब्रिटिश शासन की समाप्ति तथा अविलंब एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की माँग। तद्पश्चातगाँधिजी एवं अन्य नेताओं को जेल में डाल दिया गया। गाँधिजी की गिरफ्तारी की खबर सुनकर देश की जनता बागडोर अपने हाथों में ले ली। इसका चित्रण गुप्तजी ने कौड़ों की बौछार में किया है-"अगस्त, 1942 का जमाना आया। बड़े नेताओं की अनुपस्थिति में जनता ने स्थिति की बागडोर अपने हाथों में ले ली। जमाने की अपमानित, मजलूस, सताई हुई, कुचली हुई, नंगी, भूखी जनता आज पहली बार, किसी का भी अनुशासन न होने के कारण आज ही दासता की जंजीर तोड़, मस्त हो, हुँकारती हुई, दुश्मनों के सिर तोड़ने को वैसे ही निकल पड़ी, जैसे मौका पा पिंजड़े का शेर हुँकारता हुआ निकल पड़ता है"4।

स्मारक कहानी में सन् 1942 के आन्दोलन का चित्रण गुप्तजी ने विस्तार से इस प्रकार किया है-"अगस्त, सन् 1942! क्रांन्ति के दिन! बलिदान के दिन!, ग्यारह अगस्त! सुर्योदय का समय! थाने के सामने मंड़ल के गाँवों के हज़ारों नौजवान समुद्र की तरह मर्यादा में बँधे, परायति क्षण सीमा उल्लंघन कर सारे संसार को जल-प्लावित कर देने को उद्यत। आँखों से लपटें निकल रही हैं। पुतलियों की चमक में बिजलियाँ कौंध रहा है। भौहों के बल में खंजर लयक रहे हैं। जोश से चेहरे तमतमा रहे हैं। सीनों की धड़कनों में विद्रोह छटपटा रहा है। उबलते खून की तेज़ रवानी से फूल आई रंगों की फ़ड़कनों में विस्फोट मचल रहा है। काले जुल्मों से छलती हुए ह्मदयों में बदले की भावना भड़क रही है। अपमान और अत्याचार की भट्टी में भुनते शरीर सब खो रहे हैं। नारों के गर्जन से दिशाएँ फट रही हैं। हवा में तनी हुई फौलादी मुट्टियाँ आज़ादी के हत्यारों की गर्दनें तोड़ देने को उतावली हो रही हैं। खून-भरे नेत्र की तरह आकाश से गुज़रते नये सूर्य की लाल किरणों को लोहित प्रकाश में अनगिनत तिरंगे एक रंग हो। क्रान्ति की असंख्य लपटों की तरह गुलामी के गढ़ों को

निकल जाने को लपलपा रही हैं। पर कदम रुके हुए हैं। बापू की अहिंसा और सत्याग्रह की मर्यादा जंजीर बन उनके पैरों को बाँधे हुए हैं”5।

बिगड़े हुए दिमाग कहानी में स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेनेवाले युवकों को पकड़नेवालेब्रिाटिश पुलिस के अत्याचार का चित्रण बहुत ही वेदनाजनक ढंग से गुप्तजी ने प्रस्तुत किया है-“जिधर कान लगाओ, धाँय, जिधर आँख उठोओ, लपटों की लकीर! हाय! हाय! अब क्या होने को है? बूढ़े-बूढियाँ छाती पीट-पीट कर चीखने-चिल्लाने लगीं। नौजवानों की समझ में कुछ आ ही नहीं रहा था। ओह, अचानक यह क्या हो गया?...........इतने में पास के गाँव से भागते हुए एक युवक ने आकर कहा कि गोरे पहूँच गये! भागो! भागो! सारे गाँव में भागो-भागो का शोर बरपा हो गया, जैसे एक ज़ोर का भूकंप आ गया हो...........बच्चों की खिलखिलाहट, औरतों की चीख, बूढ़े-बूढियों का रोना-पीटना, कुत्तों का भौंकना और सबके ऊपर भागते हुए पैरों की आवाज़ें!”6

“देखते ही देखते गाँव उजड़ गया। दहरात से लरजते, खौफं के सन्नाटे में लिपटे गाँव की गलियाँ गोरों के बूटों से रौंदी जाने लगीं। लगातार अपने दोनों ओर बिना कुछ देखे-सुने वे गलियों की बौछार करते दौड़ लगा रहे थे। ऩ उनकी गोलियाँ दम लेना का नाम लेतीं, न उनके पैर रुकने का। उनके पीछे-पीछे चन्द, जयचन्द और मीर जाफर के वंशज कुत्तों की तरह पूँछ हिलाते भाग रहे थे और बीच-बीच में बताते जा रहे थे-‘यह फलाने का घर है। यह सरगना था’ गोरे रुक जाते। गुस्से और नफ़रत से उनका लाल चेहरा वीभत्सता की सीमा तक लाल हो उठता। उस घर की दीवारें पहले चाँदमारी का निशाना बनतीं, फिर पेट्रोल छिड़क कर गोलियों से आग लगा दी जाती। घर हू-हू कर जल उठता”7।

इस प्रकार ब्रिाटिश आतंक का एक और संदर्भ कौड़ों की बौछार में कहानी में भी देखने को मिलता है-“दूसरे दिन ही नदी-नाले पार करती, सेना की जीपें गोलियाँ दागती, दनदनाती हुई पहूँच गई। सड़कों पर जो दिखाई दिये, गोली से उड़ा दिये गये। यों भी हवा में हमारों निशाने लगा, सेना ने शहर को

दहला दिया। फिर टोलियों में बँट, वे गाँवों की ओर जीपों में उसी तरह गोलियाँ दागते चल पड़े। पीछे आदमियों और जानवरों की छटपटाता लाशों और सड़क के दोनों ओर के गाँवों में जलते हुए अनगिनत घर और मुर्दें छोड़ती मृत्यु, आग और चीख-पुकार का हाष्टाकर उत्पन्न करती, जीपें बढ़ती गई, बढ़ती गई। सेना की दृष्टि में वहाँ का हर आदमी बागी था। किसी के साथ कोई दूसरा व्यवहार करना उन्होंने सीखा न था। इसलिए क्या नेता, क्या जनता, जिसने भी जहाँ सेना की इस हरकत की खबर सुनी, वहीं से चम्पत हो गया। गाँव उजड गये। उजडे हुए गाँवों के घरों को लूट कर, उन्हें जला, आदमियों के बदले वहाँ छूटे हुए हाथी, घोड़ों, गधों, बैलों, गायों, कुत्तों और बकरियों को ही गोली का निशाना बना, सेना का अपना क्रोध शान्त करना पड़ा।"8 इस तरह ब्रिाटिश आतंक एवं स्वतंत्रता आन्दोलन का चित्रण गुप्तजी के सती मैया का चौरा, धरती, छोटी सी शुरुआत आदि उपन्यासों में भी दृष्टिपात है।

ब्रिाटिश अत्याचार के शिकार होनेवाला धीरेन की नौकरानी बतकी एक दिन गोरों की पकड़ में आ जाती है। वे बतकी को क्रूर पीड़ा करती है और पूछता है धीरेन कहाँ है? पर बतकी बोलने के लिए तैयार नहीं हुई। "बुट की ठोकर खा उसका मूँह दूसरी ओर मुड़ गया। गालों का माँस बूट की ठोकर से चिफ़न गया। उभरी हुई हड्डियाँ नंगी हुई, फिर खून की धारों से ढँक गयी"9। "खून, गम, आँसु, आग और विनाश की कितनी ही ह्यदय दहला देनेवाली कहानियाँ भारत माता की छाती पर संगीनों की नोकों से लिख, अमिट दाग छोड़ दमन समाप्त हुआ। देश की राजनीतिक स्थिति में शीघ्रता से परिवर्तन-पर-परिवर्तन होने लगे"10।

"दिन बीतते गये! आखिर एक दिन वह भी आया, जब देश की जंजीरे टूट गयीं। देश की आज़ादी की तिथि निश्चित हो गयी। जुल्मों और गुलामी के अपमानों की ज्वाला में जलते राष्ट्र में पुनर्जीवन आ गया! जनता का सिर उठ गया। पेशानी चमक उठी। आँखों से हर्ष की किरणें फूटने लगीं। होठों पर स्वतंत्रता मुस्कुरा उठी। साँसों में मुक्ति की सुगन्धि भर गयी। छाती खुशी से फूल उठी। प्राण-प्राण पुलक उठे। भारत की सदियों से कुचली भूमि अपनी

चोटों को भुला लहालहा उठी। आसमान सदियों से छाये उदासी के बादलों का काला परिधान हटा, सुनील आभा की वर्षा करने लगा। रूँधा वायुमंडल मुक्त हो झूम-झूम उठा"11। "पन्द्रह अगस्त! आज़ादी का दिन! खुशी का दिन! आज की सुबह, आज के सूरज, आज की हवा में कुछ और ही बात है। ऐसी मुक्त मुस्कान लुटाता हुआ सूरज कब निकला था? ऊषा के मुखड़े पर इतना निखरा हुआ रंग कब दिखाई दिया था? आकाश का यह सुहावना रूप कब दृष्टिगोचर हुआ था? हवा इतनी खुशगवार कब मालुम हुई थी? और बूढ़े-बूढियों, युवक-युवतियों, लड़के-लड़कियों, बच्चे-बच्चियों के चेहरों पर खुशी की यह चमक, आँखों में खुशी की यह मुस्कान, होठों पर खुशी की यह स्निग्धफ़ड़कन, सीनों में खुशी की यह धड़कन, रोम-रोम में खुशी की यह फलकन! खुशी आज चारों ओर खुशी-ही-खुशी दिखाई देती है। आकाश खुशियों की वर्षा कर रहा है। ज़मीन कण-कण से खुशियाँ बिखेर रही है। खुशी, खुशी! आज देश में खुशी, देश के नगर-नगर, गाँव-गाँव में खुशी, नगरों की सड़क-सड़क पर खुशी, गाँवों की गली-गली में खुशी, सड़कों के घर-घर में खुशी, गलियों की झोंपड़ी-झोंपड़ी में खुशी, घरों के जन-जन में खुशी, झोंपड़ियों के प्राण-प्राण में खुशी! खुशी, खुशी! आज खुशी का दिन है! आज़ादी का दिन है!

गाँव का हर घर, हर झोंपड़ी रंग-बिरंगे कागज़ों की झंडियों से सजी है। खपरैलों की 'ओरियानियों' से पल्लवों के वन्दनवार और तोरण लटक रहे हैं। द्वारों पर केले के पेड़ और कलश रखे हुए हैं। मुँड़रों पर तिरंगे लहरा रहे हैं"12।स्मारक कहानी में स्वतंत्रता आन्दोलन में जीवन खोये रनवीर के परिवारवालों को खुशी में शामिल होने के लिए गाँववालों के द्वारा आमंत्रण इस प्रकार है-"हाँ, हाँ बाबा, तुम्हारे बेटे और उसके-जैसे हज़ारों शहीदों की कुरबानी आज सफल हुई! उनके अरमान आज बर आये! उनकी साधें आज पूरी हुई! स्वर्ग में उनके लिए आज सबसे अधिक खुशी का दिन होगा! तुम भी खुश होओ बाबा! तुम भी खुश होओ, बहू! यह हमारी खुशी का अवसर है!"13

देश प्रेम

देश-प्रेम एक स्वाभाविक भावना है। प्रत्येक मनुष्य में कुछ जन्मजात गुण होते हैं। देश-प्रेम की भावना भी इन्हीं गुणों के अन्तर्गत मानी जाती है। इन गुणों की वृद्धि तथा व्यापकता मनुष्य के अभ्यास पर निर्भर है। मातृ-भूमि माता के समान है। जिस प्रकार माता के अनेक अवगुणों से परिचित होने पर भी हम उससे अटूट प्रेम करते हैं, उसी प्रकार जिस देश में हमारा जन्म हुआ है, उस देश के प्रति हमारा प्रेम स्वाभाविक है, क्योंकि माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। विश्व में माता एवं मातृभूमि दो ही अमर विभूति है। मनुष्य इन दोनों के हेतु बलिदान होने में गौरव का अनुभव करता है। देश के ऊपर आक्रमण करनेवालों से हम प्राण हथेली पर रखकर लोहा लेते हैं। उस समय उन्नत पर्वत भी हमारा मार्ग अवरुद्ध कर नहीं पाते और न गंभीर सागर भी भयभीत कर सकते हैं।

देश-प्रेमियों से हमारा भारत का इतिहास भरा पड़ा है। देश में ऐसी-ऐसी आत्माओं ने जन्म लिया, जिन्होंने अपने देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों को सहर्ष त्याग दिया। भैरव प्रसाद गुप्त का परिवार भी इससे पृथक नहीं है। देश-प्रेम के कारण गुप्तजी को अपने दो भाईयों को खोना पड़ा। इसी कारण से गुप्तजी के कथा-साहित्य में देश-प्रेम का चित्रण सजीवता से दिखाई पड़ता है। बिगड़े हुए दिमाग, कौड़ों की बौछार में, स्मारक आदि कहानियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

बिगड़े हुए दिमाग कहानी में अपनी पढ़ाई छोड़कर देश-प्रेम के कारण अंग्रेज़ों के दमन से लोहा लेने के लिए परिवारवालों को छोड़कर निकलनेवालाधीरेन का चित्रण गुप्तजी ने बड़ी ही मार्मिक ढंग से किया है। “नारे की हर आवाज़ सुन धीरेन उस व्यूह से अपने को छूड़ाने का ज़ोर मारता, और वे उसे इस तरह जकड़ लेती, जैसे अपने में समो लेना चाहती हों। धीरेन की तड़प सीमा पर पहूँच गई। उसकी आँखें लाल हो उठीं, चेहरा अत्यन्त भयंकर हो उठा, सारे शरीर जैसे फूल-सा गया। उसने एक दाँतों को ज़ोरों से भींचा.....गाँव के नौजवानों के साथ धीरेन पूरे नौ दिन तक घर न लौटा। घर में बूढ़े और बूढियाँ आँखों में खौफ़ का सन्नाटा और दिल व दिमाग में भयंकर

आशंकाओं को लिये दिन-रात उसकी प्रतीक्षा में घर की चौखट में बैठी रही...दसवें दिन धीरेन का दल विजयोल्लास में देश-प्रेम भरे गाने गाता, आज़ादी के नशे में झूमता हुआ गाँव में वापस आया”14।

कहानी कौड़ों की बौछार में गुप्तजी ने देश-प्रेम का चित्रण अपने मँझले भाई के द्वारा दिया है, जो देश के लिए शहीद गये थे। “मँझले भैया सचमुच अब देश-प्रेम के रंग में रंग गये थे। जिस भावना से प्रेरित, उन्होंने यह कदम उठाया था, अब उसका उन्हें ख्याल भी न था। अब तो सचमुच उन्हें लग रहा था कि जो काम उन्होंने किया था, वह इसना महान, इतना पवित्र, इतना प्रशंसनीय और इतना महत्वपूर्ण है, कि उसके लिए पढ़ाई-लिखाई क्या, जीवन का भविष्य क्या, ऐसे-ऐसे अनेक जीवन भी न्योछावर कर दिये जाँय, तो थोड़ा है”15। कहानी में देश-प्रेम के कारण पढ़ाई छोड़कर स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल होनेवाला बेटे से माँ कहती है-“बेटा, ये पढ़ने लिखने के दिन हैं। पढ़-लिख लो। फिर जो जी में आये करना। काम करने के लिए तो सारी ज़िन्दगी पड़ी है। वक्त पर सब कुछ अच्छा लगता है। लड़कों को कभी भी ऐसी कामों में न पड़ना चाहिए”16। उत्तर में बेटा कहता है-“माँ, मैं तुम्हें किस तरह समझाऊँ कि यह काम सिर्फ बड़े लोगों के ही करने से नहीं होने का? इस काम के लिए देश के बूढ़े, जवान, बच्चे सब की ज़रूरत है। जब तक सब मिलकर कोशिश नहीं करते, तब तक कोई गुलाम देश आज़ाद नहीं होता।

आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लेना देश के हर व्यक्ति का कर्तव्य है। कोई पढ़ाई का ख्याल कर इससे अलग रहे, कोई अपने काम का ख्याल कर इसमें हिस्सा न ले, कोई और किसी कारण से इसमें हाथ न बँटा सके, तो आखिर देश का यह बड़ा काम कौन करेगा? देश की आज़ादी के लिए देश के हर व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़, संगठित हो, दुश्मनों से मोर्चा लेना ही पड़ेगा। यह महत्वपूर्ण कार्य किसी व्यक्तिगत कारण से स्थगित नहीं किया जा सकता.......माँ तुम किसी बात की चिन्ता न करो। हम तीन भाई हैं। समझ लो, कि तुमने एक बेटे को देश पर कुरबान कर दिया। देश पर कुरबान होनेवाले किसी-न-किसी माँ के बेटे ही तो होंगे। तुम भी उन्हीं माँओं में से

अपने को भी एक समझो,माँ ” 17।देश-प्रेम ही देश की उन्नति का मूल-मन्त्र है। हर एक देश प्रेमी अपने देश के झण्डे को आदर करना अपना परम कर्तव्य समझता है। गुप्तजी के स्मारक कहानी में देश के तिरंगा झंड़ाफहरानेवाला रणवीर का चित्रण इस प्रकार किया गया है-“रनवीर छत की मुँडेर से झंडे का डंडा बाँध रहा था। और लोग देश-प्रेम के नशे में झूमते हुए, तिरंगे पर दृष्टि टिकाये, गा रहे थे-

“विजयी-विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा……”18

15 अगस्त देश की स्वतंत्रता दिवस है। इसलिए यहाँ की जनता आज़ादी की वर्षगाँठ स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाते हैं। देश में इस अवसर पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। प्रत्येक शहर तथा गाँव में यह पर्व उत्साह पूर्वक मनाया जाता है। सार्वजनिक स्थलों पर राष्ट्रीय झंड़ा फहराया जाता है। इस दिन पूरे भारतवासियों के लिए छुट्टी का दिन है। भारत की राजधानी दिल्ली दुल्हन की तरह सजाई जाती है। देश के कोने-कोने में इस पर्व के दिन विद्वान पुरुषों एवं राजनीतिज्ञों के भाषण होते हैं। देश में मिठाई बाँटी जाती हैं। जगह-जगह पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन होते हैं। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में स्वतंत्रता दिवस का महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसका उल्लेख करते हुए ऐसी आज़ादी रोज़-रोज़ हो कहानी में गुप्तजी कहते हैं-“शादी, त्योहार, खुशी के अवसर होते हैं, पर पन्द्रह अगस्त सब से ज्यादा खुशी का अवसर है, सबकी खुशी का अवसर, जनता की खुशी का अवसर! उसे उसी शान से मनाया जाएगा। उसके लिए सैकड़ों, हज़ारों, लाखों रुपये भी खर्च कर दिए जाएँ, तो भी कुछ नहीं!”19। इसी कहानी में स्वतंत्रता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कांग्रेस के स्वयं सेवक के माध्यम से गुप्तजी स्वतंत्रता दिवस मनाने का आह्वान देते हुए कहते हैं-“पन्द्रह अगस्त को न भूलिए! पन्द्रह अगस्त हमारी आज़ादी का दिन है। पन्द्रह अगस्त को खूब शान से मनाइए! अपने घरों को खूब सजाइए! रोश्नी कीजिए, राष्ट्रीय झंडे फहराइए, खूब खुशियाँ मनाइए! पन्द्रह अगस्त को न भूलिए!”20।

देश के तिरंगे का अपमान देश-प्रेमी सह नही सकता। अगर कोई अपमान कर डाले, तो उसे क्षमा करना भी उनके लिए बहुत मुश्किल है। इस प्रकार का एक संदर्भ स्मारक कहानी में देख सकते हैं। कहानी में ब्रिटिश सरकार का देशी दारोगा देश के तिरंगे का अपमान करने पर देश-प्रेमी रनवीर उनसे कहता है-“आप नीचे उतरकर जनता से माँफी मांग ले! आपने हमारे झंडे, राष्ट्र के तिरंगे का अपमान किया है। जनता क्षुब्द है। वह अपने प्राणों से भी प्यारे झंडे का अपमान किसी भी हालत में बरदाश्त नहीं कर सकती। वह उसके अपमान का बदला अपने खून की आखिरी बूँद तक दे, चुकाने को तैयार है। आप झूठे और मक्कार हैं। जिस झंड़े को आपने कल इन सबके सामने सलामी दी, उसी को अपने बूटों से, सशश्त्र पुलिस की कुमक पहूँच जाने पर, रौंद कर आपने हमारे राष्ट्रीय झंड़े, हमारी जनता, हमारे राष्ट्र, हमारी कांग्रेस के प्रति अपनी गद्दारी का परिचय दिया है। गद्दारों की सजा मौत है। लेकिन हमारे नेताओं ने जनता को गद्दारों के लिए यह सजा देने का अधिकार नहीं दिया है! .फिर भी क्रुद्ध जनता किस सीमा तक बढ़ा सकती है, इसकी कल्पना आप इस मजमे को देख कर सकते हैं! आपको अपने सिपाहियों और राइफिलों की ताकत का बहुत गलत अन्दाजा है! आप भला चाहते हैं, तो नीचे उतरकर जनता से माँफ़ी माँग लें”21। कहानी में देश-प्रेमी रनवीर ने अपनी मातृ-भुमि की रक्षा के लिए बार-बार युद्ध किया और अन्त में अपने प्राणों को उसी के उपर न्योछावर कर दिया।

राजनीतिक दल और नेता

भारत में प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था का प्रचलन है। इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत जनता द्वारा अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन और प्रतिनिधियों द्वारा शासन व्यवस्था को संभालना अनिवार्य होता है। इसके अतिरिक्त प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था लोकमत पर आधारित होती है और राजनीतिक दल लोकमत का निर्माण तथा उनकी अभिव्यक्ति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन होते हैं। प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत केवल शासक दल का ही नहीं वरन् विपक्षी दल का भी महत्व होता है। विपक्षी दल शासन

करनेवाले राजनीतिक दल को नियंत्रित रखने का कार्य करता है। इस प्रकार समाज में राजनीतिक जीवन के लिए दलीय संगठनों का बड़ा महत्व है।

गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में राजनीतिक दलों का चित्रण किया है। गुप्तजी के विचार में सभी राजनीतिक दलों की सभाओं में कुछ बुनियादी फर्क होते हैं। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में आफ़ताब कहता है-"काग्रेस की सभाओं, मुस्लिम लीग की सभाओं, कम्यूनिस्ट पार्टी की सभाओं और सोशिलिस्ट पार्टी की सभाओं में कुछ बुनियादी फर्क होते हैं। इन फर्कों को समझने के लिए किसी ज्यादा बुद्धि या समझदारी की ज़रूरत नहीं है, आप अपने गाँव में आयोजित इन पार्टियें की सभाओं में यह फर्क साफ़साफ़ देख सकते हैं"22।

राजनीति में शासक दल और विपक्षी दल का महत्वपूर्ण स्थान है। राजनीति में शासक दल और विपक्षी दल में वाद-विवाद, आरोप-प्रत्यारोप होना स्वाभाविक है। गुप्तजी के भाग्य देवता उपन्यास में इसका उल्लेख हैं। उपन्यास में कांग्रेस शासक दल है और कम्यूनिस्ट विपक्षी दल है। विपक्षी दल का कहना है-"धनी किसानों को छोड़कर सभी किसानों की माँग है कि ज़मीन जोतनेवालों को मिलना चाहिए। इस माँग का सबसे बड़ा विरोध शासक दल कांग्रस कर रहा है, क्योंकि वह भूतपूर्व राजवाड़ों, बड़े जमींदारों, बड़े बैंकपतियों और हलाल पूँजीपतियों का प्रतिनितित्व करता है। इसलिए नई भूमि-संबन्धों का कार्यक्रम बनाने और उसे पूरा करने का पूरा भार मज़दूरों और किसानों के हितों के लिए संघर्ष करनेवाली भारत की कम्यूनिस्टपार्टि के कन्धों पर आयी है"23। इस प्रकार के राजनीतिक दलों के आरोप-प्रत्यारोप गुप्तजी के अन्य उपन्यासों में भी देख सकते हैं।

राजनीति में नेताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वतंत्रता के पहले देश के नेताओं ने अपने देश की उन्नति के लिए अपने तन-मन-धन का बलिदान किया करते थे। वे देश की आज़ादी और जनता की भलाई चाहते थे। लेकिन आज़ादी के बाद राजनीतिक नेताओं में भारी बदलाव दिखाई पड़ता है। वे देश की राजनीति को स्वार्थ, कपट और भ्रष्ट का केन्द्र बनाया है। गुप्तजी ने अक्षरों के

आगे मास्टरजी उपन्यास में देश के आदर्श नेता महात्मा गाँधी का चित्रण किया है। उपन्यास में हेड़मास्टर साहब कहते हैं-"गाँधीजी जनता में जितने अधिक लोकप्रिय नेता थे, उतना लोकप्रिय अन्य कोई नेता न था। गाँधीजी के बिना जनता कांग्रेस के संबन्ध में कुछ सोच ही नहीं सकती थी"24। इस प्रकार सती मैया का चौरा उपन्यास में भी आदर्श राजनीति का चित्रण देखने को मिलता है। उपन्यास में सभापति मन्ने से कहता है-"सच कहते हैं मन्नेबाबु, जब से हम सभापति बने हैं, हमारे मन में यह डर बराबर समाया रहता है कि कहीं हमसे कोई अनियाव न हो जाय कहीं हम कोई बेईमानी न कर बैठें"25।

वर्तमान देश के अधिकतर राजनीतिक नेताओं में अपने देश या जनता की भलाई नहीं, बल्कि अपनी जेब और परिवार की चिन्ता रहती है। उनमें स्वार्थता इतना भर गया है कि ईमानदारी का एक भी अंश नहीं दिखाई देता। सती मैया का चौरा उपन्यास में वर्तमान युग के राजनीतिक नेता का असल चित्रण देखने को मिलता है-"वोट लेने के वक्त दाँत निपोरते हैं और चुन लिये जाने पर हुकूमत करते हैं! रहे हैं न राधे बाबू पाँच बरस तक ग्राम पंचायत सभापति! क्या-क्या रंग दिखाये उन्होंने! क्या थे और क्या हो गये। ग्राम-पंचायत का संगठन हुआ, गाँव ने एकमत से उन्हें ग्राम सभापति चुन लिया। कौन था गाँव में, जिसने उसके बराबर देश के लिए त्याग किया हो, यातनाएँ झेली हो! लेकिन जैसे ही ग्राम सभापति बने, क्या चोला बदला उन्होंने! और तो और कितनी लड़कियों को उन्होंने नासा, है कोई गिनती?"26 इसी उपन्यास में देश के एक राजनीतिक नेता कहता है-"आज राजनीति और पार्टी में ईमान-विमान कोई चीज़ नहीं होता"27।

आज राजनीति में मात्र धनी लोगों का ही वर्चस्व रहता है और गाँव के हर कार्य क्षेत्र का श्रेय वे स्वयं लेना चाहते हैं। कभी-कभी शक्ति और श्रेय की होड़ में ये नये नेता समाज की जितनी हानि करते हैं इसका अनुमान सामान्य व्यक्ति नहीं लगा सकता। "आज चुनाव में बडे-बडे लोग ही सभापति चुन जाते हैं"28। गाँव में शिक्षा जैसे सही और अच्छे उद्देश्य के लिए खोला गया नया स्कूल न केवल राजनीतिक नेता का अखाड़ा बन जाता है, अपितु उसके विकास

में निरंतर बाधाएँ खड़ी की जाती है। इस संदर्भ में सती मैया का चौरा उपन्यास में मुन्नी कहता है-“यह संघर्ष स्कूल के पहले भी था, लेकिन उसका दूसरा रूप था। अब संघर्ष का नक्शा साफ हो गया है, गाँव के महाजन ही नहीं और भी आसपास के धनी-मानी लोग और कांग्रेसी नेता इस संघर्ष में उतर आये हैं। अब यह एक राजनीतिक रूप लेने लगा है”29।

आज राजनीतिक नेताओं के सुरक्षा एवं सुख-सुविधा के लिए सरकार ने कितना पैसा खर्च करता है, उसका अनुमान नहीं लिया जा सकता। इसका उल्लेख करते हुए गुप्तजी अपने अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में मास्टरजी के माध्यम से कहते हैं-“ये जनता का कैसे प्रतिनिधि है, जिनकी जान पर हमेशा खतरा बना रहता है। इनकी सुरक्षा पर जो खर्च होता है, उससे हज़ारों गरीबों के परिवारों का पालन-पोषण हो सकता है”30। इस प्रकार गुप्तजी ने राजनीतिक नेताओं का चित्रण करके अपने कथा-साहित्य में कपट एवं स्वार्थ नेताओं के विरुद्ध जनता में चेतना लाने का भी प्रयास किया है-“अब जनता जाग रही है, किसान जाग रहे हैं, उन पर जो बडे लोगों का प्रभाव था, तेज़ी से नष्ट हो रहा है। वे अब अपनी शक्ति पहचानने और अधिकारों के लिए लड़ने लगे हैं”31।

चुनाव

चुनाव या निर्वाचन, लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया हैं, जिसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनती है। चुनाव के द्वारा ही आधुनिक लोकतंत्रों के लोग विधायिका के विभिन्न पदों पर आसीन होने के लिए व्यक्तियों को चुनते हैं। चुनाव के द्वारा ही क्षेत्रीय एवं स्थानीय निकायों के लिए भी व्यक्तियों का चुनाव होता है। वस्तुत: चुनाव का प्रयोग व्यापक स्तर पर होने लगा है और यह निजी संस्थानों, क्लबों, विश्वविद्यालयों, धार्मिक संस्थानों आदि में भी प्रयुक्त होता है। भारतीय समाज में चुनावों का बहुत बड़ा असर पड़ा है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में भी चुनाव के प्रति अपना विचार प्रकट किया है।

गुप्तजी ने सती मैया का चौरा उपन्यास में मुन्नी के माध्यम से चुनाव के प्रति अपना विचार व्यक्त किया है-"मेरा ख्याल है कि चुनाव सबका मत लेकर ही होना चाहिए, जनवादी ढंग से"32। इसी उपन्यास में चुनाव के महत्व पर प्रकाश डालते हुए गुप्तजी ने जनता में चेतना लाने की कोशिश भी की है। उपन्यास में मुन्नी कहता है-"पंचायत ता चुनाव आ रहा है, तुम उसमें भाग लो और कोशिश करो कि पंचायत में जनता के सच्चे प्रतिनिधि चुने जाएँ, ताकि गाँव की आगे की तरक्की का रास्ता खुले"33। इस प्रकार अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में भी चूनाव के महत्व का चित्रण देखा जा सकता है। उपन्यास में स्कूल के हेड़मास्टर का कहना है-"अशिक्षित लोगों को चुनाव में कोई विशेष नहीं होती, क्योंकि वे चुनाव का महत्व ही नहीं समझते"34।

आज देश में चुनाव का रूप ही बदल गया है। सत्ता में अधिकार प्राप्त करने के लिए स्वार्थी लोगों का खेल हो गया है। चुनाव का नियंत्रण पैसा करता है। पैसे का दुरुपयोग करके नेता किसी-न-किसी बुरे मार्ग में चुनाव जीतने का प्रयास करते हैं। धर्म और जाति के नाम पर भी फायदा उठाते हैं। इससे देश की जनता की एकता, सामंजस्य, अपनापन नष्ट होकर अनमें एक दूसरे के प्रति मत्सर, दुश्मनी आदि बढ़ने लगी है। अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में गुप्तजी ने चुनाव में धर्म और जाति का दुरुपयोग करके चुनाव जीतने का चित्रण व्यक्त किया है। उपन्यास में हेड़मास्टर कहते हैं- "चुनाव प्रायः दुनिया के सभी देशों में होते हैं, किन्तु क्या किसी भी विकसित देश में मतदाताओं को जाति या धर्म के नाम पर हमारे देश की तरह लामबन्द किया जाता है अथवा मतदाताओं से चिन्हों पर मोहर लगवायी जाती है?"35।

ग्राम-पंचायत

पंचायत की प्रथा देश में अत्यन्त प्राचीन है। इसके अनुसार जनता शासन का संचालन करने के लिए योग्य और विश्वास पात्र सदस्यों को चुनती है। इन सदस्यों की समिति ही ग्राम-पंचायत कहलाती है तथा इस प्रकार की शासन पद्धति को ही पंचायत राज्य के नाम से पुकारते हैं। प्राचीन काल में पंचायतों ने जिस कुशलता और न्यायप्रियता का परिचय दिया, उसके लिए वे

आज भी सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त हमारी सरकार का ध्यान पंचायतों के पुनर्गठन की ओर गया। पंचायतों की स्थापना के बारे में गुप्तजी ने अपनी टिड्डे कहानी में चित्रण किया गया है-"जिस दिन पंचायतों की स्थापना हुई थी, गाँधी-चबूतरों का निर्माण हुआ था और उसपर झंड़ा फहराकर पंचायत राज की घोषणा हुई थी, गाँवों में, लोगों के मन में कैसा उल्लास छाया था! ......और लोग उस दिन गाँवों की सभाओं में यह सुनकर फूले न समाये थे कि अब ज़मींदारी खतम हो गयी। गाँवों की परातियाँ और ताल पंचायतों की मिल्कियत हो गया और उनपर गाँवों की जनता का अधिकार हो गया"36।

वर्तमान काल में जिस उद्देश्य से ग्राम-पंचायत का निर्माण किया हो, उसमें भारी बदलाव आया है। ग्राम-पंचायत स्वार्थी राजनीतिक नेताओं और सरकारी अफ़सरों के कमाई का केन्द्र बन गया है। इससे गाँव की उन्नति में रुकावट आयी है। इसका उल्लेख गुप्तजी के कथा-साहित्य में परिलक्षित है। टिड्डे कहानी में गुप्तजी कहते हैं-"लेकिन लोगों को गाँवों में जो विकास दिखायी दिया, वह सभापतियों के कृषि फ़ार्मों के अतिरिक्त कुछ न था"37। इस प्रकार सती मैया का चौरा उपन्यास में मन्ने सोचता है-"स्कूल के नाम कुएँ और कम्पोस्ट के नाम पर जाने कितने लोगों को रुपये मिले, लेकिन बनी एक चीज़ भी नहीं! सब रुपये हड़प लिये गये। और साला पंचायत सेक्रेटरी अपनी जेब गरम कर झूठी रिपोर्ट दे देता है, गाँव की हालत बदतर होती जा रही है। अभी तक पंचायत का मकान तक नहीं बना......इतने दिनों से पंचायत यहाँ कायम हुई है, उसने गाँव के लिए क्या किया! कुएँ बनवाने के लिए कितना रुपया मिला इस गाँव को। लेकिन क्या एक भी कुआँ बना? बीज मिलता है, लेकिन वह खेत में न जाकर स्वार्थियों के पेट में चला जाता है। सभापति के घर पर रेडियो बजता है, रोज़ पंचायत का कार्यक्रम चलता है, लेकिन कोई उसे सुनने-सुनानेवाले नहीं! गली की नुक्कड़ों पर कंड़ीलें गाड़ की गयी हैं, लेकिन उनमें से किसी में आज तक रोशनी नहीं हुई। अखबार और न जाने कितना साहित्य आता है, लेकिन उसे पढ़ने-पढ़ानेवाले कोई नहीं। पंचायत सेक्रेटरी बटोरकर

बनिये के यहाँ बेच आता है।...और उन लोगों ने एक स्कूल खोला, उसे चलाया, तो उसपर भी उनकी शनि-दृष्टि पड़ गयी। न खुद कुछ करेंगे, न किसी को करने देंगे, और कोई कुछ करेगा तो उसे बिगाड़कर दम लेंगे"38। "तब लोगों की समझ में आ गया कि उन्हें भ्रम में डाला गया था और पंचायत-राज और ज़मींदार-राज में कोई फर्क न था"39।

विद्यार्थी-राजनीति

विद्यालय ज्ञान के मन्दिर होते हैं। इनमें अध्यापन करके विद्यार्थी ज्ञानवान एवं संपन्न बनकर अपने जीवन रथ को आगे बढ़ाते हैं। लेकिन आज तो तस्वीर का दूसरा ही रूप है। वर्तमान विद्यार्थी ज्ञान संपन्न होने के स्थान पर अनेक बुरी आदतों का शिकार हो रहे हैं। आज का ज्वलंत प्रश्न यह है कि विद्यार्थियों को देश की राजनीति में सक्रिय भाग लेना चाहिए या नहीं। इस विषय में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि एक अच्छे विद्यार्थी को राजनीति से अलग रहकर अपने अध्ययन को आगे बढ़ाना चाहिए। स्वतंत्रता आन्दोलन में विद्यार्थी गण पढ़ाई छोड़कर आन्दोलन में शामिल होते थे, लेकिन आज का जमाना अलग है।

वर्तमान राजनीति विद्यार्थी के लिए विद्यार्थी जीवन में द्विविधा का साधन बन जाता है, क्योंकि इस समय किशोर न तो राजनीति में सक्रिय रूप से भाग ले सकता है और न पढ़ाई में समय दे पाता है। आज आन्दोलन तोड़-फोड़, सत्याग्रह तथा हड़तालों का दौर चल रहा है। लेकिन ये बातें छात्रों के अधिकार एवं कर्तव्य के अन्तर्गत न होकर उसे पतन की ओर ले जानेवाली है। राजनीति में भाग लेने से विद्यार्थी त्रिशंकु की तरह लटका रहता है। उसकी दशा शोचनीय हो जाती है। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में विद्यार्थी-राजनीति का चित्रण किया है। "छात्र के माता-पिता की उस पर आँखें टिकी रहती है। उन्हें विश्वास होता है कि उनका लाल पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनेगा। यदि राजनीति के चक्कर में पड़कर वह लक्ष्य से भटक गया तो उसकी वही हालत होगी कि न इधर के रहे न उधर के रहे, न राम मिला न खुदा ही मिला"40। कौड़ों की बौछार में कहानी में गुप्तजी पुलिस सुपरिन्डेन्डेन्ट के ज़रिए विद्यार्थियों

से इस प्रकार कहते हैं-“पढ़ाई रुक जाने से सारा जीवन नष्ट हो जाएगा। उनका काम अभी माँ-बाप के आज्ञानुसार पढ़ना-लिखना है। राजनीतिक कार्यों में भाग लेना बड़े लोगों का काम है। लड़कों को इस पचड़े में पड़कर अपना भविष्य बरबाद नहीं करना चाहिए। सजाएँ, जेल-जीवन की यातनाएँ उनके मान की नहीं है। गुमराह होकर किसी के बहकावे में न पड़ना चाहिए। उन्हें माफ़ी माँगकर अपनी भूल को सुधार लेना चाहिए। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। फिर उनके हाध से यह मामला निकल जाएगा तो कुछ भी न हो सकेगा। फिर कौन जाने, उनकी इस भूल के कारण उनके उनके घरवालों को भी किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़े”41।

बिगड़े हुए दिमाग कहानी में विद्यार्थी नेता धीरेन का चित्रण गुप्तजी ने इस प्रकार प्रकट किया है-“हाई-स्कूल तक तो कोई गुल न खिला, पर लोगों का कहना है कि कॉलेज की हवा लगते ही धीरेन का दिमाग बिगड़ गया। अब वह पढ़ने-लिखने में दिल नहीं लगता। आज कहीं पिकेटिंग में शामिल हो रहा है, तो कल किसी सभा के संगठन में और परसों कोई जुलूस निकालने का चक्कर। पिता को जब ये बातें मालुम हुई, तो उन्होंने लिखा ‘बेटा, यही पढ़ने-लिखने का जमाना है। कुछ पढ़-लिख लोगे तो ज़िन्दगी बन जाएगी। काम करने के लिए तो पूरी ज़िन्दगी ही पड़ी है’। परन्तु धीरेन उस समय तक इतना आगे बढ़ गया था, विद्यार्थी-समाज में इतना लोकप्रिय हो चुका था कि अब कदम पीछे हटाना उसके लिए मुमकिन न था”42। डॉ.भुवनेश्वरी शरण सक्सेना के अनुसार “राजनीति एक ऐसा भूत है कि वह किसी विद्यार्थी को लग जाता है तो वह उसको किसी भी अन्य कार्य को नहीं करने देता”43। आज देश में सभी राजनीतिक दलों के लिए अपनी-अपनी विद्यार्थी दल भी हैं। आज राजनीतिक दल एवं नेताओं ने विद्यार्थियों को बहाना बनाके अपना कार्य चलाता है। इसका उल्लेख गुप्तजी के नौजवान उपन्यास में दृष्टिगत है-“देश के सभी राजनीतिक दल विशेषकर विपक्षी राजनीतिक दल अपने कार्यों के लिए विद्यार्थियों को अपने घेरे में लाने का प्रयत्न करते हैं। अपने भावी कार्यकर्ताओं तथा नये नेताओं के लिए वे उनकी ओर देखते हैं। विश्वविद्यालय में कोई

आन्दोलन आरंभ करना और उसमें विद्यार्थियों को खींचना राजनीतिक दलों का कार्यक्रम का एक विशेष अंग है। इस तरह के आन्दोलन, जिनसे सारा शैक्षिक कार्य ठप्प पड़ जाता है, पूरे राष्ट्र को क्षति पहुँचाते हैं। ये न तो विद्यार्थियों को कोई लाभ पहूँचा पाते हैं और न राजनीतिक दलों का"44। इसी उपन्यास में हड़ताल करके अध्ययन कार्यों में बाधा डालनेवाला विद्यार्थी-राजनीति का स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है। उपन्यास में रजिस्ट्रार विद्यार्थियों से कहते हैं-"हमें अच्छी तरह मालुम है कि हड़ताल के लिए विद्यार्थियों को कुछ राजनीतिक दल अपने हित के लिए उक्सा रहे हैं। किन्तु विद्यार्थियों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हड़ताल से उन्हीं की हानी होगी"45।

भ्रष्टाचार

भारत में वैसे तो अनेक समस्याएँ विद्यमान हैं, जिसके कारण देश की प्रगति धीमी है। उनमें प्रमुख है बेरोज़गारी, गरीबी, अशिक्षा आदि। लेकिन उन सब में, वर्तमान में सबसे ज़्यादा देश के विकास को बाधित कर रहा है तो वह है भ्रष्टाचार। भ्रष्टाचार में सिर्फ शासकीय कार्यालयों में लेने-देनेवाले घूस को ही शामिल नहीं किया जा सकता बल्कि इसके अंदर वह सारा आचरण शामिल होता है जो एक सभ्य समाज के सिर को नीचा करने में मज़बूर कर देता है। भ्रष्टाचार के इस तंत्र में आज सर्वाधिक प्रभाव राजनीतिक नेताओं का ही दिखाई पड़ता है। भ्रष्टाचार केवल नैतिकता पर प्रश्न नहीं है, बल्कि यह भारत जैसे गरीब, किन्तु विकासशील देश की आर्थिक उन्नति में सबसे बड़ी बाधा है।स्वतंत्र भारत के आम लोगों में ऐसा विश्वास था कि आज़ादी के बाद हमारे निस्वार्थ नेता देश के बागड़ोर संभालेंगे तथा वे देश को उन्नति के शिखर पर ले जाएँगे। उनमें भ्रष्टाचार का नामोनिशान तक नहीं होगा। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में आफ़ताब अपने दोस्त सरल से कहता है-"हमारे राष्ट्रीय नेता सत्य और अहिंसा के व्रती है, सेवा तथा त्याग के साधक हैं। इनसे कोई भी भ्रष्टाचार की आशा नहीं कर सकता"46।

आज़ादी के पहले भी भ्रष्टाचार चलता था, किन्तु आज़ादी के बाद गंदी भ्रष्ट राजनीति और नेताओं के स्वार्थ, सरकारी अधिकारी और धूर्त तथा पाखड़ी

लोगों के स्वार्थ के कारण यह समस्या बहुत ही गंभीर बनी है। भ्रष्टाचार के कारण पढ़े-लिखे, अनपढ़, नागरी तथा ग्रामीण लोग त्रस्त हुए हैं। वर्तमान भाग-दौड़ के जीवन में अल्प परिश्रम में अधिक लाभ, स्वार्थ, धनलोलुपता, अत्यधिक महत्वाकांक्षा आदि कारणों की वजह से भ्रष्टाचार किया जा रहा है। जिससे यह समस्या महाभयंकर बनती जा रही है। नेता, सरकारी अधिकारी अपने अधिकार का गलत प्रयोग कर भ्रष्टाचार कर रहे हैं। भ्रष्टाचार की व्यापकता इतनी बढ़ी है कि हर एक क्षेत्र में हो रहा है। अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में हेड़मास्टर साहब कहते हैं-"समाज में आज भ्रष्टाचार व्याप्त है, मन्द्री से लेकर चपरासी तक"47।

आज भ्रष्टाचार से सारा देश संत्रस्त है। लोकतंत्र की जड़ों को खोखला करने का कार्य काफ़ी समय से इसके द्वारा हो रहा है। नेता, सरकारी अधिकारी तथा पुलिसवाले, ग्रामीण लोगों के अज्ञान और भोलेपन का लाभ उठाकर और अपने अधिकार का गलत प्रयोग कर खुले आम भ्रष्टाचार कर रहे हैं। इसका चित्रण गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास में परिलक्षित है-"सरकार गाँवों के लिए जो भी अनुदान या सहायता देती है, उसे यही हड़प लेते हैं और उसका उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। इस काम में अफसर उनका साथ देते हैं"48। इस प्रकार एक संदर्भ गुप्तजी के चरम बिन्दु कहानी में भी देखने को मिलता है-"सुना जाता है कि सरकार मोटा गल्ला भेज रही है, लेकिन वह गल्ला रास्ते में ही जाने कहाँ उड़ जाता"49।

गुप्तजी के विचार में जिस शासन व्यवस्था की नींव ही अन्याय और शोषण पर रखी गयी हो उसमें भ्रष्टाचार का प्रबल होना स्वाभाविक है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में गुप्तजी ने अपना यह विचार इस प्रकार व्यक्त किया है-"एक भ्रष्ट समाज में जीवित रहनेवाला कोई भी व्यक्ति भ्रष्टाचार से अछूता नहीं रह सकता, क्योंकि उसका संबन्ध भ्रष्ट समाज से होता है"50।

वर्तमान शासन व्यवस्था में सर्वत्र घूसखोरी एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला है। यही रिश्तखोरू, दस्तूरी और कहीं कम्मीशन नाम से प्रचलित है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में रेलवे कमीशनर की भ्रष्टाचारी का चित्रण इस प्रकार

दिखायी गयी है-“तो आप ऐसा कीजिए कि सरल को कहिए कि वह अपने अभिभावक के साथ बीस हज़ार रुपये लेकर मेरे पास आ जाए। उसने असिस्टेंट स्टेशन मास्टर के लिए फ़ार्म भरा है। उसकी दस्तूरी बीस हज़ार रुपये हैं”51।

आजकल सरकारी अस्पतालों में भी भ्रष्टाचार का वातावरण है। डाक्टर से लेकर चपरासी तक यह दुराचार में शामिल हैं। डाक्टर लोग सरकारी अस्पतालों में न रहकर बाहर मरीज़ों को देखने जाते हैं, ताकि अधिक कमाई आ जाएँ। इसके प्रति लोग असंतुष्ट हैं और अपना आक्रोश, छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरकारी अस्पताल के मरीज़ कहते हैं-“यह नकटू बड़ा बदमाश है। अस्पताल में आये मरीज़ों को छोड़कर बाहर के मरीज़ देखने चला जाता है। यह सरकारी अस्पताल गरीबों के लिए खुला है। डाक्टर को सरकार तनख्वाह देती है। फिर वह हराम की कमाई क्यों करता है?”52।

छोटी सी शुरुआत उपन्यास में पोस्ट आफ़ीस में घटित भ्रष्टाचार का विवरण इस प्रकार दिया गया है-“जो मनि आर्डर आते थे, जुम्मन उनपर अपने हाथ के अंगूठे का निशान लगाकर, रुपये अपनी जेब में रख लेता था”53। पुलिस थाने में होनेवाला भ्रष्टाचार का चित्रण भी गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में किया है। सती मैया का चौरा उपन्यास में बसमतिया के साथ मन्ने के अवैध संबंध को दबा देने के लिए थानेदार को 50 रुपये रिश्वत देना इसी प्रकार का एक घटना है।

वर्तमान समाज में देश के सर्वोच्च और अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखे जानेवाले संस्थान भी भ्रष्टाचार की लपेट में आ चुके हैं-“ये कानून, ये कचहरियाँ, ये वकील और अफ़सर....न्याय-व्यवस्था की यह अद्भुद मशीनरी! तुम्हारे पास पैसे हैं, तो तुम झूठ को सच बना सकता हो, न्याय को अन्याय सिद्ध कर सकते हो; तुम्हारे पास पैसे नहीं, तो तुम्हारा सच भी झूठ है, तुम्हारे सच को भी पैसेवाला झूठ सिद्ध कर सकता है, तुम्हारे लिए न्याय मिलना असंभव”54।

“सन् 2001 में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एस.पीभरूचा ने आजिज आकर वक्तव्य दिया था कि न्यायालयों के 20

प्रतिशत न्यायाधीश भ्रष्ट हो चुके हैं। सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति के.जीबालकृष्णन ने भी अपनी सेवा निवृत्ति से पूर्व दिये अपने वक्तव्य में यह स्वीकार किया कि न्यायपालिका में भ्रष्टाचार है”55। गुप्तजी भी अपने कथा-साहित्य में इसका प्रमाण प्रस्तुत किया है। गंगा मैया उपन्यास में गुप्तजी कहते हैं-“चंद की थैली का मूँह खुला, उधर कानून का मूँह बन्द हो गया”56। इस प्रकार का संदर्भ सती मैया का चौरा उपन्यास में भी दृष्टिगत है। उपन्यास में मन्ने सोचता है-“आज तो कानून इस तरह पेशा बना दिया गया है, उसके अंग-अंग को इस तरह दाँब-पेच से जकड दिया गया है, उसे एक ऐसा दिमागी कसरत का विषय बना दिया है कि उससे न्याय, सच्चाई और मानवीय मूल्यों की आशा करना बालू से तेल निकालने के बराबर है। इस कानूनी व्यवस्था को किसी प्रकार भी जनवादी नहीं कहा जा सकता, गरीब जनता को कभी भी इसमें न्याय नहीं मिल सकता”57। इसी उपन्यास में गुप्तजी ने देश के न्याय व्यवस्था पर अपना आक्रोश प्रकट किया है-“हर मुकदमे का इस्तगासा देखकर, बयान और वकीलों की बहसें सुनकर मन्ने के मन में एक ही तरह की बातें उठती कि आखिर इतने बड़े झूठे तमाशे के लिए सरकार ने यह मंच, वह भी न्याय के नाम पर, क्यों खड़ा रखा है? कितने बेगुनाह लोग इस काले रोज़गार की चक्की में रोज़ पीस दिये जाते हैं और कितने गुनहगार साफ-साफ बचकर निकल जाते हैं, इसका हिसाब क्या कोई भी कभी लगा सकता है?”58गुप्तजी आगे कहते हैं-“किसी जमाने में राजा, बादशाह या काज़ी भेश बदलकर सचाई का पता लगाने जाते थे, उस समय ती न्याय व्यवस्था निसन्देह आज से कहीं बेहत्तर होगी”59।

आग और आँसु उपन्यास में गुपतजी ने देश के प्रशासनिक व्यवस्था एवं कर्मचारियों पर व्यंग्य किया है-“आज कानून का रास्ता जितना लंबा है उतना ही पेचीदा भी। शतरंज के बत्तीस मोहरें, लेकिन उनकी चालें अनगणित। तहसील से लेकर हाई-कोर्ट तक और ़फिरबिलायत तक बिसाते बिछी है। एक से बढ़कर एक भाड़े की खिलाड़ी है, जैसा रुपया लगाओ वैसा खिलाड़ी मिलेगा”60।

समाज में भ्रष्टाचार व्यापक होने का अनेक कारण हैं। फिर भी गुप्तजी का कहना है-"भ्रष्टाचार की जंजीर हमेशा लंबी ही होती जाएगी, क्योंकि जो घूस देकर नौकरी प्राप्त करेगा, वह घूस लेने के लिए अवश्य ही अभिशप्त होगा"61। इसलिए भ्रष्टाचार रोकना है तो जनता में चेतना लाना है-"सरकार अपने अफसरों पर ही विश्वास करती है, जनता पर नहीं। लेकिन जनता को इस तरह उदासीन नहीं रहना चाहिए, आखिर काम तो उन्हीं के फायदे के लिए होते हैं। अगर जनता दिलचस्पी लेने लगे, तो इन अफसरों को भी ठीक किया जा सकता है"62।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में गुप्तजी के कथा साहित्य का अध्ययन करने पर यह लक्षित हुआ कि वर्तमान राजनीति भ्रष्ट और खोखली बनी है। उसने देश के सामाजिक जीवन में पूर्ण रूप से उपना आधिपत्य स्थापित किया है। राजनीतिक दल सत्ता हथियाने के लिए भ्रष्ट, चारित्र्यहीन नेताओं को टिकट दे रहे हैं। राजनीतिक दल और नेताओं ने देश के लोगों को झूठे आश्वासन देकर प्रलोभन दिखाते हैं। उनमें नैतिक मूल्य, आदर्श, सच्चाई आदि का अभाव है। उनकी करनी और कथनी में बहुत अन्तर है। गिरगिट की तरह रंग बदलनेवाले नेताओं की संख्या भी आज कम नही हैं। नेताओं में स्वार्थ, भ्रष्टाचार, चापलूसी आदि पनप रहे हैं।

गुप्तजी के कथा-साहित्य में भारतीय समाज के सभी राजनीतिक पक्षों का विस्तृत एवं गहन चिन्तन हुआ है, विशेषकर स्वतंत्रता आन्दोलन, ब्रिटिश आतंक, देश-प्रेम, राजनीतिक दल और नेता, चुनाव, ग्राम-पंचायत, विद्यार्थी-राजनीति, भ्रष्टाचार आदि। गुप्तजी ने वर्तमान राजनीति और राजनैतिक नेताओं के क्रिया-कलाप, हथकंडे आदि का परदा फाश कर देश की राजनीति में और उससे जुड़े सभी कार्य-कलापों में परिवर्तन की आवश्यकता की ओर संकेत भी किया है।

संदर्भ

1.त्रिशंकु, अज्ञेय, पृष्ठ सं 73
2.हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद, पृष्ठ सं 174
3.कौड़ों की बौछार में (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 78

4.वही, पृष्ठ सं 93
5.स्मारक (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 138
6.बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 18
7.वही, पृष्ठ सं 20
8.कौड़ों की बौछार में (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 99-100
9.बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 24
10. स्मारक (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 152
11. वही, पृष्ठ सं 153
12. वही, पृष्ठ सं 153-154
13. वही, पृष्ठ सं 153
14. बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह)पृष्ठ सं 16-17
15. कौड़ों की बौछार में (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह)पृष्ठ सं 24
16. वही, पृष्ठ सं 86
17. वही, पृष्ठ सं 76-77
18. स्मारक (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 143
19. नया खाता (सपने का अन्त, कहानी संग्रह पृष्ठ सं 161)
20. ऐसी आज़ादी रोज़-रोज़ हो (सपने का अन्त कहानी संग्रह) पृष्ठ सं136
21. स्मारक (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 136
22. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 84-85
23. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 427
24. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 228
25. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 436
26. वही, पृष्ठ सं 183-184
27. वही, पृष्ठ सं 435
28. वही, पृष्ठ सं 438
29. वही, पृष्ठ सं 394
30. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 248
31. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 438
32. वही, पृष्ठ सं 397
33. वही, पृष्ठ सं 394

34. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 228
35. वही, पृष्ठ सं 248
36. मंगली की टिकुली (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 158
37. टिड्डे (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 158
38. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 389
39. टिड्डे (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 158
40. आदर्श निबन्ध, कुलश्रेष्ठ एवं शर्मा, पृष्ठ सं 296
41. कौड़ों की बौछार में (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह)पृष्ठ सं 80
42. वही, पृष्ठ सं 12
43. आधुनिक हिन्दी निबंध, भुवनेश्वरी शरण सक्सेना, पृष्ठ सं 127
44. नौजवान, पृष्ठ सं 96
45. वही, पृष्ठ सं 161
46. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 188
47. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 224
48. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 438
49. चरम बिन्दु (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह) पृष्ठ सं 72
50. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 187
51. वही, पृष्ठ सं 130
52. वही, पृष्ठ सं 294
53. वही, पृष्ठ सं 149
54. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 418
55. 24दुनिया.कॉम/हिन्दी-समाचार
56. गंगा मैया, पृष्ठ सं 07
57. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 452
58. वही, पृष्ठ सं 452
59. वही, पृष्ठ सं 452
60. आग और आँसु, पृष्ठ सं 421
61. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 147
62. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 460

अध्याय 6

धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में भैरवप्रसाद गुप्त का कथा-साहित्य

धार्मिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय समाज-व्यवस्था को संचालित और संपन्न बनाने वाले प्रमुख तत्वों में धर्म और संस्कृति का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। धर्म मानव ह्मदय की अत्यन्त उच्च-उदात्त, पुनीत एवं पवित्र भावना है। धार्मिक भावना से मनुष्य में साहित्यिक प्रवृत्तियों का जन्म होता है। परोपकार, समाज सेवा, सहयोग तथा सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती है। धर्म के मार्ग में काम, लोभ, असत्य आदि मुख्य बाधाएँ हैं। मनुष्य धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर इन सब बाधाओं का सामना करता है तथा इन सब बाधाओं से अपने को दूर रखते हुए कष्टों को झेलते हुए सत्य के मार्ग का अनुसरण करता है। भारतीय सामाजिक जीवन में धर्म एक अलग सत्ता नहीं है, बल्कि जीवन का ही एक अंग है। मानव व्यवहार में उसके चिन्तन तथा मनन को धर्म हमेशा सब तरह से नियंत्रित करता रहता है। श्री अवध विहारी लाल गुप्ता के अनुसार "चित्त का सतत आनन्द की स्थिति में बनाए रखने तथा कर्म बन्ध से मुक्ति पाने हेतु जो नियम आचरण में लाये जायें, वही धर्म है। क्योंकि प्रकृति के नियमों के अनुसार चलने में ही मानव को सुख, शक्ति एवं मृत्यु से मुक्ति दिलाना संभव है, अतएव प्राकृतिक सिद्धांत ही मानव धर्म के आधार है"1।

कुछ विद्वानों का कहना है कि आज धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। रूढि प्रधान धर्म को इस युग में कभी भी मान्यता नहीं मिल सकती है। माक्र्सवाद के अनुसार "धर्म कोई ईश्वरीय ज्ञान नहीं है। न ही वह किसी विशेष अति प्राकृतिक जगत का प्रतिबिंब है। अन्य चेतना जैसी ही यह एक विशिष्ट प्रकार की चेतना है" 2।

वर्तमान युग में धर्म व्यक्ति साधना तथा अनुभूति के रूप में ही टिक सकता है। आज जो धर्म संगठित धर्म के रूप में विद्वेष तथा ईर्ष्या को पनपा रहे हैं, ऐसे धर्म कभी भी स्थायी नहीं हो सकते जब तक कि वे अपने मौलिक सिद्धातों को मानव के हित साधन के रूप में परिवर्तित नहीं करते। लेकिन आज धर्म मानव का तभी हित साधन कर सकता है जब सभी धर्माचार्य मिल बैठकर एक ऐसी आचार-संहिता का निर्माण करें, जिसमें सब के सुख की कामना हो, सब का हित छिपा हुआ हो, सबको निरोग देखने की भावना हो तथा कोई भी दु:ख का भागी न हो।

गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य के धार्मिक परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत भारतीय जनता के धर्म एवं उससे जुडे हुए पहलुओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है। सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजी ने वर्तमान युग के धर्म के स्वरूप का यथार्थ चित्रण इस प्रकार किया है-“ये मज़हब, ये धर्म, जिनके प्रवर्तक संसार के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य थे, जिनका उद्देश्य मानवता को ऊँचा उठाना था और मनुष्य के अन्दर दया, सच्चाई, भ्रातृत्व और श्रेष्ठतर भावनाओं को विकसित करना था, आज केवल ढकोसला रह गये हैं, आज उनकी आड़ में क्या-क्या अनाचार हो रहे हैं, कैसे-कैसे अत्याचार तोड़े जा रहे हैं, किस तरह एक-दूसरे के लिए ज़हर बोया जा रहा है, एक को दूसरे से लड़ाया जा रहा है” 3।

ईश्वर का अस्तित्व

प्राचीन काल से लेकर भारतीय समाज में ईश्वर के अस्तित्व के विषय में वाद-विवाद करते आ रहे हैं, पर वर्तमान समाज में भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। भारत एक धर्म-प्रधान देश है। यहाँ हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि के लोग आपस में मिल-जुलकर रहते हैं, फिर भी ईश्वर के प्रति इन लोगों का अवधारणा भी अलग है। बुद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध के विचार में-“ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने से मनुष्य का आत्म-बल क्षीण हो जाता है” 4।

हिन्दु धर्म में “इस विश्व और ब्राह्माण्ड का कर्ता केवल एक ईश्वर है। वह सर्वशक्तिमान, निर्विकार, अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। वही सृष्टि का रक्षक है” 5। इस्लाम धर्म के अनुसार-“हर मुसलमान यह विश्वास करता है कि परमेश्वर एक है और अकेला है, वह सर्वशक्तिमान, शाश्वत और सर्व महान है। सभी उसके प्रति विनीत है। सभी को उसमें लीन होकर आनंदित होना चाहिए और उसके प्रति विनयशील होना चाहिए, क्योंकि वे सभी गौण प्राणी हैं जो उसकी कृपा के अभिलाषी हैं और परमेश्वर उनपर अपनी कृपा करता है जो पवित्र हैं और उसके आदेशों को मानते हैं” 6।

ईसाई धर्म के अनुसार “परमेश्वर एक है और उससे ह्मदय से प्रेम करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सत्य, पवित्र, दयालु, न्यायप्रिय तथा प्रेम करनेवाला है। वह प्राणि-मात्र का पिता है। वह दुष्ट और पापियों को भी क्षमा करता है। जो लोग अपने पापों का प्राश्चित करते हैं उन्हें ईश्वर प्रेम करता है, उन्हें क्षमा करता है और उनकी रक्षा करता है”7। “जैन धर्म अनीश्वरवादी है। उसके अनुसार मनुष्य में अन्तर्निहित शुभ शक्तियों की अभिव्यक्ति ही ईश्वर है। ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो विश्व की सृष्टि तथा उसका पालन एवं संहार करती हो, संसार किसी का बनाया हुआ नहीं है, वह तो अनादि और अनन्त है” 8। सिक्ख धर्म के अनुसार “ईश्वर केवल एक है जिसने संसार की सृष्टि की है। वह अजर, अजन्मा, स्वयंसिद्ध, महान और दयालु है। वह अनेक रूपों से अपने आपको व्यक्त करता है, अतएव उसको अनेक नामों से पुकारा जा सकता है” 9।

भारत के लोग प्राचीन काल से ही प्रकृति एवं उससे जुडे हुए वस्तुओं को ईश्वर का स्थान देकर पूजता आ रहा है। गुप्तजी के अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में इसका स्पष्ट उल्लेख देख सकता है-“नदी, समुद्र, पहाड़-पत्थर, सूर्य-चन्द्रमा, धरती-आकाश, आँधी-वर्षा, पेड़-पौधे, हल-कूदाल, चूल्हे-चौके, चक्की-जांत, अस्त्र-शस्त्र आदि उन सभी वस्तुओं को देवी-देवता बना दिया, जिनका मनुष्य के जीवन से संबन्ध है” 10। वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी मानव प्रकृति के अलावा रोज़गार से जुड़े हुए वस्तुओं की पूजा भी करते हैं-जैसे

मशीनें, मोटर, वायुयान, कंप्यूटर, तराजु-बाट, कलम-किताब आदि। इनमें शिक्षित और अशिक्षित दोनों शामिल हैं। इसका प्रमाण गुप्तजी के अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में परिलक्षित है। उपन्यास में मास्टरजी कहते हैं- "बिना भगवान के, देवी-देवता के किसी का भी काम नहीं चलता, चाहे वैज्ञानिक हो, बुद्धिजीवि हो, शिक्षित हो, या अनपढ" 11।

भारतीय जनता धर्म को मानव-जीवन का एकमात्र आधार समझा जाता है, इसलिए विज्ञान और तकनीकि के असर पड़ने पर भी यहाँ के लोगों में धर्म एवं ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा कम नहीं हुई हैं-"लोग ईश्वर को मानते हैं, देवी-देवताओं को मानते हैं, इस संसार में जो-कुछ होता है, उसी की मर्जी से होता है, उसकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं डोलता" 12।

कोई भी शुभ अवसर जैसे विवाह पर दूल्हा-दुल्हन को, ईश्वर के नाम पर, बुजुर्ग लोगों का आशिर्वाद देना यहाँ की धार्मिक अनुष्ठान है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरल और अम्मू के विवाह में डाक्टर राजन इस प्रकार आशिर्वाद देता है-"मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम दोनों को सुखी रखे और तुम जीवन में जो भी करो, उसमें सफलता मिले" 13।

ईश्वर पर अत्यधिक विश्वास रखने के कारण लोग, ईश्वर की पूजा-अर्चना, व्रत-उपवास, तीर्थ-यात्रा, प्रसाद या भभूत लेते हैं।-"जैसे दुर्गा-पाठ, गायत्री-पाठ, रविवार को नमक न खाना, पूर्णिमा को सामर्थ्यानुसार ब्राम्हणों को भोजन कराना, हर शनिवार को पीपल पर जल चढ़ाना आदि"14। सुख-दुख एवं जीवन में आनेवाले संकटों का संबन्ध ईश्वर के साथ जोड़ देते हैं। संतान न होने पर ईश्वर का शाप हुआ है ऐसा सोचकर उसकी प्राप्ति के लिए ईश्वर की पूजा करते हैं। गुप्तजी अपने उपन्यासों में इसका उल्लेख किया है। अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में मास्टराईन को बच्चे न होने के कारण मोहल्ले की औरतों का कथन मास्टराईन अपने पति से सुनाती है-"मोहल्ले की बूढ़ी औरतों ने कई बार कहा कि मास्टराईन, तुम ब्राहस्पति का व्रत रखो और वासुदेवजी पर जल चढ़ाओ, तो तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा" 15।

फिर भी आधुनिक युग में धर्म एवं ईश्वर के प्रति लोगों के मन में विश्वास की कमी दिखाई पड़ती है। इसका प्रमुख कारण लोगों में बढ़ती नास्तिकता है। देश में आज नास्तिकता इस तरह पनपने का प्रमुख कारण विज्ञान ही है। आज समाज में लोग विषमताओं से पीड़ित होकर ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न खड़ा कर दिया है। इसका उल्लेख गुप्तजी के छोटी सी शुरुआत उपन्यास में दृष्टिगत है। उपन्यास में सरल कहता है-"समाज में जो अनाचार है, अत्याचार है, शोषण है, भ्रष्टाचार है, असमानता है, कोई मालिक है, कोई नौकर है, कोई जमींदार हैं, कोई किसान हैं, कोई बाबू और अफसर हैं और कोई मज़दूर और भिखारी हैं, कोई अछूत, यह सब गोरखधन्धा ईश्वर क्यों चला रहा है। अगर ईश्वर है और वह सबका पिता है, तो वह ऐसे विषम समाज का कभी निर्माण नहीं कर सकता" 16।

साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिक दंगों और मारकाट के बीच आज़ादी मिलना, आज़ादी के साथ देश के दो भागों में विभाजित करना, बीसवीं शती में भारत की ही नहीं; विश्व इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। वास्तव में साम्प्रदायिकता ने पहले से चले आ रहे धर्म के पवित्र रूप को बहुत विकृत और विकराल कर दिया है, जिसके कारण अब धर्म केवल ढोंग बनकर रह गया है। स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्यकारों ने साम्प्रदायिक समस्या को लेकर बहुत अधिक रचनाएँ की हैं। देश में बहुत पहले ही साम्प्रदायिकता की भावना जाग उठी थी। संकुचित धार्मिक भावना से ही पहले उसका आरंभ हुआ। हिन्दी साहित्य जगत के सम्राट प्रेमचंदजी ने अपने कायाकल्प उपन्यास में साम्प्रदायिकता पर बड़ी तीव्रता से विचार किया है। प्रेमचंदजी के बाद यशपालजी और फिर भैरव प्रसाद गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में साम्प्रदायिकता को चित्रण करने का प्रयास किया है।

सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजी ने साम्प्रदायिकता पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता के मूल कारणों की खोज भी गुप्तजी ने बड़ी सूक्ष्मता से की हैं। साथ ही उसके समाधान की ओर उन्होंने इशारा

किया है। साम्प्रदायिकता का मूल कारण सिर्फ धार्मिक मतभेद नहीं है, बल्कि अर्थ और राजनीति पर निर्भर हैं। स्वार्थ सिद्दि के हेतु साम्प्रदायिकता का उपयोग करनेवाले अवसरवादी राजनीतिक दल के लोगों का चित्रण भी इस उपन्यास में मिलता है। मन्ने और मुन्नी के बचपन की घटनाओं के वर्णन से गुप्तजी स्पष्ट किया है कि देश में साम्प्रदायिकता की जडें गहराई तक पैठ चुकी हैं। हिन्दी परीक्षा देने के उद्देश्य से प्राइमरी पाठशाला में मन्ने के प्रवेश का विरोध करके गाँव के हिन्दु-मुसलमानों ने साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का परिचय इस प्रकार किया है-"उन्होंने गाँव में यह प्रचार किया कि हिन्दु लड़के मुन्नी के मुकाबिले में पंडितजी ने मुसलमान लड़के मन्ने को खड़ा कर दिया है और इस्लामिया स्कूल के मास्टरों ने यह कहा कि मन्ने तो अब ज़रूर काफिर हो जाएगा" 17।

साम्प्रदायिक भावनाओं के प्रचार-प्रसार में शिक्षा संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन संस्थाओं ने विद्यार्थियों के दिल-दिमाग में साम्प्रदायिकता का ज़हर भर दिया है। गुप्तजी के सती मैया का चौरा उपन्यास में इसका स्पष्ट चित्रण हम देख सकते हैं। इसी उपन्यास में गुप्तजी वर्तमान साम्प्रदायिकता के प्रति अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं-"शिक्षित, समझदार लोगों में भी आज कितने साम्प्रदायिक भावना से अछूत हैं, कहना कठिन है और उसका सबसे भयंकर रूप आज देश की राजनीति में देखने को मिल रहा है। यह प्रवृत्ति देश को कहाँ ले जाएगी, किस गड्ढे में गिरायेगी, कौन जानो" 18।

धार्मिक एकता और वैमनस्य

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र होने के नाते यहाँ विभिन्न धर्मों के लोग एकता के साथ, आपस में भाई-बहन के रूप में निवास करते हैं। अगर धर्म के बीच एकता है तो देश में एकता और शांति स्थापित होगी। गुप्तजी के छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरल और आफ़ताब और सती मैया का चौरा उपन्यास में मन्ने और मुन्नी की दोस्ती, हिन्दु-मुस्लिम एकता का सुन्दर चित्रण है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में सरल कहता है-"हिन्दु-मुसलमान होने से क्या होता है,

सभी तो इन्सान है" 19। उसी प्रकार सती मैया का चौरा उपन्यास में मुन्नी कहता है-"मैं आदमी-आदमी में कोई फर्क नहीं समझता" 20।

वर्तमान भारत में धर्म का रूप ही बदल गया है। देश में धर्मों के बीच वैमनस्य दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही हैं। इससे देश की एकता में विघटन की स्थिति पैदा हुई है। स्वतंत्रता के पहले अंग्रेज़ों ने भारत के हिन्दु-मुस्लिम के लोगों के बीच फूट का बीज डालकर अपने शासन को बनाए रखने का सदैव प्रयास किया। अंग्रेज़ों की इस कूट नीति का ही परिणाम है आज के समाज की हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य। सती मैया का चौरा उपन्यास में गुप्तजीपिअरी गाँव की तीन पीढ़ियों के संघर्ष की कहानी कहकर हिन्दु-मुसलमान भेद-भाव, उनके वैमनस्य आदि को व्यक्त करते हैं। उपन्यास में मुंशीजीमन्ने को जो कहानी सुनाते हैं, उसमें स्वतंत्रता-पूर्व गाँव की अवस्था और आज की अवस्था के बारे में बताते हैं-"मुझे इस गाँव से मुहब्बत है, जिसके पुरखेंबहादूर थे, आज़ादी पसंद थे और अपनी आज़ादी के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर देनेवाले थे, जो मेल-मुहब्बत और एक की कीमत जानते थे जो न हिन्दु थे, न मुसलमान थे, सिर्फ इन्सान थे.....जो हिन्दु होकर मुसलमानों की ईद मानते थे और मुसलमान होकर हिन्दुओं की होली मनाते थे। लेकिन आज होली पर भूल पर से कोई हिन्दु किसी मुसलमान पर रंग डाल दे, तो बलवा हो जाए, ईद पर आज भूले से कोई मुसलमान हिन्दु के गले मिले, तो कौन जाने वह छुरा कलेजे में घुसेड़ दे।.....हाय!-हाय! यह गाँव क्या था और क्या हो गया" 21। इस प्रकार इसी उपन्यास में गाँव के हिन्दु स्कूल में मुसलमान लड़का पहले स्थान पर आने पर क्रुद्ध होकर वहाँ के हिन्दु लोग कहते हैं-"यह सरासर अन्याय है! उनकी बदली कराके दम लेंगे। हिन्दुओं के स्कूल में मुसलमान अव्वल आ जाय"22।

समाज में आज धर्मों के बीच की वैमनस्य के कारण झगड़ाएँ एवं लड़ाइयाँ होना स्वाभाविक बन गया है। इसका उल्लेख भी गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में किया है। सती मैया का चौरा उपन्यास में मुसलमान रहमान का दीवार हिन्दु लोग तोड़ने पर रहमान और किसन के बीच झगड़ा हो जाता

है। झगड़े में किसान रहमान को धमकी देकर कहता है-“रहमान, तुम ने एक लफ़्ज भी जबान से निकाली, तो समझ लेना! चुपचाप अपने घर में घुस जाओ और कल अपने मालिकों से कह देना कि पाकिस्तान का रास्ता नापें” 23। इस प्रकार छोटी सी शुरुआत उपन्यास में गुप्तजी स्वयं कहते हैं-“जब दंगा होता है, कितने ही निर्दोष लोग मार दिये जाते हैं। कितनी ही दूकानें और घर जला दिये जाते हैं” 24।

अन्धविश्वास

धर्म का मूल तात्पर्य ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास रखना है। भारतीय अपने सुख-दुख का निर्माता ईश्वर को मानते हैं। दर्शनशास्त्र के विद्वान इसे ईश्वरवाद मानते हैं, तो वैज्ञानिक अन्धविश्वास। भारत के गाँवों के लोग अज्ञानी, अशिक्षित और धार्मिक होने से वे परंपरागत रूढियों, मान्यताओं का पालन एवं रक्षण करते हैं, इसलिए उनमें अंधश्रद्धा निर्माण हुई है। फलस्वरूप भूत-प्रेत, मंत्र-तंत्र, शकुन-अपशकुन, विधवा का मुँह न देखना आदि पर विश्वास करते हैं। अन्धविश्वास के कारण ही वे इन्हें सही मानते हैं। वास्तव में समाज के लोगों में धर्म का प्रभाव अधिक होने से उनमें अन्धविश्वास की प्रवृत्ति अधिक रही है। अन्धविस्वास के कारण लोगों को अनेक कष्ट सहना पड़ता है।

अन्धविश्वास मानव के आत्म-शक्ति को क्षीण करता है। वह समाज एवं देश के विकास में बाधा बनती है। अन्धविश्वास में विश्वास रखने वाला यथार्थ जीवन से भागने का इच्छुक है। इस कथन का उल्लेख गुप्तजी के अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में देखने को मिलता है-“अन्धविश्वास से तो मनुष्य का आत्म-बल, आत्म-विश्वास नष्ट होता है, जीवन की वास्तविकताओं का सामना न कर उनकी ओर आँख मूँद लेने की प्रवृत्ति को बल मिलता है......अन्धविश्वास के कारण समाज के विकास में बड़ी रुकावटें आती है, आदमी की सामाजिक चेतना कुंठित हो जाती है”25। इसी उपन्यास में अन्धविश्वास लोगों में पुष्ट होने का कारण भी बताया है-“जब लोगों के लिए प्रकृति द्वारा प्रस्तुत घटनाओं की तर्क-संगत व्यवस्था करना असंभव होता है, तो वे उन्हें अलौकिक चमत्कार पूर्ण रीतियों, भगवान, देवी-देवताओं के चमत्कार

कहकर उनपर विचार करना छोड़ देते हैं और इस तरह अन्धविश्वासों को पुष्ट करते रहते हैं” 26।

अन्धविशवास वर्तमान भारतीय समाज में सर्वत्र व्याप्त हैं। लेकिन शहरों की अपेक्षा गाँव के लोगों में अन्धविश्वास की प्रवृत्ति अधिक रही है। आजकल अनपढ़ लोगों की भाँति पढ़े-लिखे लोगों में भी अन्धविश्वास अधिक मात्रा में पायी जाती है। अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में मास्टरजी के माध्यम से गुप्तजी कहते हैं-“यह देखकर सचमुच आश्चर्य होता है और दुख भी कि सभी पढ़े-लिखे लोग अन्धविश्वास तथा धर्मान्धिता से मुक्त नहीं होते। जो पढ़े-लिखे लोग सार्वजनिक रूप से अन्धविशवास तथा धर्मान्धिता का विरोध करते हैं और विवेकशील होने का दावा करते हैं, उनमें भी बहुत सारे ऐसे होते हैं, जो निजी जीवन में अन्धविश्वासी तथा धर्मान्ध की तरह आचरण करते हैं। ऐसे लोग उन सीधे-साधे अनपढ़ गंवारों से कहीं अधिक खतरनाक होते हैं, जो अज्ञानवश अन्धविश्वासी तथा धर्मान्ध होते हैं”27।

गुप्तजी के छोटी सी शुरुआत, धरती आदि उपन्यासों में भी अन्धविश्वास की प्रवृत्ति का चित्रण दृष्टिगत है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में आफ़ताब अपना दोस्त सरल से कहता है-“मेरे अब्बा जन्त्री देखकर अच्छा दिन निकालकर कोई काम करते हैं और यात्रा पर निकलते हैं। मेरे लिए वही दिन-तारीख निकालते हैं”28। इस प्रकार सरल हाई-स्कूल जाने के दिन माई ने अन्धविश्वास की प्रवृत्ति दिखाती है-“माई ने उसी तरह अपने हाथ से दही चटाया था और माथे पर दही और हल्दी का टीका लगाया था और ओसारे के दाबे पर जल का कलसा रखा था” 29।

धरती उपन्यास में मोहन के काका और माई में धार्मिक अन्धविश्वास की प्रवृत्ति देखने को मिलता है। मोहन के स्कूल जाने के दिन वह पूजा करवाती है। मुहल्ले में ढिंढोरा पिटवाती है कि मेरा बेटा स्कूल जानेवाला है, कोई खाली घड़ा लेकर सामने न आये। इस संदर्भ का स्मरण करते हुए मोहन अपने बचपन की यादें पत्नी से सुनाता है-“फिर मेरे माथे पर दही का टीका लगा था, दरवाज़े पर घड़ा भरके रखा और घूम-घूमकर मोहल्ले में कह आयी

कि मेरा बेटा कस्बे के स्कूल जा रहा है, कोई खाली घड़ा लेकर न निकले" 30।

धरती उपन्यास में अन्धविश्वास से भरे एकतिजिया मेले का चित्रण गुप्तजी ने इस प्रकार किया है-"मेले में जानेवाली औरतें किसी-न-किसी रूप में समाज से उपेक्षित या बहिष्कृत होती थीं। किसी का पति उसे न चाहता था, किसी के बच्चा न होता था, किसी की शादि न होती थी, किसी को हिस्टिरिया थी, कोई सेक्स से पीड़ित थी, किसी को अन्दररूनी रोग होता, कोई बदमाश होती, कोई विधवा होती। इनके लिए जीवन का कोई अर्थ न था। ये 'नौका बाबा' के यहाँ जाकर अपने को यातो यातना देती थीं या अपनी सेक्स की भूख मिटाती थीं। यह जगह व्यभिचार का बहुत बड़ा अड्डा था, जो बाक़ायदे चलाया जाता था"31। मोहन मेले का वर्णन करते हुए कहते हैं-"झुंड की झुंड औरतों को वहाँ खेलते देखकर भय से काँप उठा था। चारों ओर जैसे भूत-प्रेत नाच रहे हो। बाल बिखराए हुए, कपड़े-लत्ते का होश-हवास खोकर औरतें सिर झुमा-झुमाकर इस तरह खेलती थी कि उन्हें देखकर सिर चकराने लगता था। कोई-कोई बक रही होती, कोई-कोई सिजदा ले रही होती, कोई-कोई ज़ोर-ज़ोर से धरती पर सिर पटक रही होती। किसी के सिर पर खून की धारा बहती होती, किसी-किसी के माथे पर चोट के बड़े-बड़े गुमटे निकले होते। चारों ओर दूध के कड़ाहे चढ़ होते और धूप-चन्दन जलते होते। कोई-कोई औरत तो खेलते-खेलते कड़ाहे के उबलते दूध को हाथों से ले-लेकर हवा में उड़ाने लगती थी और कोई-कोई तो कड़ाहे में अपना सिर ही डाल देती थी" 32।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

संस्कृति शब्द का अर्थ है परिष्कार करना। संस्कृति उस समस्त व्यवहार एवं आचरण का नाम है, जो व्यक्ति को परंपरा से प्राप्त होता है। "संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आदर्श, कानून, प्रथा एवं अन्य किन्हीं भी आदतों एवं क्षमताओं का समावेश होता है जिन्हें मानव ने समाज के सदस्य होने के नाते प्राप्त किया है" 33। समाज और संस्कृति का संबन्ध अटूट है। समाज से पृथक न तो संस्कृति का कोई अर्थ है

और न ही संस्कृति के उद्भव, विकास व निरन्तरता की कल्पना की जा सकती है। मानव संस्कृति से विरासत में आदर्श नैतिकता प्राप्त कर उसके सहारे समाज में अपना आचरण करता है। संस्कृति में मानव के व्यवस्थित व्यवहार का लेखा-जोखा निहित रहता है, जिसके सहारे वह मानव को जीवन में सही दिशा निर्देशन करने का महान कार्य करती है। भारतीय संस्कृति के बारे में देश रत्न डॉ.राजेन्द्र प्रसाद का कहना है-"यह केवल काव्य की भावना नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य है, जो हज़ारों वर्षों से अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए अनेकानेक जल-प्रपातों और प्रवाहों का संगम-स्थल बनकर एक प्रकांड़ और प्रगाढ़ समुद्र के रूप में भारत में व्याप्त है, जिसे भारतीय संस्कृति का नाम दे सकते हैं"। 34

संस्कृति विविध धर्म, जाति, संप्रदाय के लोगों में मानवीय संबन्धों को मज़बूत बनाती है। इससे मानव-मानव में प्रेम, दया के भाव जागृत होते हैं और सभ्यता का आचरण करता है। संस्कृति अथवा सामूहिक चेतना ही हमारे देश का प्राण है। संस्कृति के निर्माण में योग देनेवाले निर्णायक तत्व खान-पान, पर्व-त्योहार, रूढियाँ, भाषा, मेला, रीति-रिवाज़, नैतिक मूल्य आदि भारतीय जीवन को अनुशासित एवं व्यवस्थित रखने में सहायता करते हैं। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है-अनेकता में एकता और भिन्नता में समानता। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के द्वारा भारतीय संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया है।

किसी भी देश के लिए अपना अलग-अलग संस्कृति होती हैं। भारतीय संस्कृति देश की अमूल्य निधि है। यह परंपरागत रूप से प्राचीन काल से देश को मिली एक वरदान है। लेकिन वर्तमान काल के भारतीय जीवन में पाश्चात्य देशों की संस्कृति का असर पड़ने लगा है। गुप्तजी के विचार में "मनुष्य के स्वभाव और संस्कार तो अचानक या जल्दी नहीं बदल सकते, वे धीरे-धीरे बदलते हैं, जीवन का परिवर्तन उनपर अचानक प्रभाव नहीं डाल पाता, चाहे वह ज़रा देश के लिए उन्हें झकझोर भले ही दे। स्वभाव और संस्कार की जड़ें आत्मा में बहुत गहरे होती हैं, जाने कितने युगों की वे पालित और पोषित होती

है, उन्हें हिलाना कोई साधारण काम नहीं होता बल्कि अक्सर तो यह होता है कि ये स्वभाव और संस्कार ही जीवन की छाती पर बैठ उसे जड़ से बनाये रहते हैं, उसे बदलने ही नहीं देता" 35।

रीति-रिवाज़ एवं नैतिक मूल्य

विश्व में मानव अनेक समूहों और समुदायों में बँटा है। प्रत्येक मानव समूह के रीति-रिवाज़ और संस्कार अलग अलग है। सभी अपने ढंग से अपने धर्मों, पंथों, त्योहारों, भाषाओं और पारिवारिक आचरणों का पालन करते हैं। प्राचीन भारतीय समाज अपने रीति-रिवाज़ एवं नैतिक मूल्य के दृष्टिकोण के फलस्वरूप एक आदर्श समाज रहा है। भाईचारे की जो भावना इस देश में विद्यमान थी वह अन्य देशों के लोगों के लिए आदर्श रही है। भारतीय समाजिक जीवन में यहाँ की रीति-रिवाज़ एवं नैतिकता का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके कारण समाज और देश में शान्ति एवं एकता कायम रहती है। अगर कोई व्यक्ति देश में यहाँ की रीति-रिवाज़ एवं नैतिक मूल्यों के आधार पर जीवन व्यतीत करता है, तो उसका परिवार अच्छा होगा, उसका समाज एवं देश अच्छा होगा। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में देश के रीति-रिवाज़ों एवं नैतिक मूल्यों का चित्रण किया है।

भारतीय समाज में विवाह के समय कई रीति-रिवाज़ों होते हैं। स्त्री-पुरुष अपने सगे संबन्धियों के सामने विवाहित होते हैं। यही रीति पुराने समय से लेकर अभी तक चलती रहती है। विवाह के दिन के बहुत पहले से ही उसकी तैयारी शुरु करते हैं। गुप्तजी के अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में भारतीय विवाह के समय के रीति-रिवाज़ों का चित्रण इस प्रकार किया है- "विवाह के पहले लड़कियों को सवा महीने मांझे में बैठाया जाता है। उनसे कोई काम नहीं कराया जाता, उन्हें कहीं बाहर नहीं जाने दिया जाता। सुबह-शाम उन्हें तेल-उबरन लगाकर नहलाया जाता है, ताकि उनका रूप-रंग निखर जाए, शरीर कोमल बन जाए। उन्हें अच्छे से अच्छा भोजन दिया जाता है ताकि उनका स्वास्थ्य ठीक हो जाए"36।

भारतीय समाज में लोग बड़ों का आदर करते हैं। परिवार में बच्चे अपनों से बड़े व्यक्तियों को देखते ही नमस्ते करते है, फिर पाँव छूकर अपना आदर दिखाते हैं। बड़े लोग आपस में मिल जाने से ईश्वर का आशिर्वाद देते हैं। हिन्दु धर्म के लोग हैं तो राम के नाम पर, इस्लाम धर्म के लोग अल्लाहु के नाम पर, ईसाई धर्म के लोग ईसा के नाम पर आशिर्वाद देते हैं। इसका सुन्दर उदाहरण गुप्तजी ने चरम बिन्दु कहानी में चित्रण किया है-"राह धार पर लोग मिलते तो जुहार करते-राम, राम चौधरी काका! ज़रा रुककर पानी-वानी तो पी-पिला लें!- और रामधन कहते-राम-राम, भाई"37।

भारतीय परिवारों से कोई बाहर काम के लिए या पढ़ने के लिए निकलते समय अपनों से बड़े व्यक्तियों का आशिर्वाद ग्रहण करते हैं। आपस में मिलते समय नमस्ते कहना भी भारतीय जनता के रीति-रिवाज़ का निशान है। गुप्तजी के छोटी सी शुरुआत उपन्यास में नमस्ते का महत्व पर प्रकाश डालते हुए भारत के विख्यात दार्शनिक प्रोफ़सरसर्वपल्लीराधाकृष्णन कहते हैं-"नमस्ते कैसे किया जाता है? देखो! नमस्ते ऐसे किया जाता है, कहकर वे सीधे खड़े हो गये। फिर उन्होंने दोनों हाथ सीने के पास ले जाकर जोड़ा और सिर झुकाकर जुड़े हाथों से माथा सटाकर वे बोले, नमस्ते"38। इसी उपन्यास में सरल पहली बार स्कूल जाते समय अपने परिवारवालों से आशिर्वाद लेता है-"बाबुजी और भाई के पाँव छूकर सरल ने दरवाज़े पर खड़ी माई के पाँव छूए"39। उसी प्रकार बिगड़े हुए दिमाग कहानी में धीरेन"गाँव की पढ़ाई खत्म कर जब शहर के हाई-स्कूल में पढ़ने जाने लगा, तो विदा होते समय उसने अपनी माँ के पैर छूये"40। गंगा मैया उपन्यास में मटरू से जेल में मिलने आये ससुर और साले पर वे अपना आदर दिखते हैं-"मटरू ससुर का पैर छू चुका, तो साला उसका पैर छूकर उसे लिपट गया"41।

भारतीय समाज में नारियों को पवित्रता की दृष्टि से देखता है तथा उन्हें सम्मान भी किया जाता है। भारतीय पुरुष नारियों को माँ-बहन के रूप में ही देखते हैं। यही आदर भावना के कारण समाज के लड़के, लड़कियों के पास जाने तक डर जाते हैं-"लड़कियों को वह बड़े सम्मान और पवित्रता की दृष्टि से

देखता था और शायद इसी कारण वह उन्हें दूर से ही देखता था, उनके पास जाने से उसे डर लगता था”42। वर्तमान भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रास की चर्चा करते हुए बड़े-बूढ़े यह कहते हैं कि आज के नवयुवकों में नैतिकता नाम की कोई चीज़ है ही नहीं। नव-युवक नैतिकता की बातें करते हिचकते हैं। सामाजिक जीवन में सर्वत्र आपाधापी, स्वार्थ का बोलबाला है। नैतिकता केवल मात्र पुस्तकों के पृष्ठों में ही अंकित रह गयी है। भारतीय जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उसकी समाप्ति होती जा रही है। इसके कारण परिवार, समाज एवं देश में कलुषित वातावरण पैदा होता है। नैतिकता का यह ह्रास अत्यन्त दुखदायी है। गुप्तजी भी अपने कथा-साहित्य में नैतिक मूल्यों के पतन का चित्रण भी किया है।

भाग्य देवता उपन्यास में गुप्तजी ने आधुनिक युग के युवा पीढ़ी का चित्रण इस प्रकार किया है-“उधर सिगरेट जलाकर पलंग पर पड़कर, कश लेता हुआ प्रकाश नशे का मज़ा ले रहा था। वाह! क्या बात है! वह बार-बार होठों में ही बुदबुदा रहा था। उसे आज जाकर मालुम हुआ था कि लोग शराब क्यों पीते हैं। क्या जमी थी महफिल! महफिल में एक लड़की के होने से ही क्या बात पैदा हो गयी थी”43। इसी उपन्यास में प्रकाश की माँ कमरे में आकर मेज़ पर सिगरेट की पेकट और माचिस देखकर कहती हैं-“तू कहता था कि सिगरेट नहीं पीता। लेकिन तू सिगरेट ही नहीं शराब भी पीने लगा और लड़कियों का साथ भी करने लगा। रात तुझे पलंग पर जाने के पहले कपड़े और जूते उतारने की सुधि भी नहीं रही थी क्या? तुझसे क्या करूँ, लेकिन ये अच्छी बातें नहीं है”44। इस प्रकार का संदर्भ गुप्तजी के सिविल लाइन का कामरा कहानी में भी दृष्टिगत है-“इस विषय में श्रीधर के पिता से कोई बात करता, तो वह कहते-लड़का बिलकुल अपने मन का है। किसी की बात नहीं सुनता”45।

भारतीय समाज में नैतिकता के ह्रास का अनेक कारण हैं, तो भी इसमें मनुष्य के स्वार्थता ही प्रमुख कारण है। आज भारतीय सामाजिक जीवन में स्वार्थता का शासन है। इसका चित्रण करते हुए गुप्तजी लोहे की दीवार कहानी में कहते हैं-“अगल-बगल के कई क्वार्टरों से निकल-निकल कर कई

बाबू लोग उनके आगे-आगे चलते हुए निकल गये। चेहरे से सभी परिचित होते हुए भी कितने अपरिचित है! रोज़ एक ही बस से जाते हैं, लेकिन कभी उनमें कोई बात नहीं होती, जैसे सभी दूसरे-दूसरे देश के रहनेवाले हों और दूसरी-दूसरी जगह को जा रहे हो”46। इस तरह वर्तमान भारतीय जनता में नैतिक मूल्यों का अभाव देखने को मिलती है। जब तक इस देश के रीति-रिवाज़ों एवं नैतिक मूल्यों में पुन: स्थापना नहीं हो जाती तब तक हमारी प्रगति व्यर्थ ही चली जाएगी।

इस प्रकार गुप्तजी के कथा-साहित्य का धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि देश में धर्म और संस्कृति परस्पर जुड़े हुए हैं और सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त विभिन्न पवित्र विश्वास ही धर्म है, जो मानव समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं तथा जिनके आधार पर वे अपने जीवन क्रम निर्धारित करते हैं एवं आकस्मिक आपदाओं को ग्रहण करने का संबल करते हैं।

भारतीय संस्कृति हमारी मानव जाति के विकास का उत्तम स्तर कही जा सकती है। इसी की परिधि में सारे विश्वराष्ट्र के विकास के-वसुधैव कुटुम्बकम् के सारे सूत्र आ जाते हैं। हमारी संस्कृति में जन्म के पूर्व से मृत्यु के पश्चात् तक मानवी चेतना को संस्कारित करने का क्रम निर्धारित है। मनुष्य में पशुता के संस्कार उभरने न पाएँ, यह इसका महत्वपूर्ण दायित्व है। भारतीय संस्कृति मानव के विकास का आध्यात्मिक आधार बनाती है और मनुष्य में-संत, सुधारक, शहीद की मनोभूमि विकसित कर उसे मनीषी, महामानव, देवदूत स्तर तक विकसित करने की जिम्मेदारी भी अपने कंधों पर लेती है। हमारी संस्कृति की इसी महानता से वह संसार में गौरव प्राप्त चुकी हैं।

भोजन

विश्व में मानव के अस्तित्व खान-पान के बिना संभव नहीं हैं। खान-पान हर देश की संस्कृति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। देशों में अपनी संस्कृति तथा आबोहवा के अनुसार खान-पान का आयोजन होता है। भारत के उत्तर भाग में वहाँ के मौसम और मिट्टी के अनुसार अधिकतर गेहूँ से बनी रोटी

प्रमुख आहार है, इसके अलावा चावल भी उपयोग करते हैं। सब्जी के रूप में आलू, प्याज, चना आदि का उपयोग किया जाता है। देश के दक्षिण भाग के वातावरण के अनुसार वहाँ चावल प्रमुख आहार है, साथ अनेक सब्जियाँ भी बनाई जाती है। गुप्तजी के जीवन के अधिकांश समय उत्तर भारत में बीतने के कारण उनके कथा-साहित्य में यहाँ के खान-पान का चित्रण अधिक मात्रा में दिखाया है। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में गुप्तजी ने सरल के परिवार के खान-पान का चित्रण इस प्रकार किया है-“हमेशा की तरह भाभी ने थाल में पहले बड़ी आलू-प्याज की सब्जी परसकर उसके सामने रखी थी। फिर चूल्हे के अइले में फुलाकर एक रोटी थाली में डाली थी”47। इसी प्रकार अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में भी भारतीय जनता के खान-पान का चित्रण देखने को मिलता है-“चावल और आलू एक साथ ही पतीली में चूल्हे पर चढ़ा देते और पक जाने पर पतीली उतारकर उसमें नमक डालकर आलू मीस मिलाकर खा लेते”48।

वर्तमान भारतीय जनता के खान-पान में भी पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। इसका चित्रण गुप्तजी के भाग्य देवता उपन्यास में परिलक्षित है। उपन्यास में संतोषी वर्तमान जनता के खान-पान का विवरण देती हुई कहती है-“कोरमा, कोफ्ता, रोगनज़ोस, करी, कबाब, पोलाव, बिरियानी, रूमाल रोटी, तन्दूरी आदि सब वह बना लेती है”49। इस प्रकार एक और दृश्य कौन हाकिम कहानी में देखने को मिलता है “मम्मी, आज हमने सिविल के कार्नर पर साफ्टी खाने का प्रोग्राम बनाया है”50।

वेश-भूषा

देश की संस्कृति में वेश-भूषा का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी देश की परंपरागत वेश-भूषा वहाँ की संस्कृति का निशान है। हर किसी देश में अपना अलग-अलग परंपरागत वेश-भूषा होती है। भारत में परंपरागत रूप से पुरुष धोती, लुंगी और कुर्ता पहनते हैं, तो औरतें साड़ी, घाघरा, चुनरी, काँचली आदि पहनती हैं। इसका उल्लेख गुप्तजी के कथा-साहित्य में दर्शनीय हैं। गंगा मैया उपन्यास में किसान मटरू के वेश-भूषा का चित्रण इस प्रकार किया है-

“मटरू गाढ़े की लुंगी और कुरता पहने बैलों की नाँदों के पास खड़ा था”51। उसी प्रकार अक्षरों के आगे मास्टरजी उपन्यास में मास्टरजी के विवाह के अवसर की वेश-भूषा का चित्रण दिखाया है। उपन्यास में मास्टरजी अपनी पत्नी से कहते हैं-“धोती-कुरता पहनकर कचहरी गये और तुम्हें लेकर घर आ गये”52।

गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में भारतीय परंपरागत वेश-भूषा का चित्रण करने के साथ-साथ वर्तमान काल में पाश्चात्य देश की संस्कृति के प्रभाव से भारतीय वेश-भूषा में आये परिवर्तन का चित्रण भी किया है। वर्तमान भारत के पुरुष पैट-शर्ट और औरतें चुडिदार-पाजामा पहने लगी हैं। इसका उल्लेख करते हुए गुप्तजी अपने छोटी सी शुरुआत उपन्यास में कहते हैं-“अंग्रेज़ी भाषा ने भारतीय भद्र-लोक की काया पलट दी। उन्होंने अपनी पोशाक छोड़कर पैंट, शर्ट, कोट, टाई, बूट पहनना शुरु कर दी और काले साहब बन गये ”53।

मेला

“भारत संस्कृति प्रधान देश है। देश में विविध धर्म, जाति और संप्रदाय के लोग रहते हैं। वे अपने-अपने धर्म, जाति और संप्रदाय के अनुसार मेले का आयोजन कर उन्हें धूमधाम से मनाते हैं। इनके पीछे उनकी सांस्कृतिक भावना ही प्रमुख रहती है। गाँवों में रहनेवाले लोग अपनी गरीबी और अभावों को भूलकर बड़े उत्साह से मेले का आयोजन करते हैं। मेले के दिन गाँव और आसपास के गाँवों में उनकी धार्मिक और सांस्कृतिक भावना लक्षित होती है। मेले के समय नाटक का आयोजन किया जाता है, गीत गाए जाते हैं, उनमें भी सांस्कृतिक दर्शन ही होते हैं” ।54गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में गाँवों में मनाए जानेवाले मेले का चित्रण किया गया है। धरती उपन्यास में मोहन अपनी पत्नी शशी से मेला के बारे में कहता है-“मेला घूमते समय हमने देखा था, बहुत बड़ा तम्बू पड़ा था और फाटक पर ऊपर बहुत बड़े कपड़े पर लिखकर टाँगा गया था, बिहार थियेट्रिकल कम्पनी। और फाटक के दोनों ओर बड़े-बड़े चौखटों में जड़े हुए, चूने थोपे हुए कपड़ों पर गेरू से लिखा हुआ था, आज का खेल इस कम्पनी का सबसे मशहूर नाटक लैला-मजनूँ” । 55

वर्तमान समाज में मेलाओं का स्थान कार्निवल ने छीन लिया है। इसका प्रचलन पाश्चात्य के प्रभाव से भारत में आगमन हुआ है। आज कार्निवल ने मेला का नाम तक बदनाम कर दिया है, हमारी संस्कृति की भी। छोटी सी शुरुआत उपन्यास में कार्निवल का चित्रण किया गया है। उपन्यास में सरल अपने दोस्त आफ़ताब से कार्निवल के बारे में कहता है-"जाड़ों की रात थी, लेकिन कार्निवल में जैसे वसन्त की बहार छायी हो। युवतियाँ कम से कम, बारीक, चमकीले, पारदर्शी कपड़ों में जैसे रंग-बिरंगी, तितलियों की तरह चारों ओर उड़ रही थी और युवा लोग असीम दृष्टि-सुख और संस्पर्श सुख प्राप्त कर रहे थे। कितनी ही तरह खेल हो रहे थे, जो विशेष रूप से युवतियों के लिए आयोजित किये गये थे। झूले, मैरी-गो-रांउड, नृत्य, संगीत, जुआ, मैजिक, बैलून-शूटिंग, निशानाबाजी, तीरन्दाजी आदि और सबसे ऊपर नारी सौदर्य प्रतियोगिता"56। कार्निवल के वर्णन के बाद सरल कहता है-"नारी सौदर्य कभी भी हमारे देश में प्रदर्शन की वस्तु नहीं रहीं। लेकिन अब, अब क्या होगा। अग्रेज़ों ने जो यह प्रदर्शन आरंभ किया है, क्या इसके प्रभाव से हमारा देश अछूता रह जाएगा"57।

त्योहार

भारत संस्कृति प्रधान देश है। यहाँ अनेक धर्म एवं जाति के लोग अपने-अपने संप्रदायों के अनुसार त्योहारों को मनाने में उत्सुक हैं। त्योहारों को मनाने के पीछे भारतीय जनता की धार्मिक भावना प्रमुख रहती है, इसलिए वे बड़ी धूम-धाम से इनका आयोजन करते हैं। इससे भारतीय जनता में एकता, सामूहिकता, बंधुता, सहिष्णुता, अपनापन, प्रेम, सद्भाव आदि के दर्शन होते हैं। भारत में भौगोलिक स्थिति, विविध धर्म, जाति आदि के कारण त्योहारों में विविधता पाई जाती है। नगरी समाज से अधिक ग्रामीण समाज में उन्हें महत्व दिया जाता है और बड़े उत्साह से मनाए जाते हैं। गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में त्योहारों का चित्रण किया है।

गुप्तजी के कथा-साहित्य में प्रमुख रूप से ईद, दीपावली, होली, किसमस आदि त्योहारों का चित्रण देखने को मिलता है। सती मैया का चौरा,

छोटी सी शुरुआत, नया खाता आदि रचनाओं में त्योहारों का उल्लेख प्रमुख रूप से मिलता है। नया खाता कहानी में गुप्तजी ने दीपावली का चित्रण इस प्रकार किया है-"दीवाली की रात है। महाजन की कोठी अनगिनत दीपों की रोश्नी में जगर-मगर कर रही हैं। ऐसा लगता है, जैसे सारे गाँव की दीवाली यह कोठी ही मना रही है"58।

संदर्भ

1. मानव धर्म का विज्ञान, अवध बिहारी लाल गुप्ता, पृष्ठ सं 35
2. समाजवादी उपन्यासकार भैरवप्रसाद गुप्त, सुनन्दा पालकर, पृष्ठ सं 268
3. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 33
4. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 25
5. भारतीय शासन और नागरिक जीवन, डॉ.नरेश मेहता, पृष्ठ सं 22
6. समाज और धर्म,कंचन वर्मा और विमला देवी, पृष्ठ सं 123
7. भारतीय शासन और नागरिक जीवन, डॉ.नरेश मेहता, पृष्ठ सं 34
8. वही, पृष्ठ सं 28
9. वही, पृष्ठ सं 30
10. अक्षरों के आगे मास्टरजी,पृष्ठ सं 27
11. वही, पृष्ठ सं 28
12. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 86
13. वही, पृष्ठ सं 83
14. ज्योतिष (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 104)
15. अक्षरों के आगे मास्टरजी,पृष्ठ सं 26
16. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 474
17. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 20
18. वही, पृष्ठ सं 23
19. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 25
20. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 106
21. वही, पृष्ठ सं 168-169
22. वही, पृष्ठ सं 31
23. वही, पृष्ठ सं 181

24. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 30
25. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 64
26. वही, पृष्ठ सं 29
27. वही, पृष्ठ सं 53
28. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 42
29. वही, पृष्ठ सं 55
30. धरती, पृष्ठ सं 352
31. धरती, पृष्ठ सं 244-245
32. वही, पृष्ठ सं 244
33. समाज शास्त्रीय अवधारणाएँ एवं भारतीय समाज, राम गोपाल सिंह, पृष्ठ सं 154
34. भारतीय संस्कृति, नुतन गद्य संग्रह,संपा. श्री.जयप्रकाश,पृष्ठ सं 14
35. धरती, पृष्ठ सं 65
36. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 36
37. चरम बिन्दु (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 71)
38. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 172
39. वही, पृष्ठ सं 54
40. बिगड़े हुए दिमाग (बिगड़े हुए दिमाग कहानी संग्रह पृष्ठ सं 11)
41. गंगा मैया, पृष्ठ सं 46
42. सती मैया का चौरा, पृष्ठ सं 334
43. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 197
44. वही, पृष्ठ सं 199
45. सिविल लाइन का कमरा (सपने का अन्त कहानी संग्रह पृष्ठ सं 76)
46. लोहे की दीवार (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 75)
47. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 75
48. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 211
49. भाग्य देवता, पृष्ठ सं 360
50. कौन हाकिम (मंगली की टिकुली कहानी संग्रह पृष्ठ सं 23)
51. गंगा मैया, पृष्ठ सं 26
52. अक्षरों के आगे मास्टरजी, पृष्ठ सं 26
53. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 148

54. रामदरश मिश्र के कथा-साहित्य में ग्रामीण जीवन, डॉं.शिवाजीनाळे, पृष्ठ सं 171
55. धरती, पृष्ठ सं 557
56. छोटी सी शुरुआत, पृष्ठ सं 160
57. वही, पृष्ठ सं 160
58. नया खाता (सपने का अन्त,कहानी संग्रह पृष्ठ सं 161)

अध्याय 7

संक्षिप्त रूप में भैरवप्रसाद गुप्त का कथा-साहित्य

साहित्यकार, उपन्यास और कहानी-कला द्वारा मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति करता है। वह समाज की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण मात्र नहीं करता, बल्कि जीवन-सत्य का उद्घाटन भी करता है। अपने आदर्श समाज की स्थापना के निमित्त वह एक मार्ग प्रशस्त करता है। गुप्तजी प्रगतिवादी कलाकार हैं। उनका साहित्य सृजन सोद्देश्य एवं आदर्शमूलक है। उनकी कला, कला के लिए नहीं, वरन् जीवन के लिए हैं। उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से उन्होंने जीवन के विविध पक्षों का गहन चिन्तन किया है। गत अध्यायों में गुप्तजी के कथा-साहित्य का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में चित्रण किया गया है।

हिन्दी कथा साहित्य का आरंभ, मुंशी इंशाअल्लाखाँ की रानी केतकी की कहानी और सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान से माना जाता है। इनका रचना काल संवत् 1860 के आसपास है। श्रीनिवासदास (सं.1902-1944) के परीक्षा गुरु को प्रथम हिन्दी उपन्यास कहा जाता है। इसमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति अधिक है। देवकीनन्दन खत्री ने तिलिस्मी और श्री गोपालराय गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखे। हिन्दी कथा साहित्य की प्रारंभिक रचनाएँ लोकरुचि के अनुसार की गई। उस समय लोकरुचि कुतूहल और तिलस्म-रहस्यों की ओर अधिक थी। पाठकों की रुचि के अनुसार उस समय के लेखन का एकमात्र उद्देश्य था, कुतूहल-तृप्ति द्वारा पाठकों का मनोरंजन। उस समय की रचनाओं में, कुतूहल की तृप्ति के साथ घटना और भावुकता का बाहुल्य है। घटनाओं में वास्तविकता की अपेक्षा कल्पना का प्राधान्य है। कहीं-कहीं उपदेशात्मकता का पुट है। इस समय के उपन्यासों और कहानियों में कथा-तत्व की प्रधानता है और अन्य सभी तत्व गौण हैं। उनकी शैली वर्णनप्रधान है। भाषा सरल और बोलचाल के समीप है।

मुंशी प्रेमचन्दजी से हिन्दी कथा साहित्य का नया युग आरंभ होता है। उन्होंने चरित्र-चित्रण और उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास लिखने की परंपरा आरंभ की। उस समय के उपन्यासों एवं कहानियों में घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के चरित्र तत्व पर अधिक बल है, कल्पना के साथ उनमें, बुद्धि-तत्व का पुट है। उनके लेखन का उद्देश्य, पाठकों का मनोरंजन मात्र नहीं, अपितु समाज की समस्याओं का विश्लेषण करना है। मुंशी प्रेमचन्दजी के उपन्यास आदर्शोन्मुख और यथार्थवादी है। उनके पात्र वास्तविकता तक सीमीत नहीं हैं, वे आदर्श जीवन की उपलब्धि के प्रति प्रयत्नशील हैं। उनके पात्र, व्यापक जीवन से चुने गये हैं। जयशंकर प्रसादजी ने केवल दो उपन्यास लिखे हैं-तितली और कंकाल। प्रसादजी के उपन्यासों में प्रेमचन्दजी के उपन्यासों की अपेक्षा भावना का उत्कर्ष अधिक है। प्रसादजी की भाषा संस्कृत गर्भित और एकरस है किन्तु प्रेमचन्दजी की भाषा पात्रों के अनुकूल बदलती है और सुबोध है। वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास हिन्दी जगत को दिए हैं। उनके उपन्यासों में, ऐतिहासिकता के साथ स्थानीय गौरव और प्रकृति चित्रण की विशेषता है।

प्रेमचन्द के बाद उपन्यासों की वृत्ति अन्तर्मुखी है। इन उपन्यासों में समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक स्थान मिला है। उपन्यास में घटनाएँ चरित्र और मानसिक उथल-पुथल के उद्घाटन में सहायता करने के लिए होती है। इस श्रेणी के उपन्यासकारों में जैनेन्द्रजी अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। अज्ञेय जी और इलाचन्द्र जोशी ने मनोविश्लेषण संबन्धी उपन्यास लिखे हैं। इस श्रेणी के उपन्यासों में पात्रों के आन्तरिक रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है।

वैयक्तिक विश्लेषण संबन्धी उपन्यासों के अतिरिक्त, इस काल में सामाजिक समस्याओं पर आधारित जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं, उनमें मार्क्सवादी उपन्यास विशेष उल्लेखनीय है। इस श्रेणी के उपन्यासों में व्यक्ति के विश्लेषण के साथ समाज-धारा का गहन चित्रण भी रहता है। मार्क्सवाद से प्रभावित उपन्यासकारों में यशपाल, राहुल सांकृत्यायन और भैरवप्रसाद गुप्त विशेष प्रसिद्ध हुए हैं।

यशपालजी की रचनाओं में वर्ग संघर्ष, सर्वहारा वर्ग का शोषण तथा समाज में व्याप्त अनेक अकल्याणकारी प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। यथार्थता के प्रति यशपाल का दृष्टिकोण व्यक्ति और समाज को विकास पथ पर अग्रसर कराना रहा है। भैरवप्रसाद गुप्त ने भी अपनी रचनाओं में समाजवादी दृष्टि से निम्न वर्ग की समस्याओं का यथार्थ अंकन किया है। गुप्तजी की प्रतिभा निरन्तर विकासोन्मुख रही है। राहुल सांकृत्यायन और भैरवप्रसाद गुप्त के सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक विचारों की गंभीरता है। राहुलजी के समान गुप्तजी भी माक्र्सवादीसिद्धान्तों के माध्यम से वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत गुप्तजी के व्यक्तित्व एवं रचना संसार का परिचय दिया है। हिन्दी कथा-साहित्य के आधुनिक काल के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार भैरव प्रसाद गुप्त का जन्म 7 जुलाई 1918 को उत्तर प्रदेश बलिया जिले के सिवानकलाँ गाँव में हुआ। स्कूली शिक्षा के दौरान उनका रुझान लेखन की और हुआ। अपने शिक्षक रघुनाथ राय की प्रेरणा से गुप्तजी कहानी लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। उच्च शिक्षा के लिए जब वे इलाहाबाद इर्विंगक्रिश्चिनकाँलेज में आये तो वहाँ जगदीश चन्द्र माथुर, शिवदान सिंह चौहान जैसे लेखकों एवं आलोचकों के संपर्क और साहित्यिक-राजनीतिक परिवेश में उनके रचनात्मक संस्कारों को दिशा मिली। सन् 1940 में वे गाँधीजी की प्रेरणा से राजगोपालाचारी के साथ चेन्नैपहूँचे और वहाँ हिन्दी प्रचारक महाविद्यालय में अध्यापन करने लगे। बाद में कानपूर के मज़दूर नेता अर्जुन अरोड़ा से उनका संपर्क हुआ और सन् 1944 में वे माया प्रेस इलाहाबाद से जुड़ गये। गुप्तजी अपने अन्य समकालीनों की तरह आर्य समाज और गाँधीवादी राजनीति की राह से वामपंथी राजनीति की ओर आये थे। सन् 1948 में वे कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बने और जीवन के अन्त तक इससे सम्बन्ध रहे। 7 अप्रैल 1995 को अलीगढ़ में अपनी पुत्री के वहाँ गुप्तजी का निधन हुआ।

गुप्तजी की साहित्य रचना यात्रा का आरंभ एक एकांकीकार के रूप में था। उनकी एकांकियों का पहला संग्रह कसौटी सन् 1943 में प्रकाशित हुआ।

एक कहानीकार की हैसियत से गुप्तजी की रचनात्मक सक्रियता का आरंभ सन् 1945 में प्रकाशित मुहब्बत की राहें कहानी संग्रह से होता है। उसी के अगले वर्ष सन् 1946 में उनकी कहानियों का अगला संग्रह फ़रिश्ता आया। इसी वर्ष में गुप्तजी पहला उपन्यास शोले प्रकाशित हुआ। जब गुप्तजी उपन्यास की रचना शुरु की तब हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन अपने पूरे उत्कर्ष पर था। शोले उपन्यास से ही गुप्तजी ने हिन्दी कथा-साहित्य क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई।

गुप्तजी की रचना यात्रा दीर्घकालीन रहा है। सन् 1943 में प्रकाशित कसौटी एकांकी से लेकर मरणोपरान्त सन् 1997 में प्रकाशित एक छोटी सी शुरुआत उपन्यास तक फैली है। उन्होंने अपनी मृत्यु तक कुल 17 उपन्यास, 13 कहानी संग्रह, एक एकांकी और एक नाटक लिखी हैं। इसके अलावा अनेक देशी-विदेशी रचनाओं का अनुवाद भी किया है। सन् 1944 से 1973 तक वे अनेक पत्रिकाओं का संपादन कार्य भी कर चुके हैं।

दूसरे अध्याय में हिन्दी उपन्यास एवं कहानी का उत्भव एवं विकास पर प्रकाश डालने के साथ-साथ हिन्दी कथा-साहित्य में भैरव प्रसाद गुप्त का स्थान, उनके समकालीन परिवेश एवं प्रमुख साहित्यकारों का परिचय दिया है। जब प्रगतिवादी साहित्य में गुप्तजी का प्रवेश हुआ तब राहुल सांकृत्यायन और यशपाल ही ऐसे लेखक थे जो प्रगतिवादी आन्दोलन में अपनी सुनिश्चित पहचान बना चुके थे, यद्यपि इनका भी सर्वश्रेष्ठ रचना-कर्म अभी शेष था। गुप्तजी के लगभग साथ ही जिन अन्य प्रगतिवादी लेखकों ने लिखना शुरु किया, उनमें नागार्जुन और रांगेय राघव प्रमुख हैं। उस समय देश स्वाधीनता की देहरी पर खड़ा था। देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सास्कृतिक स्थितियों का दबाव था।

एक कथाकार के रूप में भैरवप्रसाद गुप्त ने प्रेमचंद की भाँति ही देश के शहर और गाँव को ही अपनी रचना के केन्द्र में रखा और मानवीय शोषण के अनेक रूपों को उद्घाटित करके एक वर्गहीन समाज के निर्माण का रास्ता तैयार किया। सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में बलिया में अस्थायी जनता

सरकार निर्माण और ब्रिटिश सरकार के क्रूर दमन की घटना उनका मुख्य उत्साह स्त्रोत बनी रही। यह जन-संघर्ष, हिन्दु-मुस्लिम जनता का एक साझा संघर्ष था जिसे अत्यंत संवेदनशील रूप में उन्होंने सती मैया का चौरा उपन्यास में उद्घाटित किया है। प्रेमचंद और यशपाल की भाँति इस अर्थ में भी गुप्तजी इस आन्दोलन की अन्तिम कड़ी थे, जो सांप्रदायिक सौहार्द और साझा संस्कृति एवं कार्य भारों के अंकन पर बल देते थे।

तीसरे अध्याय के अन्तर्गत गुप्तजी ने भारतीय जन जीवन से सम्बन्धित सामाजिक पक्ष का विस्तृत चित्रण अपने निजी अनुभवों के आधार पर किया है। देश के पारिवारिक जीवन में स्वार्थ, महत्वाकांक्षा, ईर्ष्या, द्वेष भावना से टकराव की स्थिति निर्माण होकर संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। टूटते हुए संयुक्त परिवारों को देखकर गुप्तजी चिन्ता प्रकट करते हैं। पारिवारिक रिश्तों में दिन-प्रति-दिन विघटन हो रहा है। इस पर गुप्तजी अपने कता-साहित्य में अच्छी तरह प्रकाश डाला है। गुप्तजी अपने कथा साहित्य में संयुक्त परिवार और एकांकी परिवार का चित्रण किया गया है। अपने गंगा मैया, सती मैया का चौरा, अन्तिम अध्याय, नौजवान, भाग्य देवता, अक्षरों के आगे मास्टरजी, एक छोटी सी शुरुआत आदि उपन्यासों एवं बिगड़े हुए दिमाग, यही ज़िन्दगी है, चरम बिंदु, ज्योतिष, मौत का नशा, आदि कहानियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

भारतीय वैवाहिक जीवन, विशेषकर बाल-विवाह, अनमेल विवाह, प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह एवं विवाह-पूर्व एवं विवाहोत्तर आकर्षण की समस्या, विवाह से जुड़ी हुई दहेज प्रथा, समाज में नारी की स्थिति, वेश्या जीवन, दासी-प्रथा, भारतीय शिक्षा का महत्व, अस्पृश्यता एवं जातीयता आदि समाज में परिलक्षित सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को अपने कथा साहित्य में गुप्तजी ने चित्रण किया है।

चतुर्थ अध्याय में गुप्तजी के कथा-साहित्य द्वारा भारतीय समाज के आर्थिक पक्ष के विविध आयामों का चित्रण किया है। देश में लोग अर्थ के अभाव के कारण अभावग्रस्त ज़िन्दगी का सामना करते समय थक जाते हैं, फ़िर

भी वे आवश्यक ज़रूरतों की पूर्ति नहीं कर पाते। इसलिए मुसीबतों को झेलते हुए, भूख से तड़पते, कराहते, रोजी-रोटी की तलाश में शहर जानेवाले गरीब किसानों, मज़दूरों और उनके परिवारवालों के क्रंदन, उनकी सिसकियाँ गुप्तजी ने अपने कथा-साहित्य में चित्रण किया है।

देश में घटित गरीबी, अकाल, बेरोज़गारी, मूल्य-वृद्धि आदि समस्याओं को देखकर गुप्तजी मानसिक रूप से दुःखित होते हैं, उसपर अपना विचार प्रकट करते हैं। वर्ग संघर्ष जैसे किसान-ज़मींदार, किसान-महाजन, मज़दूर-मालिक एवं ज़मींदार, मालिक, महाजन, सामन्त, ठेकेदार, पूँजीपति आदि का शोषण इसमें वर्णित है। गरीबी, बेरोज़गारी आदि के कारण गाँव छोड़कर शहर की ओर भागनेवाले किसान एवं मज़दूरों का चित्रण भी इसमें हुआ है। देश
में आर्थिक असमानता से घटित विषमताओं पर गुप्तजी अपना दुःख एवं विचार व्यक्त किए हैं।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत, देश के राजनीतिक पक्ष का, गुप्तजी के कथा-साहित्य के माध्यम से विवेचन किया है। इसमें स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज की राजनीति, देश की स्वतंत्रता आन्दोलन, लोगों का देश-प्रेम, ब्रिटिश शासन का अत्याचार, आज़ादी के बाद के भ्रष्ट, खोखली राजनीति और नेताओं के स्वार्थ, भ्रष्टाचार, चारित्र्यहीनता आदि का यथार्थ चित्रण किया है।

वर्तमान भारत के राजनीतिक क्षेत्र पर भारी परिवर्तन आया है। राजनीतिक दल सत्ता पाने के लिए भ्रष्ट, चारित्र्यहीन नेताओं को टिकट दे रहे हैं। चुनाव में धर्म, जाति एवं भाषा के नाम पर वोट माँगते हैं। आज देश में लोगों को आश्वासन एवं संरक्षण देनेवाला न्याय व्यवस्था तक राजनीति का खिलवाड़ बन गया है। न्याय व्यवस्था में भ्रष्ट न्यायाधीशों का नियुक्ति होते हैं। देश के स्कूल और काँलेजों में छात्र राजनीति का गलत उपयोग करते हैं। भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के सभी प्रमुख पहलुओं पर, इस अध्याय में, गुप्तजी का विचार एवं चिन्तन प्रस्तुत किया है।

षष्ठ अध्याय में, गुप्तजी के कथा-साहित्य के माध्यम से भारतीय जनता के धर्म और संस्कृति के आदर्श तत्वों, सिद्धांतों एवं मूल्यों का चित्रण किया है।

गुप्तजी को इनके प्रति आस्था एवं आदर भाव है। उन्होंने उपने ही गाँव में धार्मिक अंधविश्वास से शिकार हुए लोगों को देखा है। इस कारण से उन्होंने अपने कथा-साहित्य में अज्ञान, अशिक्षा, धार्मिकता, रूढिवादिता से अंधविश्वास का शिकार बनकर जीवन भोगनेवालों पर प्रकाश डाला है। देश के त्योहारों एवं मेलाओं का चित्रण एवं ईश्वर की अवधारणा से लेकर उत्पन्न अनेक विचार-विमर्श का चित्रण भी इस अध्याय में किया है।

सांस्कृतिक पक्ष के अन्तर्गत देश के सांस्कृतिक मूल्यों पर विशेषकर प्रकाश डाला गया है। देश की संस्कृति में वहाँ के संस्कार, रीति-रिवाज़, नैतिक मुल्य, वेश-भूषा, खान-पान, मेले, त्योहार आदि का योगदान प्रमुख हैं।

गुप्तजीवामपंथी, बुद्दिजीवि और समाजवादी लेखक हैं। वे लगभग चार दशकों से लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उन्होंने प्रेमचंद और यशपाल की समाजवादी दृष्टि को अपने समकालीन जीवन के अनुरूप बढ़ाये हैं। गुप्तजी ने देश के आज़ादी के बाद मृतप्राय सामंतवादी और नयी पूँजीवादी व्यवस्था का द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि से जितना सही और सक्षम चित्रण तथा संघर्ष के क्रम में बदलनेवाली परिस्थितियों का विश्लेषण किया है, वैसा हिन्दी के अन्य अनेक समाजवादी लेखक नहीं कर सके हैं। गुप्तजी अंधेरे में लड़ाई करनेवाला तथा अंधेरे के विरुद्ध रोशनी की लड़ाई चलानेवाला एक लेखक हैं।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि श्री भैरवप्रसाद गुप्त ने देश के लोगों की गरीबी, पीड़ा, अभावग्रस्तता, समस्याएँ आदि को देखा है, परखा है, भोगा भी हैं। अपने इन्हीं निजी अनुभवों और व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर अपने कथा-साहित्य में भारतीय जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं, समस्याओं, विसंगतियों एवं प्रश्नों का और उससे उत्पन्न स्थितियों में देश के जनता के दैनिक जीवन में समस्याओं के साथ जूझने का, उनमें हो रहे परिवर्तन आदि का, बहुत ही आधिकारिकता और प्रामाणिकता से चित्रण किया है।

भैरवप्रसाद गुप्त का संपूर्ण जीवन नवीन समाज की कल्पना कर, उसे साकार बनाने में व्यतीत हुआ है। उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम द्वारा,

उन्होंने साम्यवादी समाज की स्थापना का संदेश दिया है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, गुप्तजी ने, सतहत्तर वर्ष की अपनी लंबी जीवन यात्रा में हिन्दी साहित्य को कथा साहित्य के रूप में अथवा अन्य कृतियों के रूप में जो कुछ दिया वह पृष्ठों की दृष्टि से विपुल और नई दिशा तथा नव्य एवं भव्य पथ की दृष्टि से अद्भुत एवं महान है। हिन्दी साहित्य जगत के अमर साहित्यकार श्री भैरवप्रसाद गुप्त, हिन्दी साहित्य के ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय की असाधारण सर्जानात्मक प्रतिभा के प्रतीक हैं।

परिशिष्ट

मूल ग्रन्थ

1. शोले (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, नीलाभ प्रकाशन उत्तर प्रदेश, संस्करण-1956.

2. मशाल (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, नीलाभ प्रकाशन उत्तर प्रदेश, संस्करण-1957.

3. लपटें (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा मद्रास, संस्करण-1951.

4. गंगा मैया (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-2003.

5. आग और आँसु (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1982.

6. सती मैया का चौरा (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1984.

7. धरती (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1964.

8. आशा (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण-1963.

9. कालिन्दी (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1963.

10. सेवाश्रम (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1983.

11. अंतिम अध्याय (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1979.

12. नौजवान (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धरती प्रकाशन बीकानेर, संस्करण-1983.

13. एक जीनियस की प्रेम कथा (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धरती प्रकाशन बीकानेर, संस्करण-1980.

14. काशी बाबू (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1987.

15. भाग्य देवता (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1990.

16. अक्षरों के आगे मास्टरजी (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण-1993.

17. छोटी सी शुरुआत (उपन्यास), भैरवप्रसाद गुप्त, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1997.

18. बिगड़े हुए दिमाग़ (कहानी संग्रह), भैरवप्रसाद गुप्त, कल्याण साहित्य मन्दिर प्रयाग, संस्करण-1949.

19. सपने का अन्त (कहानी संग्रह), भैरवप्रसाद गुप्त, नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1961.

20. आँखों का सवाल (कहानी संग्रह), भैरवप्रसाद गुप्त, आधुनिक कथा प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण-1964.

21. मंगली की टिकुली (कहानी संग्रह), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1982.

22. आप क्या कर रहे हैं? (कहानी संग्रह), भैरवप्रसाद गुप्त, धारा प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1983.

23. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, (कहानी संग्रह), भैरवप्रसाद गुप्त, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण-2008.

सहायक ग्रन्थ

1. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, विवेक द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-2008.

2.मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, डॉ.रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-2008.

3. भारतीय शासन और नागरिक जीवन, डॉ. नरेश मेहता, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशक व पुस्तक बिक्रेता आगरा-1959.
4. भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रवीन्द्रनाथ मुकर्जी और भरत अग्रवाल, विवेक प्रकाशन जवाहर नगर दिल्ली-2004.
5.समाजशस्त्रीय अवधारणाएँ एवं भारतीय समाज, राम गोपाल सिंह, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी-भोपाल-2003.
6. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम. एनश्रीनिवास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-2007.
7. समाज और आलोचना, डॉ. रवि श्रीवास्तव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर-2005.
8. भारतीय साहित्य के निर्माता, श्री.मधुरेश, साहित्य अकादेमी नई दिल्ली-2000.
9. भारत में समाज, कंचन वर्मा और अनिता वर्मा, गुल्लीबाबा पब्लिशिंग हउस, नई दिल्ली-2007.
10. समाज का अध्ययन, मनोरमा पवार और दिनेश वर्मा, गुल्लीबाबा पब्लिशिंग हउस नई दिल्ली-2007.
11. समाज और धर्म, कंचन वर्मा और विमला देवी, गुल्लीबाबा पब्लिशिंग हउस नई दिल्ली-2007.
12. भारत में सामाजिक समस्याएँ, अनिता वर्मा और विमला देवी, गुल्लीबाबा पब्लिशिंग हउस नई दिल्ली-2007.
13. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष, डॉ.एन.एस.सणी, जवाहर पुस्तकालय मथुरा-2008.
14. उपन्यास स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन दिल्ली-2007.
15. हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगति, डॉ.हरदयाल, वाणी प्रकाशन दिल्ली-2005.

16. हिन्दी कहानी संरचना और संवेदना, डॉ.साधना शाह, वाणी प्रकाशन दिल्ली-2008.
17. उपन्यास का पुनर्जन्म, परमानन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन दिल्ली-1995.
18. भीष्म साहनी उपन्यास साहित्य, विवेक द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-1998.
19. रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन, डॉ.शिवाजीनाळे, विद्या प्रकाशन, कानपूर-2004.
20. हिन्दी कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना, डॉ.शिवाजीसांगोळे, समता प्रकाशन कानपूर-2006.
21. आधुनिक हिन्दी निबंध, डॉ. भुवनेश्वरी चरण सक्सेना, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ-1994.
22. उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क, डॉ. कुलदीप चन्द्र गुप्त, पंचशील प्रकाशन जयपुर-1979.
23. राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य, डॉ. प्रभाशंकर मिश्र, अशोक प्रकाशन दिल्ली-1967.
24. हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद, डॉ. कमला गुप्ता, अभिनव प्रकाशन नई दिल्ली, 1979.
25. आदर्श हिन्दी निबन्ध, डॉ. कुलश्रेष्ठ एवं विद्याराम शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, 2003.
26. हिन्दी निबन्ध रचना, निशा पाण्डेय, वोहरापब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स इलाहाबाद, 2003.
27. उपन्यासकार अमृतलाल नागर, डॉ. के.जी.राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, 2008.
28. नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष,डॉ.रामधीर सिंह, धरती प्रकाशन, राजस्थान-1985.

29. प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, रेखा अवस्थी, मैक मिलन इंडिया नई दिल्ली-1978.

30. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, डाँ.राम विलास शर्मा,1954

31. प्रेमचन्द एक सिंहावलोकन, श्री.सेन, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-1984.

32. प्रेमचन्द और उनका युग, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली-1967.

33. प्रेमचन्द की उपन्यास कला, प्रो.जनार्दन प्रसाद झा और मंगल प्रसाद सिंह, वाणी मंदिर बिहार-1941.

34.प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, डाँ.अमर सिंह, चिन्तन प्रकाशन कानपूर।

35.प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में प्रगतिशीलता, निर्मल कुमारी, संजय बुक सेन्टर वाराणसी-1982.

36. भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, कुमारी प्रिया अंबिका, संतोष प्रकाशन दिल्ली-1988.

37. भैरवप्रसाद गुप्त व्यक्ति और रचनाकार, विद्याधर शुक्ल, सभा प्रकाशन इलाहाबाद-1984.

38. मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास, भूपसिंह भूपेन्द्र, श्याम प्रकाशन जयपुर-1987.

39. यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य, सुरेश चन्द्र तिवारी, सरस्वती प्रेस बनारस-1956.

40. यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, डाँ.श्री.साने, सरस्वती प्रकाशन कानपूर-1988.

41. समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य विश्लेषण, प्रेमकुमार, इन्द्र प्रकाशन अलीगढ़-1983.

42. समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में जन चेतना, डाँ. अरुणा लोखण्डे, विकास प्रकाशन कानपूर-1996.

43. समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना, डाँ.किरण बाला, अनुभव प्रकाशन कानपूर-1988.
44. साहित्य की विविध विधाएँ, डाँ. राम प्रकाश, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली, 1986.
45. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, डाँ ज्ञान चंद्रगुप्त, अभिनव प्रकाशन सीजामपुर, 1974.
46. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, डाँ.कांतिवर्मा, रामचन्द्र एण्ड कंपनी दिल्ली, 1977.
47. समाज शास्त्रः अवधारणाएँ एवं सिद्धांत, डॉ. जे. पी. सिंह,प्रेन्टिस हॉल ऑफ इण्ड्या, नई दिल्ली, 1999.
48. भारतीय समाजः संरचना और परिवर्तन, एस. एल. दोषी, पी. सी. जैन, नाशनल पब्लिशिंग हउस, जयपूर, 2002.
49. भारत और विश्व, एन.सी.आर.टी, नई दिल्ली, 2005.
50. मानव धर्म का विज्ञान, अवध बिहारी लाल गुप्ता, इनस्टियूट फोर टीचिंग सैन्टिफिक रिलिजियन, नई दिल्ली, 2005.
51. भारतीय राज व्यवस्था एवं भारत का संविधान, डॉ. बि. एल. फ़डिया, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2006.
52. प्रभाकर माचवे के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, मंजूर सैय्यद, चिन्तन प्रकाशन कानपूर, 2005.
53. समाजवादी हिन्दी उपन्यासों में चरित्रांकन, डॉ. नास्ति कुमार, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, 1998.
54. हिन्दी उपन्यास और अमृत लाल नागर, डॉ. प्रेम शंकर त्रिपाठी, कुमार सभा पुस्तकालय कोलकत्ता, 2004.
55. राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धांत, डॉ. गाधीजी राय, भारती भवन पब्लिशेर्स और डिस्ट्रिब्यूटेर्स, 2003.

<u>कोश, पत्रिकाएँ एवं वेब-सैट</u>

1. हिन्दी-मलयालम शब्द कोश, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा केरल 1990.

2. हिन्दी-मलयालम-अग्रेज़ी शब्द-कोश,डी.सी.बुक्सकोट्टयम1997

3. नई धारा, जून-जुलाई 2008.

4. नवनीत, अक्टूबर2008.

5.संग्रथन, जुलाई 2009.

6.संग्रथन, अप्रैल 2010.

7.विक्कीपीडिया.ओ.आर.जी

8.24दुनिया.कॉम/हिन्दी-समाचार

लेखक परिचय

डॉ. राजू सी.पी. केरल राज्य के एलत्तुरुत्त-त्रिशूर सेंट अलोष्यस कॉलेज में हिंदी विभाग के एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष एवं अनुसंधान पर्यवेक्षक हैं। वह हिंदी साहित्य के अपने गहन ज्ञान और जटिल विचारों को स्पष्ट और आकर्षक तरीके से संप्रेषित करने की क्षमता के लिए जाने जाते हैं। वह हिंदी भाषा और साहित्य के अध्ययन के भी प्रबल समर्थक हैं। उनका मानना है कि हिंदी एक समृद्ध और जीवंत भाषा है जिसमें दुनिया को देने के लिए बहुत कुछ है। उनकी शोध रुचियों में हिंदी कथा साहित्य औरहिंदी-मलयालम तुलनात्मक साहित्य शामिल हैं। वह विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं और पेशेवर संगठनों के सदस्य और सलाहकार सदस्य हैं। उनके पास हिंदी और मलयालम साहित्य, संस्कृति और भाषा विज्ञान के क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय शोध पत्र, लेख और किताबें सहित कई प्रकाशन और प्रस्तुतियाँ हैं।

जन्म: केरल राज्य के तृश्शूर जिला के कुरुवन्नूर गाँव में 12 मई 1973

शैक्षिक योग्यताएँ: M.A, M.Phil, B.Ed, L.L.B, R.B.P, D.C.P.A, Ph.D

प्रकाशित पुस्तक :उपन्यासकार श्री भैरवप्रसाद गुप्त

संपादित पुस्तकें :गद्य तारा, गद्य गगन, गद्य तरंग, गद्य सुधा, काव्य सरगम, काव्य गुलशन, आधुनिक काव्य गद्य, पद्य विहार, सदाबहार कहानियाँ, कहानी कलश,हिन्दी कहानी कल और आज, कालजयी एकांकी, समकालीन कविता-अस्सी के बाद, विमर्श के आईने में।

पुरस्कार व सम्मान

राष्ट्रीय शिक्षा गौरव पुरस्कार, विशिष्ट कैरियर अकादमिक पुरस्कार, कृष्णा बसंती लिट्टरेचरएक्सिलन्स पुरस्कार, उत्कृष्ट स्नातक छात्र शिक्षण पुरस्कार, सर्वश्रेष्ठ वरिष्ठ संकाय पुरस्कार, युवा सशक्तिकरण पुरस्कार, भाषा विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ शोधकर्ता का पुरस्कार आदि।

पता

डॉ. राजू. सी. पी
46/146, चिट्टिलप्पिल्ली,
तरकत्तलइन, चेट्टु पुषा, तृश्शूर, केरल-680012,
मोबइल-8330080066, ईमेल-drrajucp@gmail.com